# हिन्दी कहानियों का विकास

# सूची

और उपनिषदोंमे सरमा, वामदेव, रोहित, जावालि और नाकेता आदिके उपाख्यान कहानी-साहित्यकी दृष्टिसे अत्यन्त प्राचीन हैं। इस तरहकी धार्मिक आख्यायिकाएं बौद्ध तथा जैन सम्प्रदायोंमे भी अधिक लिखी गईं हैं। बौद्धोंकी जातक-कथा विश्वके कथा साहित्यका एक प्रधान अङ्ग है। जैनोंकी नन्दी-सूत्रमें वर्णित कहानियां कम महत्त्व नहीं रखतीं।

पिछले कालके दार्शनिकोंने भी न्याय और साख्यके सिद्धान्तोंको प्रमाणित करनेके लिए अख्यायिकाओंका प्रयोग किया है। किसी गहन विषयको समझानेके लिए, इससे बढकर दूसरा उपाय नहीं था। इसका प्रभाव धर्म, समाज दर्शन और राजनीति तथा साधारण शिष्टाचारों पर भी पड़ता था। उस समय, कहानीके आलम्बन उपकरणमे बहुत तीव्र उन्नति हुई। और पशु, पक्षी, मनुष्योंके अंग, भूत-प्रेत, चेतन और अचेतन कितने ही कहानियोंके पात्र बने। हँसाना, सुलाना, मनोरञ्जन करना, उपदेश देना और कुशलता उत्पन्न करना यही उनकी उपयोगिता थी। उनकी अस्वाभाविकताओं पर कोई इतना ध्यान न देता था।

कहना न होगा कि संसारके ज्ञानके उपासकोंने अपनी अपनी भिन्न भिन्न धाराओंमें कहानीसे सहायता लेकर आशातीत सफलता प्राप्त की थी।

( १ ) ऋग्वेद—अपालाकी कथा—

एक युवती स्त्री किसी रोगके कारण, अपने पति द्वारा परित्यक्ता होती है। उसे कोई सहायता नहीं देता, वह अपने दुखमें अकेली असहाय है। इन्द्र उसे रोग मुक्त करके, उसका दुख छुड़ाते हैं।

( २ ) ब्राह्मण—

रोहित, बलिके लिए चुना जाता है। उसे आकाशवाणीसे यह सूचना होती है कि कर्मशील क्रियात्मक मनुष्य कभी दुखी नहीं होता। वह बराबर घूमता है। संयोगसे अकालमें एक दुखी परिवार उसके बदलेमें, अपने एक लड़केको बलि देना स्वीकार करता है, केवल कुछ धनकी आशा पर। विश्वामित्रके आजानेसे बलि नहीं होने पाती, दोनोंके प्राण बच जाते हैं।

( ३ ) उपनिषद—

जाबालि सत्यकाम गुरुकुलमे पढ़नेकी इच्छासे गौतमके पास जाता है। नाम और गोत्र पूछने पर वह अपनी मांसे सुनी हुई सच्ची बात कह देता है कि यौवन-कालमें कितने ही सम्बन्ध होनेके कारण यह ठीक नहीं कहा जा सकता कि वह किस गोत्रका है। सत्यको इतने स्पष्ट रूपसे निःसंकोच कहनेके कारण कुलपति कहते है कि तुम वास्तवमें ब्राह्मण हो क्योंकि सत्य बोलते हो।

(४) सांख्य दर्शन—

बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारी शङ्खवत् ॥ ६ ॥

एक बड़ी चंचल लड़की थी। उसके माता पिता उसकी चंचलतासे घबड़ा उठे। उन्होंने उस कुमारीके हाथमें शंखकी चूड़ियां पहना दीं। इसलिए जब वह उछलती कूदती तो उन चूड़ियोंकी ध्वनि होती, और वे उसकी चंचलता समझ जाते।

लोकोक्ति—

वधूमाषमापन न्यायः ॥

इसीकी ध्वनि महाकवि बिहारीलालके इस दोहेमें है—

कन दैबो सौंप्यौ ससुर, बहू थुरहथी जानि।
रूप-रहचटै लगि लग्यौ मांगत सब जग आनि ॥२९५॥
( बिहारी—रत्नाकर )

एक आदमी बड़ा कंजूस था। उसकी पुत्र-वधू विवाहके बाद घरमें आई। उसके हाथ छोटे-छोटे थे, इसलिये ससुरने अन्न बांटनेके लिए उसीसे कहा—जिसमें उसके हाथ से थोड़ा ही थोड़ा सबको मिले; किन्तु वह बड़ी रूपवती थी अतएव उसके रूपको देखनेके लिए बहुतसे लोग मांगनेके लिए आए। बहुतसे अयाचक भी मंगन बने!

(५) नन्दीसूत्र—( 300 A D )

एक राजा थे, उनका एक बड़ा प्रिय हाथी था। एक दिन

अचानक हाथी बीमार पड़ा। राजा बड़े चिंतित हुए, उन्होंने गांववालोंको उसकी सेवाके लिए नियुक्त किया और कहा—इस हाथीका प्रति दिनका समाचार मुझे मिलना चाहिये और जो इसकी मृत्युका समाचार लायेगा—उसे प्राण दण्ड दिया जायगा।

हाथी बहुत दिनोंतक बीमार था। गांवमेंसे कोई न कोई उसका समाचार लेकर नित्य राजाके पास जाता। एक दिन हाथी मर गया। गांवके लोग बड़े संकटमें पड़े। नित्यकी तरह आज कौन समाचार ले जाय? किसीका साहस न होता था। उस गांवमें एक नट, बड़ा चतुर था। वह हाथीका समाचार लेकर राजाके पास गया। उसने कहा—महाराज, हाथी न देखता है, न उठता है, न बैठता है, न खाता है, न पीता है। इत्यादि।

राजाने आश्चर्यसे पूछा—तो क्या मर गया?

उसने कहा—महाराज यह हम कैसे कह सकते हैं?

जातककी कहानियोंके सम्बन्धमें, अनेक मत हैं। अनेक प्रमाणोंसे यह निश्चित किया जा सकता है कि जातककी कथाएं, प्राचीन आर्योंकी कहानियोंका एक सुन्दर संस्करण हैं। उनका रचना-काल ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दीके बादका नहीं है। क्योंकि वैशालीके महासंगीतिमें जो त्रिपिटकका सङ्कलन हुआ उसमें जातक कथाओंका स्पष्ट उल्लेख है।

'हेरोडोटस' ने अपनी पुस्तक (४५० बी० सी० ) में अपनेसे १०० वर्ष पहलेके कहानीकार इसापका उल्लेख किया है। इसापका समय उसके कथनानुसार ५५० बी० सी० है।

'अरस्तू' ने भी अपने व्याख्यानमे राजनीतिके दृष्टान्त रूपसे दो कहानियोंका उल्लेख किया है।

( १ ) 'स्टेसीकारश' की कहानी—( लगभग ५५६ बी० सी० )

( २ ) 'इसाप' की कहानी—५५० बी० सी०

किन्तु ग्रीक इसापकी बहुत सी कहानियोंमे जातक-का प्रतिबिम्ब है। सिंहके खालमे गदहे वाली कहानी इसका प्रमाण है। एक बात विचारणीय है कि वास्तवमें ग्रीक इतिहासमें सर्व प्रथम कहानियोंका संग्रह ( ३०० बी० सी० ) 'डेमीट्रीयसफोलिरीयस' ने किया। उसी संग्रहका नाम इसापकी कहानी है। इस प्रकार इसापकी कहानियोंका संग्रह वैशालीके महा संगीतिसे पीछेका ही ठहरता है।

श्री ईशानचन्द्र घोषका मत है कि जो लोग जातक साहित्य-का अध्यन करेंगे, उन्हें मालूम होगा कि मध्य एशियाकी सब जातियोंकी कथा कहानियोंपर जातक कहानियोंकी छाप है। इटलीके विद्वान 'कास्पारेटी' मित्र-विन्दक-जातकको ही फारसके सिंधबाद जहाजीकी मूल भित्ति मानते हैं।

राधा-जातक भी प्रकारान्तरसे अरबके कथा-साहित्यमें

मिलता है। बात यह है कि यह सब जातियाँ जो मुसलमान हुईं वे पहले प्रायः बौद्ध थीं और इस तरहसे परम्परागत जातीय कथा-कहानियोंका अपने नवीन साहित्यमें उन लोगोंका उपयोग करना कोई असम्भव नहीं !

अरब लोगोंके सम्पर्कमें आनेसे 'कारोलीना' के नीग्रो बच्चे भी श्लेषरोम जातकसे ( रिमांस चाचाकी कहानीके रूपमें ) परिचित हुए। मध्य युगमें 'जेरुजलम' के झगड़ेके समय धर्म-युद्धसे लौट कर वीर रिचर्डने अपने विद्रोही सामन्तोंको सत्यङ्की जातककी छाया-कथा सुनाकर समझाया था।

महाकवि 'चासर' का Pardonar's Tale वेदब्भ जातकके आधार पर रचित है। लोग तो 'शेक्सपियर' के मरचेन्ट-औफ-वेनिसको भी भारतीय कथाके आधारपर बना हुआ मानते हैं।

इधर भी ला० फन्टेन प्रभृति कहानी लेखकों पर भारतीय उपाख्यानोंका बहुत कर्ज है।

ईसाकी तीसरी शताब्दीमें बेब्रियासने रोम सम्राटके राज-कुमारके लिए ३०० कहानियोंका एक संग्रह बनाया। उसमें उसने मिश्र देशके कहानी-लेखक केबिसीस का उल्लेख किया है और उन कहानियोंमें भी बहुत सी जातकोंकी छाया है।

कुछ लोगोंका अनुमान है, कि केबिसीस, यहूदी कहानी-

लेखक, भी केवल काश्यपका रूपान्तर है। क्योंकि जातकोंमे काश्यप बुद्ध जन्मोंकी कथा है।

'वेब्रियास' की कहानियोंमें पीछे जो उपदेश ( Moral ) निकालनेकी व्याख्या लगी हुई मिलती है, वह ठीक जातकोंकी नकल है। नीचे कुछ ग्रीक और रोमकी कहानियोंके आधार-स्वरूप, इसाप और जातककी कहानियोंकी समानताका उदाहरण दिया जाता है।

| जातक | इशाप |
|---|---|
| नृत्य जातक | The Jay and Peacock |
| मशक जातक | The Bald-man & the Fly |
| सुवर्णहंस जातक | The Goose with golden eggs |
| सिंहचर्म जातक | The Ass in a lion's skin |
| कच्छप जातक | The Eagle & the Tortoise |
| जम्बू जातक | The Crow & the Fox |
| जव शकुन जातक | The Wolf & the Crave |
| चूल धनुर्ग्रह जातक | The Dog & the Shadow |
| कुक्कुट जातक | The Fox, the Cock & the Dog |
| द्विपि जातक | The Wolf & the Lamb |

जातकोंके साथ ही साथ, जो धर्मप्रचारकी विभिन्न धाराके कारण पाली और प्राकृतमें लिखे गये थे, भारतकी प्रमुख संस्कृत

भाषा तथा उसके परिवार वर्गकी अन्य भाषाओंमें भी कहानियों-का पूर्ण विकास हुआ था। महाभारतमें प्रसंगके अनुसार बहुतसी छोटी-छोटी आख्यायिकाएँ वर्त्तमान हैं। पुराणोंको तो एक प्रकारसे धार्मिक उपाख्यानोंका संग्रह ही कहना होगा।

पंचतन्त्र, हितोपदेश इत्यादि संस्कृतके प्रसिद्ध कथाग्रन्थ हैं, किन्तु अन्य अपभ्रंश भाषाओंमें भी भारतीय प्रचलित कहानियोंका एक बड़ा संग्रह था। ईसाकी पहली शताब्दीमें पैशाची भाषामें बृहत्कथाकी रचना हुई, जो अब संस्कृतके बृहतकथामंजरी और कथासरित्सागरके रूपमें उपलब्ध है।

पञ्चतन्त्र आदिका तो अरबी और फारसी भाषामें अनुवाद हुआ ही, किन्तु बृहत्कथाके रचना-संगठन ( Construc-tion ) का अनुकरण करके सहस्ररजनी चरित्र इत्यादि अन्य भाषाओंमें बने। इस तरहके संग्रहोंकी एक प्रधान विशेषता है कि किसी एक व्यक्तिको केन्द्र बनाकर समाजमें प्रचलित अनेक आख्यायिकाएँ सजा दी जाती हैं, और यह क्रम भी जातकोंके प्रचारसे ही अनुकरण किया गया था। जातकोंके राजा ब्रह्मदत्त, कथा सरित्सागरके नरवाहनदत्तके ही ढंगपर फारसके राजकुमार भी कल्पित किये गये, जिनके चारों ओर सहस्ररजनी चरित्रकी आख्यायिकाएँ थीं।

संस्कृत साहित्यमें इस ढंगका अन्तिम संकलन दशकुमार

चरित है। इस तरहसे आप देखेंगे कि, भारतीय कथा साहित्यका कितना अपूर्व विस्तार था, किन्तु क्रमशः उपाख्यानोंकी उपादेयता बदलती गई और साथ ही साथ उनका उद्देश और रूप भी बदला। धार्मिक कथाओंमे जहां साहस धर्मके लिए होता था, वहां पिछले कालमें स्वार्थ और लौकिक उन्नतिकी ओर कहानियोंका अधिक झुकाव दिखलाई पड़ता है।

यात्रा, साहसके कार्य, आश्चर्यमय क्रियाकलाप, तथा स्वार्थ सम्बन्धी कूट चातुरी इन कहानियोंमे भरी हुई है। छल-प्रवंचना किसी भी प्रकारसे लौकिक विजय प्राप्त करना तथा निर्भीक होनेकी शिक्षा देना इन कहानियोंका उद्देश है। दशकुमार चरित इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। यह ठीक उसी भाव (Spirit) मे लिखा गया है, जिसमें कि वर्त्तमान कालकी योरोपियन ( Adventurous ) साहसिक कहानियां लिखी जाती हैं।

हा, कहीं-कहीं लोकचरित्रकी तीव्र आलोचना तथा नीति और व्यंगकी प्रधानता भी है। अपभ्रंश भाषामे भी बहुतसी कहानिया लिखी गई है; किन्तु अभी उनका अधिक पता नहीं लगता और हम वर्त्तमान हिन्दीके आदि युगकी ओर चले आनेके लिए बाध्य होते हैं।

हिन्दीमे कहानिया अनुवादके रूपमे वैतालपचीसी, सिंघासनबत्तीसी, शुकबहत्तरी, आदिके नामसे आई हैं, किन्तु हिन्दीमें

कहानीका सच्चा विकास रानी केतकीकी कहानीसे हुआ है।

आधुनिक खड़ी बोलीके साहित्यका विकास, लल्लूलालजी (प्रेमसागर वाले) के समय यानी १८ वीं शताब्दी ई० के आरम्भसे ही हुआ है। लल्लूलालके समकालीन सदल मिश्र, इंशा-अल्लाह खाँ और मुंशी सदासुखलाल थे।

सदल मिश्रका 'नासिकेतोपाख्यान' हिन्दी कहानीका पहला रूप है; किन्तु यह एक पौराणिक कथा है।

रानी केतकीकी कहानी—

राजकुमार हिरनके पीछे घोड़ेपर जाता है। वह उसे नहीं मिलता, अतएव थककर विश्राम लेना चाहता है। उसने देखा 'अमराइयों' में बहुत सी युवतियां झूलेपर झूल रही थीं। वहीं रानी केतकीसे भेंट होती है। एक दूसरेकी अंगूठियोंका परिवर्त्तन होता है। घर चले आते हैं। विवाहकी बातचीत चलती है। रानी केतकीका पिता अस्वीकार कर देता है। दोनों राज्योंसे युद्ध आरम्भ होता है। रानी केतकीके पिताके गुरु आते हैं। मंत्र द्वारा, राजकुमार और उसके माता-पिता हिरन बन जाते हैं। बहुत दिनोंके बाद रानी केतकीके प्रयत्नोंसे फिर गुरुजी आते हैं। गुरुजी इन्द्रको बुलाते हैं। राजकुमार, उसके माता-पिता आदि फिर मनुष्यके रूपमें हो जाते हैं। अन्तमे राजकुमार और रानी केतकीका विवाह हो जाता है।

(ख)

इस कहानीका रचनाकाल १८०३ ई० माना जाता है। यह एक मुसलमान लेखक इंशा-अल्लाह खाँ द्वारा लिखित हिन्दीकी प्रथम मौलिक कहानी है। इस कहानीको पढ़कर हंसी आती है, सचमुच यह एक खिलवाड़ मालूम पड़ता है; किन्तु केवल इस एक कहानीसे सवा-सौ-वर्ष पहलेसे लेकर आज तककी हिन्दी कहानिया, और साथ साथ हिन्दी गद्यका विकाश कैसे हुआ, यह हम भलीभांति जान लेते हैं। अतएव यह एक खिलवाड़ भी अपनी प्राचीनताके कारण आज कहानी-साहित्यमें अपना महत्त्व रखता है।

१८ वीं शताब्दीके मध्य तक कहानियोंके इतिहासके सम्बन्धमें कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई। पौराणिक और धार्मिक कथाओंका ही संस्कृत साहित्यसे अनुवाद होता रहा। इसके बाद राजा शिवप्रसाद (सितारे हिन्द) का 'राजा भोजका सपना' भाषाके नये सांचेमें ढल कर, कहानीके आकारमें हिन्दी संसारके सामने आया।

भारतेन्दु-कालमें कथा-साहित्यका जोरोंसे विकास हो रहा था। संस्कृत और अंग्रेजीसे भी अनुवाद आरम्भ हो गया था। उसी समय बाबू काशीनाथ खत्रीने 'लेम्बस्टेल्स' का अनुवाद किया था।

१९०० ई० मे 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ।

कहानियोंकी ओर दृष्टि दौड़ाते हुए, कहना होगा कि 'सरस्वती' द्वारा ही आज हम कहानी-साहित्यका पूर्ण विकाश हिन्दीमें देख रहे हैं। पं० किशोरीलाल गोस्वामीकी 'इन्दुमती' कहानी १६०२ में 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। लाला पार्वती-नन्दनके नामसे बाबू गिरिजाकुमार घोषने अंग्रेजीकी कई कहानियोंका छायानुवाद किया था। 'भूतोंका हवेली' खूब पसन्द की गई। कहानियोंके प्रति पाठकोंकी रुचि बढ़ने लगी। 'सरस्वती' में प्रकाशित कहानियोंको लोग बड़े चावसे पढ़ने लगे; किन्तु मौलिक लेखकोंका अभाव था।

श्रद्धेय पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीने संस्कृतकी आख्यायिकाओंको हिन्दी रूप दिया था। 'बंग-महिला'ने बङ्गलाकी उच्च कोटिकी कहानियोंसे हिन्दी जनताको परिचित कराया था। उनकी कहानियोंमें दुलाईवाली—उस समयकी दृष्टिसे बहुत अच्छी है। हिन्दी कहानियोंका वह आरम्भिक काल था।

वर्त्तमान युगकी मौलिक कहानियोंका विकास 'इन्दु' के द्वारा अधिक हुआ। १६११ ई० में बाबू जयशङ्कर प्रसादने 'इन्दु' में एक मौलिक कहानी लिखी। उसका नाम था 'ग्राम'। प्रसादजी युग-प्रवर्त्तक कवि हैं। अतएव उनकी कहानियोंमें भावुकताका ओत-प्रोत होना स्वाभाविक ही है। आपकी कहानियाँ स्थायी-साहित्यकी चीज़ हैं। उन्हें दो सौ वर्षोंके बाद पढ़ने पर उनना

हीं मजा आयेगा, जितना आज आता है। 'आकाश-दीप', 'बिसाती', 'प्रतिध्वनि, 'देवदासी', 'चूड़ीवाली', 'स्वर्गमे', 'गूदड़-साईं', आदि कहानियां हिन्दी-साहित्यमे अमर रहेंगी।

जिस तरह प्रसादजीकी कविताओंसे हिन्दीमें नव-युग आरम्भ हुआ है, उसी तरह उनकी कहानियोंने भी अपनी सीमा बना ली है। बिसाती, और आकाश-दीपमे कलाका पूर्ण विकास हुआ है। इसका आनन्द विद्वान पाठक ही अनुभव कर सकेंगे। प्रसादजीकी रचनायें साधारण पाठकोंके लिये नहीं होती है। हिन्दीमे मौलिक कहानियोंकी पहली पुस्तक आपकी कहानियोंका संग्रह 'छाया' नामसे प्रकाशित हुई जो साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षामे भी रही।

पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जाकी 'परदेसी' कहानी १९१२ में पहले 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई थी। इस कहानीका अनुवाद गुजरातीकी सर्वश्रेष्ठ पत्रिका बीसवीं-सदीमें भी निकला था।

सन् १९१३ में पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिककी पहली कहानी 'रक्षा-बन्धन' सरस्वतीमे छपी थी। हिन्दीके चुने हुए कहानी-लेखकोंमें कौशिकजीका उच्च स्थान है। सरस्वती-सम्पादक श्री बख्शीजीका कहना है कि 'ताई' उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी है। मुझे भी 'ताई' 'वह प्रतिमा' और 'सहृदय शत्रु' बहुत पसन्द आईं।

वङ्गला और अंग्रेजी कहानियोंके अनुवादने भी लेखकोंको आकर्षित किया। मौलिक कहानी लिखनेकी प्रथा चल निकली। १९१३ ई० में सूर्यपुराधीश राजा राधिकारमण सिंहकी 'कानोंमें कंगना' कहानी 'इन्दु' में छपी। उस समय हिन्दीमें अपने ढङ्गकी यह पहली कहानी थी।

"किरण! तुम्हारे कानोंमें यह क्या है?"

"उसने कानोंसे चंचल लटको हटा कर कहा—कङ्गना।"

इस शैलीको सफलता पूर्वक लिखकर राजा साहबने पढ़ने वालोंको मुग्ध कर दिया था। इस कहानीकी भाषा बड़ी सजीव है। राजासाहब हिन्दीके गद्य कवि हैं। आपकी 'बिजली' कहानी भी अपूर्व है।

१९१५ ई० में 'उसने कहा था' कहानीने विद्वानोंको चकित कर दिया। इसके लेखक थे, स्वर्गीय चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजी। हिन्दी कहानियोंमें इसके जोड़की आज तक कोई दूसरी कहानी नहीं निकली। कई वर्षोंकी बात है, मैं 'मधुकरी' के सङ्कलनके लिये 'सरस्वती' की फाइल उलट रहा था। एकाएक मेरी दृष्टि इस कहानी पर पड़ी। शीर्षक ही आकर्षक था। मैं बड़े ध्यानसे पढ़ने लगा। कहानी पढ़ते पढ़ते तबियत उछलने लगी। ऐसी कहानी भी हिन्दीमें है? आश्चर्य था। इस कहानीको तबसे मैं कितनी बार पढ़ चुका, नहीं कह सकता। मैंने अनेक

कहानी लेखकोंसे इस कहानी पर उनकी सम्मति पूछी। सभीने इसको सराहा और प्रशंसा की। मेरा अपना मत है, कि हिन्दीमें यह पहली 'रियलिस्टिक' ( Realistic ) कहानी है। इसमें कहानीके सब अङ्ग वर्त्तमान हैं। इस कहानीको जो एक बार ध्यानसे पढ़ेगा, वह जीवन भर नहीं भूल सकेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। गुलेरीजीने अपने जीवनमें दो तीन कहानियां ही लिखी हैं; किन्तु बहुत खोज करने पर भी उनकी दूसरी कहानी मुझे न प्राप्त हो सकी।

उन दिनों 'सरस्वती' और 'इन्दु' में उच्च कोटिकी मौलिक कहानियां प्रकाशित होने लगीं। पं० ज्वालादत्त शर्माकी पहली कहानी 'सरस्वती' १९१४ ई० में निकली। उस समय प्रेमचन्दजीकी कहानियोंका हिन्दीमें जन्म भी नहीं हुआ था। शर्माजीकी घटनात्मक कहानियां बहुत ही दिलचस्प होती थीं। पढ़नेमें खूब मन लगता था। इस तरह कभी कौशिकजीकी और कभी शर्माजीकी कहानिया बराबर 'सरस्वती' को सुशोभित करती रहीं।

श्री चतुरसेन शास्त्रीकी पहली कहानी 'गृहलक्ष्मी' में प्रकाशित हुई थी। १९१४ की बात है। उस समय शास्त्रीजीसे कहानी लेखकके नाते बहुत कम लोग परिचित थे। इनकी कहानियोंका प्रचार तो इधर ही कई वर्षोंमें हुआ है। आपकी

अब तककी कहानियोंमें 'खूनी' को मैं उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना समझता हूं।

१९१६ ई० में हिन्दी कहानियोंमें युगान्तर उपस्थित करने वाले श्री प्रेमचन्द्जीकी पहली कहानी 'सरस्वती' में निकली। इसके पहले उर्दू में प्रेम-पच्चीसी इत्यादि पुस्तकें आपकी निकल चुकी थीं। प्रेमचन्दजीकी अब तव लगभग दो सौ कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी दुनियांमें प्रेमचन्दजीकी कहानियां बड़े आदर और चावसे पढ़ी जाती हैं। आप इस कलाके आचार्य हैं। जिन्हें ज़रा भी कहानियोंसे शौक है, वे प्रेमचन्दजीको भलीभांति जानते हैं। इस संग्रहमें उनकी उच्च कोटिकी कहानी नहीं दी जा सकी, इसका मुझे हार्दिक दुख है। कारण उनकी कहानियोंका सर्वा-धिकार प्रकाशकोंको है। लगातार पत्र व्यवहार करने पर भी निराशा ही मिली। अतएव मैं विवश होकर उनके आज्ञानुसार यहां 'मधुकरी' मे 'अग्नि-समाधि' ही देकर सन्तोप प्रगट करता हूं।

श्रीरायकृष्णदासजीकी कहानियोंमे 'गहूला' सर्वोत्तम है। आपकी पहली कहानी १९१७ ई० में प्रकाशित हुई थी। छोटी कहानियां आप बड़ी कुशलतासे लिखते हैं।

१९१८ ई० में पं० बालकृष्ण शर्मा नवीनकी पहली कहानी

'सरस्वती' में प्रकाशित हुई थी। उनकी कहानियोंमें 'गोई जीजी' मुझे अधिक पसन्द है।

स्वर्गीय चण्डी प्रसाद 'हृदयेश' का रचना काल १९१९ ई० है। हृदयेशजीने अपनी छोटी सी आयुमें ही बहुत कुछ लिखा। उनकी असामयिक मृत्यु पर हृदय कांप उठा था। उनका अन्तिम पत्र ८।५।२७ का मिला था, उसके एक मास बाद ही उनकी मृत्युका समाचार मिला। 'मधुकरी' के सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार करते हुए, उन्होंने अपने एक पत्रमें लिखा था—सबसे पहला लेख मैंने सम्वत् १९७१ अर्थात् १५ वर्षकी अवस्थामें लिखा था, पर वास्तविक रूपसे मेरी रचनाका विकास हुआ है १९७६ में, जिस साल मैंने बी० ए० पास किया था। उसी साल मैं 'इंडियन-डिफेन्स-फोर्स' में देहरादून रहा था। देहरादून और मसूरीकी पर्वत मालाओंने, एवं वहांकी प्राकृतिक सुषमाओंने मेरे हृदयमें स्वतः ही स्फूर्ति उत्पन्न कर दी, जिसका प्रथम फल था—'प्रेम परिणाम।' जो 'ललिता' में प्रकाशित हुआ था।

'हृदयेश' जीको अपनी कहानियोंमें 'पर्य्यवसान' और 'उन्मादिनी' अधिक पसन्द थी। उनकी रचनाओंमें उन्मादिनी'-को मैं सर्वोत्तम समझता हूं। हृदयेशजी अब एक कहानी हो

गये हैं। उनकी स्मृति आते ही हृदयसे एक आह निकल पड़ती है।

पं० गोविन्दवल्लभ पन्तकी पहली कहानी 'मिलन-मुहूर्त' १६१६ ई० में 'प्रतिभा' में निकली थी। 'जूठा आम' और 'मिलन-मुहूर्त' को मैं हिन्दीकी उच्च कोटिकी कहानियोंमें समझता हूं। पन्तजीकी कहानियोंमें भावुकता भरी रहती है। 'तैमूरलंग' और 'सबसे बड़ा रत्न' भी आपकी अच्छी कहानियोंमें है।

१६२० में सुदर्शनजीकी पहली कहानी छपी। इसके पहले आप उर्दूमें लिखा करते थे। सुदर्शनजी हिन्दीके विख्यात कहानी लेखक हैं। अपनी कहानियोंमें 'अमेरिकन रमणी' और 'कविकी स्त्री' आपको पसन्द है। अतएव इस संग्रहमें मैं उन्हीं दोनों कहानियोंको दे रहा हूं। चरित्र-चित्रण करनेमें प्रेमचन्दजी और सुदर्शनजीको कमाल हासिल है। वर्तमान हिन्दी कहानी लेखकोंमें सुदर्शनजीका प्रशंसनीय स्थान है।

'उग्र' जीका रचनाकाल १६२२ ई० है। आपकी पहली कहानी 'आज'में प्रकाशित हुई थी। इधर सात वर्षोंके भीतर ही आपने सौसे अधिक कहानियां लिखी हैं। उनकी कहानियां भिन्न भिन्न शैलियोंका उदाहरण है। 'कलाका पुरस्कार', 'मोकों 'चूनरीकी साध', 'प्यारे', 'पंडुआ', 'कुमुदिनी',' 'खुदाराम' और

हाल हीमें लिखी गई कहानी 'उसकी माँ', आदि हिन्दी साहित्यकी उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। 'उग्र' जी ऐसे प्रतिभाशाली हैं कि वह जो कुछ चाहें लिख सकते हैं। कहानी, कविता, उपन्यास, नाटक, प्रहसन सभी कुछ। वह अपनी कलाके आचार्य हैं। जो लोग उन्हें प्रतिभाशाली माननेमें संकोच करते हों, उन्हें चाहिये कि इस संग्रहमें दी गई उनकी तीन श्रेष्ठ कहानियाँ—'बुढ़ापा', 'देश-भक्त', और 'चाँदनी'का मनन करें।

अध्ययनशील पाठकोंके लिये मैं वर्तमान हिन्दी कहानी लेखकोंको तीन भिन्न भिन्न स्कूलोंमे विभाजित करूं तो अनुचित न होगा। कारण यहाँ पर किसी लेखककी किसी अन्य लेखकसे तुलना करना मेरा उद्देश नहीं है। प्रत्येक लेखक अपने स्थान पर महान है।

इन तीन स्कूलोंको इस तरह बांट सकते हैं।

(१) प्रसाद

(२) प्रेमचंद

(३) उग्र

प्रसादजी जीवनकी एक घटनाके चित्रको पूर्ण रूपसे अङ्कित कर देंगे। किन्तु जहाँ वह मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे समाप्त हो जायगा वहीं छोड़ देंगे। फिर, आगे क्या हुआ, इसे पाठकोंके सुलझानेके लिये छोड़ देना ही उनकी कला है। मनुष्य जीवनमे

सुख, दुख, हँसी, कहाँ छिपी हुई है, इसके वे पूर्ण ज्ञाता हैं। भाषाकी लोच और वर्णन शैलीकी विशेषता देखिये—

"शीरींने सहसा अपना अवगुण्ठन उलट दिया। प्रकृति प्रसन्न हो हँस पड़ी। गुलाबोंके दलमें शीरींका मुख राजाके समान सुशोभित था। मकरन्द मुंहमें भरे दो नील-भ्रमर उस गुलाबसे उड़नेमें असमर्थ थे, भौरोंके पर निस्पन्द थे। कँटीली झाड़ियोंकी कुछ परवाह न करते हुए बुलबुलोंका उनमें घुसना और उड़ भागना शीरीं तन्मय होकर देख रही थी।

उसकी सखी ज़लेखाके आनेसे उसकी एकान्त भावना भङ्ग हो गई। अपना अवगुण्ठन उलटते हुए ज़लेखाने कहा—शीरीं! वह तुम्हारे हाथों पर बैठ जाने वाला बुलबुल, आजकल नहीं दिखलाई देता?"

आह खींच कर शीरींने कहा—"कड़े शीतमें अपने दलके साथ मैदानकी ओर निकल गया। वसन्त तो आ गया पर वह नहीं लौट आया।"

ऊपरके वार्तालापमें कितना मस्ताना ढङ्ग है। एक साधारण सी बात पूछनेके लिये प्रसादजी कितनी निपुणता, और चुहलसे उसे आकर्षक बनाते है। प्रसादजीकी प्रत्येक कहानीमें कुछ विशेषता है। मानसिक विश्लेषणके सूक्ष्म सत्योंकी अभिव्यक्ति करना कथा-साहित्यकी एक प्रमुख कला है। यह रसका

अलौकिकतत्त्व ग्रहण करके चिरस्थाई होता है। प्रसादजी इस कलाके आचार्य हैं।

( २ ) प्रेमचन्द

समाजकी स्थूल घटनाओंके आधार पर व्यंग ( Satire ) के रूपमें जो कहानिया लिखी जाती हैं, उपादेयता उनका प्रधान गुण है, जो प्रायः सामाजिक हुआ करता है।

प्रेमचन्दजी समाजकी एक साधारण घटनाको लेकर बड़ी सफलतासे उसका चित्रण करते हैं। इसलिये सर्व साधारणके लिये ऐसी कहानियां रुचिकर होतीं है।

प्रेमचन्द स्कूलके लेखक, पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पं० ज्वालादत्त शर्मा, और श्रीसुदर्शनजी हैं। मेरा यहां यह तात्पर्य नहीं है कि प्रेमचंदजीकी शैलीका, कौशिकजी, शर्माजी और सुदर्शनजी अनुकरण करते है। क्योंकि आरम्भमे ही हम लिख चुके हैं, कि कौशिकजी और शर्माजीका रचना-काल प्रेमचन्दजीके पूर्वका ही है। किन्तु कहानियोंके सम्बन्धमे इन लेखकोंका दृष्टिकोण प्रायः एक ही है। और इन चारो लेखकोंकी शैलीमें बहुत कम अन्तर है ; किन्तु इनमे प्रेमचन्दजी अधिक प्रसिद्ध हैं अतएव उन्हींका स्कूल माना जायगा।

( ३ ) 'उग्र'

तीसरा स्कूल 'उग्र' जीका है, किन्तु इस स्कूलके नायक

मधुकरीमें जिन महान लेखकोंकी कृतियाँ दी गई है, उनके अतिरिक्त अभी और भी लेखक हैं। इनमें श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, हास्यरसके लिये प्रसिद्ध हैं। इस संग्रहमें इनकी कहानियाँ देनेकी मेरी बड़ी इच्छा थी ; किंतु इनके प्रकाशकके कारण, मैं ऐसा न कर सका।

श्रीरघुपतिसाहायजीका 'सफल जीवन' खोजनेमें मुझे विलम्ब हुआ। और इसी बीच 'मधुकरी' के फर्मे छप चुके थे। अतएव क्रम लगानेमें अड़चन होती। यही हाल श्रीशिवपूजन सहायजीके लिये भी हुआ। उनकी कहानियाँ तो फाइलमें थीं ; किंतु रचनाकाल और जन्मकाल उनके संकोची स्वभावके कारण विलम्बसे मालूम हुआ। और तब तक रचनाकालके क्रमसे फर्में आगे बढ़ गये थे। मधुकरीके दूसरे संस्करणमें आपकी कहानियाँ दीं जायंगी।

सरस्वती-सम्पादक श्रीपदुमलाल पुन्नालाल बख्शीकी तीन कहानियाँ मैंने चुनी थीं—'झलमला', 'नन्दिनी' और 'गूंगी'। इन कहानियोंमें बख्शीजी बड़े सफल हुए हैं। किन्तु संग्रहमें देनेके लिये, अधिकारके सम्बन्धमें कई बार मैंने उनसे पत्र-व्यवहार किया ; किन्तु स्पष्ट उत्तर न मिलनेके कारण, ये कहानियाँ नहीं दी जा सकीं।

यत्र-तत्र कभी-कभी और भी अनेक तेजस्वी नक्षत्र हमारी

आखोंके आगे चमक जाते हैं, उनमें प्रभा होती है, आकर्षण होता है। उन्हें पढ़नेसे ऐसा मालूम पड़ता है, कि यदि वे अपनी लेखनीसे अपने हृदयका रस बराबर निचोड़ते रहेंगे, तो आगे चल कर उनका नाम अच्छें अच्छोंके साथ लिया जा सकेगा।





कैसा कोलाहल, कैसा कोलाहल ! कैसी दाँतकिटकिट, कैसी तू तू-मैं मैं, कैसी मार-मार, काट-काट। और इस हाय-हाय-हाटके कोने पर तुम्हारी कैसी मनोमोहिनी, अपने आपमें मस्त मुस्कराहट।

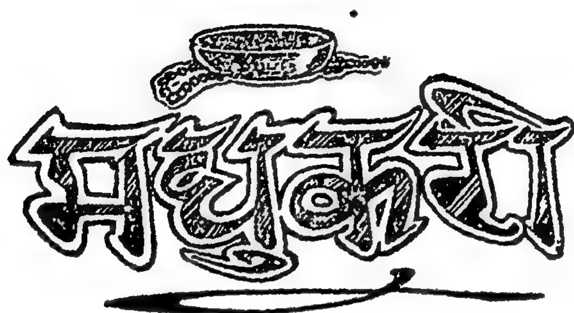
तुम लोगोंकी ओर नहीं देखते, केवल अपनी कहानी गाते जा हो। लोग झख मारकर तुम्हारा गीत सुनने लगते हैं, पुलकते हुए, छलकते हुए। और अन्तमें—आहरे बाज़ारके भावुक!—वे तुम्हारे हृदयके टुकड़ोंको द्वेषके, हिंसाके, स्वार्थके, स्पर्धाके, फिटकार और घृणाके तराजूपर रखकर तौलने लगते हैं। अन्तः-स्पर्शी गानोंका मोल उनकी कर्ण-कटु, खड़-खड़, गालियाँ चुकाती हैं!

और, तिस पर भी; हे तपस्वी ! तुम मुस्कुराते जाते हो, गाते जाते हो, बाज़ारुओंकी फिटकारों पर रसकी धार बरसाते जाते हो।

इसी लिये तो—तुम्हीं से पायी हुई इस भीख—मधुकरीको पैसे वालों, अमीरों, राजों-महाराजोंको नज़र करनेमें मुझे संकोच होता है। भय लगता है कि, कहीं उनकी चमचम, दमदम भावुकता तुम्हारी इस स्वर्गीयताको अपवित्र न कर दे।

अतः लो—हे अमर!—अपना तेज तुम्हीं संभालो। मधुकरीको अपनी अश्रु-गंगामें डुबो कर कृतार्थ करो।




মধুকরী

## श्री जयशंकर 'प्रसाद'

जन्मकाल १९४६ वि०

रचनाकाल १९११ ई०

मधुकरी



श्री जयशंकर 'प्रसाद'

# आकाश-दीप

## १

"बन्दी !"

"क्या है ? सोने दो।"

"मुक्त होना चाहते हो ?"

"अभी नहीं, निद्रा खुलने पर, चुप रहो।"

"फिर अवसर न मिलेगा।"

"बड़ा शीत है, कहींसे एक कम्बल डालकर कोई शीतसे मुक्त करता।"

"आंधी आनेकी सम्भावना है। यही अवसर है। आज मेरे बन्धन शिथिल हैं।"

"तो क्या तुम भी बन्दी हो ?"

"हां, धीरे बोलो, इस नाव पर केवल दस नाविक और प्रहरी हैं।"

"शस्त्र मिलेगा?"

"मिल जायगा। पोतसे सम्बद्ध रज्जु काट सकोगे?"

"हाँ।"

समुद्रमें हिलोरें उठने लगीं। दोनों बन्दी आपसमें टकराने लगे। पहले बन्दीने अपनेको स्वतन्त्र कर लिया। दूसरेका बन्धन खोलनेका प्रयत्न करने लगा। लहरोंके धक्के एक दूसरेको स्पर्शसे पुलकित कर रहे थे। मुक्तिकी आशा—स्नेहका असम्भावित आलिङ्गन। दोनों ही अन्धकारमें मुक्त हो गये। दूसरे बन्दीने हर्षातिरेकसे दूसरेको गलेसे लगा लिया। सहसा उस बन्दीने कहा, "यह क्या? तुम स्त्री हो?"

"क्या स्त्री होना कोई पाप है?" अपने को अलग करते हुए स्त्रीने कहा।

"शस्त्र कहां है? तुम्हारा नाम?"

"चम्पा।"

तारक-खचित नील अम्बर और नील समुद्रके अवकाशमें पवन ऊधम मचा रहा था। अन्धकारसे मिलकर पवन पुष्ट हो रहा था। समुद्रमें आन्दोलन था। नौका लहरोंमें विकल थी। स्त्री सतर्कतासे लुढ़कने लगी। एक मतवाले नाविकके शरीरसे टकराती हुई सावधानीसे उसका कृपाण निकाल कर फिर ढुलकते हुए बन्दीके समीप पहुंच गई। सहसा पोतके पथदर्शकने चिल्लाकर कहा, "आंधी!"

घंटा बजने लगा। सब सावधान होने लगे। बन्दी युवक उसी तरह पड़ा रहा। किसीने रस्सी पकड़ी, कोई पाल खोल रहा था। पर युवक बन्दी ढुलक कर उस रज्जुके पास पहुंचा जो पोतसे सलग्न थी। तारे ढंक गये। तरंगें उद्वेलित हुईं, समुद्र गरजने लगा। भीषण आंधी-पिशाचिनीके समान नावको अपने हाथोंमें लेकर कन्दुक-क्रीड़ा और अट्टहास करने लगी।

एक झटकेके साथ ही नाव स्वतन्त्र थी। उस संकटमें भी दोनों बन्दी खिल-खिलाकर हँस पड़े। आंधीके हाहाकारमें उसे कोई न सुन सका।

## २

अनन्त जलनिधिमें उषाका मधुर आलोक फूट उठा। सुनहली किरणों और लहरोंकी कोमल सृष्टि मुस्कराने लगी। सागर शान्त था। नाविकोंने देखा, पोतका पता नहीं। बन्दी मुक्त हैं। नायकने कहा, "बुद्धगुप्त! तुमको मुक्त किसने किया?" कृपाण दिखाकर बुद्धगुप्तने कहा, "इसने"।

नायकने कहा, "तो तुम्हें फिर बन्दी बनाऊँगा।"

"किसके लिए? पोताध्यक्ष मणिभद्र अतल जलमें होगा।" नायक! अब इस नौकाका स्वामी मैं हूँ।"

"तुम! जलदस्यु बुद्धगुप्त! कदापि नहीं।" चौंककर नायकने कहा और अपना कृपाण टटोलने लगा। चम्पाने इसके पहले उसपर अधिकार कर लिया था। वह क्रोधसे उछल पड़ा।

"तो तुम द्वन्द्व युद्धके लिए प्रस्तुत हो जाओ। जो विजयी होगा वही स्वामी होगा।" इतना कह बुद्धगुप्तने कृपाण देनेका सकेत किया। चम्पाने कृपाण नायकके हाथमें दे दिया।

भीषण घात-प्रतिघात आरम्भ हुआ। दोनों कुशल, दोनों त्वरित गति-वाले थे। बड़ी निपुणतासे बुद्धगुप्तने अपना कृपाण दाँतोंसे पकड़ कर अपने दोनों हाथ स्वतन्त्र कर लिये। चम्पा भय और विस्मयसे देखने लगी। नाविक प्रसन्न हो गये। परन्तु बुद्धगुप्तने लाघवसे नायकका कृपाणवाला हाथ पकड़ लिया और विकट हुंकारसे दूसरा हाथ कटिमें डाल उसे गिरा दिया। दूसरे ही क्षण प्रभातकी किरणोंमें बुद्धगुप्तका विजयी कृपाण उसके हाथोंमें चमक उठा। नायककी कायर आँखें प्राण-भिक्षा मांगने लगीं। बुद्धगुप्तने कहा,—

"बोलो अब स्वीकार है कि नहीं?"

"मैं अनुचर हूँ, वरुणदेवकी शपथ। मैं विश्वासघात न करूंगा।" बुद्धगुप्तने उसे छोड़ दिया। चम्पाने युवक जलदस्युके समीप आकर उसके क्षतोंको अपनी स्निग्ध दृष्टि और कोमल करोंसे वेदनाविहीन कर दिया। बुद्धगुप्तके

सुगठित शरीर पर रक्तबिन्दु विजय-तिलक कर रहे थे।

विश्राम लेकर बुद्धगुप्तने पूछा, "हम लोग कहाँ होंगे ?"

"बालीद्वीपसे बहुत दूर, सम्भवत एक नवीन द्वीपके पास जिसमें अभी हम लोगोंका बहुत कम जाना-आना होता है। सिंहलके वणिकोंका वहां प्राधान्य है।"

"कितने दिनोंमें हम लोग वहां पहुंचेंगे ?"

"अनुकूल पवन मिलने पर दो दिनमें। तब तकके लिए खाधका अभाव न होगा।" सहसा नायकने नाविकोंको डांड़ लगानेकी आज्ञा दी और स्वय पतवार पकड़ कर बैठ गया। बुद्धगुप्तके पूछने पर उसने कहा, "यहाँ एक जलमग्न शैलखण्ड है। सावधान न रहनेसे नावके टकरानेका भय है।"

२

"तुम्हें इन लोगोंने बन्दी क्यों बनाया ?"

"वणिक् मणिभद्रकी पापवासनाने।"

"तुम्हारा घर कहां है ?"

"जाह्नवीके तट पर चम्पा नगरीकी एक क्षत्रिय-बालिका हूं। पिताजी इसी मणिभद्रके यहां प्रहरीका काम करते थे। माताका देहावसान हो जाने पर मैं भी पिताजीके साथ नाव पर ही रहने लगी। आठ बरससे समुद्र ही मेरा घर है। तुम्हारे आक्रमणके समय मेरे पिताजीने ही सात दस्युओंको मार कर जल-समाधि ली। एक मास हुआ मैं इस नील नभके नीचे नील जलनिधिके ऊपर एक भयानक अनन्ततामें निस्सहाय हूं, अनाथ हूं। मणिभद्रने मुझसे एक दिन घृणित प्रस्ताव किया। मैंने उसे गालियां सुनाईं। उसी दिनसे बन्दी बना दी गई।" चम्पा रोषसे जल रही थी।

"मैं भी ताम्रलिप्तिका एक क्षत्रिय हूं चम्पा! परन्तु दुर्भाग्यसे जलदस्यु बनकर जीवन बिताता हूं। अब तुम क्या करोगी ?"

“मैं अपने अदृष्टको अनिर्दिष्ट ही रहने दूंगी। वह जहां ले जाय।” चम्पाकी
आंखें निस्सीम प्रदेशमें निरुद्देश्य थीं। उनमें किसी आकांक्षाके लाल डोरे
न थे। धवल अपाङ्गमें बालकोंके सदृश विश्वास था। हत्या-व्यवसायी दस्यु
भी उसे देखकर कांप गया। उसके मनमें एक सम्भ्रमपूर्ण श्रद्धा यौवनकी
पहली लहरोंको जगाने लगी। समुद्र-वक्ष पर विलम्बमयी राग-रञ्जित सन्ध्या
थिरकने लगी। चम्पाके असंयत कुन्तल उसकी पीठ पर बिखरे थे। दुर्दान्त
दस्युने देखा, अपनी महिमामें अलौकिक एक तरुण-बालिका। वह विस्मयसे
अपने हृदयको टटोलने लगा। उसे एक नई वस्तुका पता चला।

वह थी कोमलता।

उसी समय नायकने कहा, “हम लोग द्वीपके पास पहुंच गये।”

वेलासे नाव टकराई। चम्पा निर्भीकतासे कूद पड़ी। मांझी भी उतरे।
बुद्धगुप्तने कहा, “जब इसका कोई नाम नहीं है तो हम लोग इसे चम्पाद्वीप
कहेंगे।” चम्पा हँस पड़ी।

## ४

पांच बरस बाद :—

शरद्के धवल नक्षत्र नील गगनमें झलमला रहे थे। चन्द्रके उज्ज्वल विजय-
पर अन्तरिक्षमें शरद् लक्ष्मीने आशीर्वादके फूलों और खीलोंको बिखेर दिया।

चम्पाके एक उच्च सौध पर बैठी हुई तरुणी चम्पा दीपक जला रही थी।
बड़े यत्नसे अभ्रककी मञ्जूषामें दीप धर कर उसने अपनी सुकुमार उँगलियोंसे
डोरी खींची। वह दीपाधार ऊपर चढ़ने लगा। भोली भोली आँखें उसे ऊपर
चढ़ते बड़े हर्षसे देख रही थीं। डोरी धीरे धीरे खींची गई। चम्पाकी कामना
थी कि उसका आकाश-दीप नक्षत्रोंसे हिल-मिल जाय; किन्तु वैसा होना
असम्भव था। उसने आशाभरी आँखें फिरा लीं।

सामने जलराशिका रजत शृङ्गार था। वरुणबालिकाओंके लिए लहरोंसे

हीरे और नीलमकी क्रीड़ा-शैलमालाये बन रही थीं। और वे मायाविनी छलनाये अपनी हँसीका कलनाद छोड़कर छिप जाती थीं। दूर दूरसे धीवरोंकी वंशीकी झनकार उनके संगीत-सा मुखरित होता था। चम्पाने देखा कि तरङ्ग-सङ्कुल जलराशिमें उसके कंडीलका प्रतिबिम्ब अस्तव्यस्त था। वह अपनी पूर्णताके लिए सैकड़ों चक्कर काटता था। वह अनमनी होकर उठ खड़ी हुई। किसीको पास न देखकर पुकारा, "जया !"

एक श्यामा युवती सामने आकर खड़ी हुई, वह जङ्गली थी। नील नभो-मण्डलसे मुखमें शुभ्र नक्षत्रोंकी पंक्तिके समान उसके दांत हँसते ही रहते। वह चम्पाको रानी कहती। बुद्धगुप्तकी आज्ञा थी।

"महानाविक कब तक आवेंगे, बाहर पूछो तो।" चम्पाने कहा। जया चली गई। दूरागत पवन चम्पाके अञ्चलमें विश्राम लेना चाहता था। उसके हृदयमें गुदगुदी हो रही थी। आज न जाने क्यों वह बेसुध थी। एक दीर्घकाय दृढ़ पुरुषने उसकी पीठ पर हाथ रखकर उसे चमत्कृत कर दिया। उसने फिर कर कहा, "बुद्धगुप्त"। "बावली हो क्या ? यहाँ बैठी हुई अभी तक दीप जला रही हो, तुम्हें यह काम करना है ?"

"क्षीरनिधिशायी अनन्तकी प्रसन्नताके लिए क्या दासियोंसे आकाश-दीप जलवाऊँ ?"

"हँसी आती है। तुम किसको दीप जलाकर पथ दिखलाना चाहती हो ? उसको, जिसको तुमने भगवान् मान लिया है ?"

"हाँ वह भी कभी भटकते हैं, भूलते हैं, नहीं तो बुद्धगुप्तको इतना ऐश्वर्य्य क्यों देते ?"

"तो बुरा क्या हुआ, इस द्वीपकी अधीश्वरी चम्पा रानी ?"

"मुझे इस बन्दीगृहसे मुक्त करो। अब तो बाली जावा और सुमात्राका वाणिज्य केवल तुम्हारे ही अधिकारमें है महानाविक। परन्तु मुझे उन दिनोंकी स्मृति सुहावनी लगती है जब तुम्हारे पास एक ही नाव थी और चम्पाके उपकूलमें पण्य लादकर हम लोग सुखी जीवन बिताते थे। इस जलमें

अगणित बार हम लोगोंकी तरी आलोकमय प्रभातमें—तारकाओंकी मधुर ज्योतिमें—थिरकती थी। बुद्धगुप्त! उस विजन अनन्तमें जब माँझी सो जाते थे, दीपक बुझ जाते थे, हम तुम परिश्रमसे थककर पालोंमें शरीर लपेटकर एक दूसरेका मुह क्यों देखते थे। वह नक्षत्रोंकी मधुर छाया"—

"तो चम्पा! अब उससे भी अच्छे ढङ्गसे हम लोग विचर सकते हैं। तुम मेरी प्राणदात्री हो, मेरी सर्वस्व हो।"

"नहीं नहीं, तुमने दस्युवृत्ति तो छोड़ दी परन्तु हृदय वैसा ही अकरुण, सतृष्ण और ज्वलनशील है। तुम भगवान्‌के नाम पर हँसी उड़ाते हो। मेरे आकाश-दीप पर व्यङ्ग कर रहे हो। नाविक! उस प्रचण्ड आँधीमें प्रकाशकी एक एक किरणोंके लिये हम लोग कितने व्याकुल थे। मुझे स्मरण है जब मैं छोटी थी मेरे पिता नौकरी पर समुद्रमें जाते थे—मेरी माता, मिट्टीका दीपक बाँसकी पिटारीमें जलाकर भागीरथीके तट पर बाँसके साथ ऊँचे टाँग देती थी। उस समय वह प्रार्थना करती, 'भगवान्! मेरे पथभ्रष्ट नाविकको अन्धकारमें ठीक पथ पर ले चलना।' और जब मेरे पिता बरसों पर लौटते तो कहते 'साध्वी! तेरी प्रार्थनासे भगवान्‌ने भयानक सङ्कटोंमें मेरी रक्षा की है।' वह गद्गद हो जाती। मेरी माँ! आह नाविक!! यह उसीकी पुण्य-स्मृति है। मेरे पिता, वीर पिताकी मृत्युके निष्ठुर कारण जलदस्यु! हट जाओ।" सहसा चम्पाका मुख क्रोधसे भीषण होकर रङ्ग बदलने लगा। महानाविकने कभी यह रूप न देखा था। वह ठठाकर हँस पड़ा। "यह क्या? चम्पा तुम अस्वस्थ हो जाओगी, सो रहो" कहता हुआ चला गया। चम्पा मुट्ठी बाँधे उन्मादिनी-सी घूमती रही।

## ५

निर्जन समुद्रके उपकूलमें वेलासे टकरा कर लहरें बिखर जाती हैं। पश्चिमका पथिक थक गया था। उसका मुख पीला पड़ गया। अपनी शान्त गम्भीर

हलचलमें जलनिधि विचारमें निमग्न था। वह जैसे प्रकाशकी उन मलिन किरणोंसे विरक्त था।

चम्पा और जया धीरे धीरे उस तट पर आकर खड़ी हो गई। तरङ्गसे उठते हुए पवनने उनके वसनको अस्तव्यस्त कर दिया। जयाके सकेतसे एक छोटी-सी नौका आई। दोनोंके उस पर बैठते ही नाविक उतर गया। जया नाव खेने लगी। चम्पा मुग्ध-सी समुद्रके उदास वातावरणमें अपनेको मिश्रित कर देना चाहती थी। "इतना जल! इतनी शीतलता!! हृदयकी प्यास न बुझी। पी सकूगी? नहीं। तो जैसे वेलासे चोट खाकर सिन्धु चिल्ला उठता है, उसीके समान रोदन करु या जलते हुए उस स्वर्ण-गोलकके सदृश अनन्त जलमें डूब कर बुझ जाऊँ। चम्पाके देखते देखते पीड़ा और ज्वलनसे आरक्त विम्ब धीरे धीरे सिन्धुमें चौथाई—आधा फिर सम्पूर्ण विलीन हो गया। एक दीर्घ नि:श्वास लेकर चम्पाने मुह फिरा लिया। देखा तो महानाविकका बजरा उसके पास है। बुद्धगुप्तने झुक कर हाथ बढाया। चम्पा उसके सहारे बजरे पर चढ़ गई। दोनों पास पास बैठ गये।

"इतनी छोटी नाव पर इधर घूमना ठीक नहीं। पास ही वह जल-मग्न शैलखण्ड है। कहीं नाव टकरा जाती या ऊपर चढ जाती, चम्पा, तो?"

"अच्छा होता बुद्धगुप्त! जलमें बन्दी होना कठोर प्राचीरोंसे तो अच्छा है।"

"आह चम्पा! तुम कितनी निर्दय हो। बुद्धगुप्तको आज्ञा देकर देखो तो, वह क्या नहीं कर सकता। जो तुम्हारे लिए नये द्वीपकी सृष्टि कर सकता है, नयी प्रजा खोज सकता है, नये राज्य बना सकता है, उसकी परीक्षा लेकर देखो तो ... ... ..कहो, चम्पा, वह कृपाणसे अपना हृदय-पिण्ड निकाल अपने हाथों अतल जलमें विसर्जन कर दे।" महानाविक, जिसके नामसे बाली, जावा और चम्पाका आकाश गूजता था, पवन थर्राता था, घुटनोंके बल चम्पाके सामने छल-छलाई आंखोंसे बैठा था।

सामने शैलमालाकी चोटी पर, हरियालीमें, विस्तृत जल-प्रदेशमें नील पिङ्गल सन्ध्या। प्रकृतिकी एक सहृदय कल्पना, विश्रामकी शीतल छाया,

स्वप्न-लोकका सृजन करने लगी। उस मोहिनीके रहस्य-पूर्ण नील जालका कुहक स्फुट हो उठा। जैसे मदिरासे सारा अन्तरिक्ष सिक्त हो गया। सृष्टि नील कमलोंसे भर उठी। उस सौरभसे पागल चम्पाने बुद्धगुप्तके दोनों हाथ पकड़ लिये। वहाँ एक आलिङ्गन हुआ, जैसे क्षितिजमें आकाश और सिन्धुवीचिका। किन्तु उस परिरम्भमें सहसा चैतन्य होकर चम्पाने अपनी कञ्चुकीसे एक कृपाण निकाल लिया।

"बुद्धगुप्त! आज मैं अपना प्रतिशोधका कृपाण अतल जलमें डुबा देती हूँ। हृदयने छल किया, बार बार धोका दिया।" चमक कर वह कृपाण समुद्रका हृदय बेधता हुआ विलीन हो गया। "तो आजसे मैं विश्वास करूं? मैं क्षमा कर दिया गया?" आश्चर्य-कम्पित कण्ठसे महानाविकने पूछा।

"विश्वास! कदापि नहीं, बुद्धगुप्त! जब मैं अपने हृदय पर विश्वास नहीं कर सकी, उसीने धोखा दिया, तब मै कैसे कहूं? मै तुम्हे घृणा करती हूं फिर भी तुम्हारे लिए मर सकती हूँ। अन्धेर है जलदस्यु! तुम्हे प्यार करती हूँ।' चम्पा रो पड़ी।

वह स्वप्नोंकी रङ्गीन सन्ध्या तमसे अपनी आँखें बन्द करने लगी थी। दीर्घ निःश्वास लेकर महानाविकने कहा, "इस जीवनकी पुण्यतम घड़ीकी स्मृतिमें एक प्रकाश-गृह बनाऊँगा चम्पा! यही उस पहाड़ी पर सम्भव है कि मेरी जीवन की धुँधली सन्ध्या उससे आलोक-पूर्ण हो जाय।"

## ६

चम्पाके दूसरे भागमें एक मनोरम शैल-माला थी। बहुत दूर तक सिन्धु-जलमें निमग्न थी। सागरका चञ्चल जल उस पर उछलता हुआ उसे छिपाये था। आज उसी शैल-माला पर चम्पाके आदि-निवासियोंका समारोह था। उन सबोंने चम्पाको वनदेवी-सा सजाया था। ताम्रलिप्तिके बहुतसे सैनिक और नाविकोंकी श्रेणीमें वन-कुसुम-विभूषिता चम्पा शिविकारूढ़ होकर जा रही थी।

शैलके एक ऊँचे शिखर पर चम्पाके नाविकोंको सावधान करनेके लिये सुदृढ़ दीप-स्तम्भ बनवाया गया था। आज उसीका महोत्सव है। बुद्धगुप्त स्तम्भके द्वार पर खड़ा था। शिविकासे सहायता देकर चम्पाको उसने उतारा। दोनोंने भीतर पदार्पण किया था कि बाँसुरी और ढोल बजने लगे। पंक्तियोंमें कुसुम-भूषणसे सजी वन-बालायें फूल उछालती हुई नाचने लगीं।

दीप-स्तम्भके ऊपरी खिड़कीसे यह देखती हुई चम्पाने जयासे पूछा,—"यह क्या है जया? इतनी बालिकायें कहाँसे बटोर लाईं?"

"आज रानीका ब्याह है न?" कह कर जयाने हँस दिया।

बुद्धगुप्त विस्तृत जलनिधिकी ओर देख रहा था। उसे झकझोर कर चम्पाने पूछा, "क्या यह सच है?"

"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह सच भी हो सकता है चम्पा! कितने बरसोंसे मैं ज्वालामुखीको अपनी छातीसे दबाये हूँ।"

"चुप रहो महानाविक! क्या मुझे निस्सहाय और कङ्गाल जान कर तुमने आज सब प्रतिशोध लेना चाहा।"

"मैं तुम्हारे पिताका घातक नहीं हूँ चम्पा! वह एक दूसरे दस्युके शस्त्रसे मरे।"

"यदि मैं इसका विश्वास कर सकती! बुद्धगुप्त! वह दिन कितना सुन्दर होता, वह क्षण कितना स्पृहणीय! आह! तुम इस निष्ठुरतामें भी कितने महान् होते।" जया नीचे चली गई थी। स्तम्भके सकीर्ण प्रकोष्ठमें बुद्धगुप्त और चम्पा एकान्तमें एक दूसरेके सामने बैठे थे।

बुद्धगुप्तने चम्पाके पैर पकड़ लिये। उच्छ्वसित शब्दोंमें वह कहने लगा, "चम्पा! हम लोग जन्मभूमि भारतवर्षसे कितनी दूर इन निरीह प्राणियोंमें इन्द्र और शचीके समान पूजित हैं। पर न जाने कौन अभिशाप हम लोगोंको अभीतक अलग किये है। स्मरण होता है वह दार्शनिकोंका देश! वह महिमाकी प्रतिमा, मुझे वह स्मृति नित्य आमन्त्रित करती है; परन्तु मैं क्यों नहीं जाता? जानती हो, इतना महत्त्व प्राप्त करने पर भी मैं कङ्गाल हूँ।

मेरा पत्थर-सा हृदय एक दिन सहसा तुम्हारे स्पर्शसे चन्द्रकान्त-मणिकी तरह द्रवित हुआ।"

"चम्पा! मैं ईश्वरको नहीं मानता—मैं पापको नहीं मानता—मैं दयाको नहीं समझ सकता—मैं उस लोकमें विश्वास नहीं करता। पर मुझे अपने हृदयके एक दुर्बल अंश पर श्रद्धा हो चली है। तुम न जाने कैसे एक बहकी हुई तारिकाके समान मेरे शून्यमें उदित हो गई हो। आलोककी एक कोमल रेखा इस निविड़ तममें मुस्कराने लगी। पशु-बल और धनके उपासकके मनमें किसी शान्त और कान्त कामनाकी हँसी खिलखिलाने लगी; पर मैं न हँस सका।"

"चलोगी चम्पा! पोतवाहिनी पर असंख्य धनराशि लाद कर राज-रानी-सी जन्मभूमिके अंकमें? आज हमारा परिणय हो, कल ही हम लोग भारतके लिये प्रस्थान करें। महानाविक बुद्धगुप्तकी आज्ञा सिन्धुकी लहरें मानती हैं। वे स्वयं उस पोतपुञ्जको दक्षिण पवनके समान भारतमें पहुंचा देंगी। आह चम्पा! चलो।"

चम्पाने उसके हाथ पकड़ लिये। किसी आकस्मिक झटकेने एक पल भरके लिये दोनोंके अधरोंको मिला दिया। सहसा चैतन्य होकर चम्पाने कहा, "बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है, सब जल तरल है, सब पवन शीतल है। कोई विशेष आकांक्षा हृदयमें अग्निके समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवोंका सुख भोगनेके लिये और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियोंके दुखकी सहानुभूति और सेवाके लिये।"

"तब मैं अवश्य चला जाऊँगा चम्पा! यहां रह कर मैं अपने हृदय पर अधिकार रख सकूंगा, इसमें सन्देह है। आह! किन लहरोंमें मेरा विनाश हो जाय?" महानाविकके उच्छ्वासमें विकलता थी। फिर उसने पूछा, "तुम अकेली यहां क्या करोगी?"

"पहले विचार था कि कभी कभी इसी दीप-स्तम्भ परसे आलोक जला-

कर अपने पिताकी समाधिका इस जलमें अन्वेषण करूँगी। किन्तु देखती हूँ मुझे भी इसीमें जलना होगा जैसे आकाश-दीप !"

७

एक दिन स्वर्ण-रहस्यके प्रभातमें चम्पाने अपने दीप-स्तम्भ परसे देखा। सामुद्रिक नावोंकी एक श्रेणी चम्पाका उपकूल छोड़ कर पश्चिम-उत्तरकी ओर महाजल व्यालके समान सन्तरण कर रही है। उसकी आंखोंसे आँसू बहने लगे।

यह कितनी ही शताब्दियों पहलेकी कथा है। चम्पा आजीवन उस दीप-स्तम्भमें आलोक जलाती ही रही। किन्तु उसके बाद भी बहुत दिन द्वीप-निवासी, उस माया-ममता और स्नेह-सेवाकी देवीकी समाधि-सदृश उसकी पूजा करते थे।

कालके कठोर हाथोंने वहां उसे अपनी चञ्चलतासे गिरा दिया।



# बिसाती

उद्यानकी शैलमालाके नीचे एक हरा-भरा छोटा-सा गांव है। वसन्तका सुन्दर-समीर उसे आलिङ्गन करके फूलोंके सौरभसे उसके झोपड़ोंको भर देता है। तलहटीके हिम-शीतल झरने उसको अपने बाहुपाशमें जकड़े हुए हैं। उस रमणीय-प्रदेशमें एक स्निग्ध-सगीत निरन्तर चला करता है। जिसके भीतर बुलबुलोंका कलनाद, कम्प और लहर उत्पन्न करता है।

दाड़िमके लाल फूलोंकी रगीली छाया सन्ध्याकी अरुण किरणोंसे चमकीली हो रही थी। शीरी उसीके नीचे शिला-खण्ड पर बैठी हुई सामने गुलाबोंकी झुरमुट देख रही थी। जिसमें बहुतसे बुलबुल चहचहा रहे थे, समीरणके साथ छल-छलैया खेलते हुए अवकाशको अपने कलरवसे गुञ्जरित कर रहे थे।

शीरींने सहसा अपना अवगुण्ठन उलट दिया। प्रकृति प्रसन्न हो

हँस पड़ी। गुलाबोंके दलमें शीरींका मुख राजाके समान सुशोभित था। मकरन्द मुहँमें भरे दो नील-भ्रमर उस गुलाबसे उड़नेमें असमर्थ थे, भौंरोंके पर निस्पन्द थे। कँटीली झाड़ियोंकी कुछ परवाह न करते हुए बुलबुलोंका उनमें घुसना और उड़ भागना शीरीं तन्मय होकर देख रही थी।

उसकी सखी जुलेखाके आनेसे उसकी एकान्त भावना भंग हो गई। अपना अवगुण्ठन उलटते हुए जुलेखाने कहा—"शीरीं! वह तुम्हारे हाथों पर बैठ जाने वाला बुलबुल, आजकल नहीं दिखलाई देता ?"

आह खींच कर शीरींने कहा—"कड़े शीतमें अपने दलके साथ मैदानकी ओर निकल गया। वसन्त तो आ गया पर वह नहीं लौट आया।"

"सुना है कि ये सब हिन्दोस्तानमें बहुत दूर तक चले जाते हैं। क्या यह सच है शीरीं ?"

"हाँ प्यारी! उन्हें स्वाधीन विचरना अच्छा लगता है। इनकी जाति बड़ी स्वतन्त्रता प्रिय है।"

"तूने अपनी घुघराली अलकोंके पाशमें उसे क्यों न बांध लिया ?"

"मेरे पाश उस पक्षीके लिए ढीले पड़ जाते थे।"

"अच्छा लौट आवेगा, चिन्ता न कर। मैं घर जाती हूं।"

शीरींने सिर हिला दिया।

जुलेखा चली गई।



जब पहाड़ी आकाशमें सन्ध्या अपने रंगीले पट फैला देती, जब विहग केवल कलरव करते पंक्ति बांध कर उड़ते हुए गुञ्जान-झाड़ियोंकी ओर लौटते और अनिलमें उनके कोमल-परोंसे लहर उठती, जब समीर अपनी झोंकेदार तरंगोंमें बार बार अन्धकारको खींच लाता, जब गुलाब अधिकाधिक सौरभ लुटा कर हरी चादरमें मुंह छिपा लेना चाहते थे; तब शीरीं की आशा भरी दृष्टि कालिमासे अभिभूत होकर पलकोंमें छिपने लगी। वह जागते हुए भी एक स्वप्नकी कल्पना करने लगी।

"हिन्दोस्तानके एक समृद्धिशाली नगरकी एक गलीमें एक युवक पीठ पर गट्ठर लादे घूम रहा है। परिश्रम और अनाहारसे उसका मुख विवर्ण है। थक कर वह किसीके द्वार पर बैठ गया है। कुछ बेच कर उस दिनकी जीविका प्राप्त करनेकी उत्कण्ठा उसकी दयनीय बातोंसे टपक रही है। परन्तु वह गृहस्थ कहता है—"तुम्हें उधार देना हो तो दो, नहीं तो अपनी गठरी उठाओ। समझे आगा ?"

युवक कहता है—"मुझे उधार देनेकी सामर्थ नहीं।"

"तो मुझे भी कुछ नहीं चाहिए।"

शीरीं अपनी इस कल्पनासे चौंक उठी। काफिलेके साथ अपनी सम्पत्ति लाद कर खैबरके गिरि-सङ्कटको वह अपनी भावनासे पादाक्रान्त करने लगी।

उसकी इच्छा हुई कि हिन्दोस्तानके प्रत्येक गृहस्थके पास हम इतना धन रख दें कि वे अनावश्यक होने पर भी उस युवककी सब वस्तुओंका मूल्य देकर उसका बोझ उतार दें। परन्तु सरल-शीरीं निस्सहाय थी। उसके पिता एक क्रूर-पहाड़ी सर्दार थे। उसने अपना सिर झुका लिया। कुछ सोचने लगी।

सन्ध्याका अधिकार हो गया। कलरव बन्द हुआ। शीरींकी सांसोंके समान समीरकी गति अवरुद्ध हो उठी। उसकी पीठ शिलासे टिक गई।

दासीने आकर उसको प्रकृतिस्थ किया। उसने कहा—"बेगम बुला रही हैं चलिये, मेंहदी आ गई।"

महीनों हो गये। शीरींका ब्याह एक धनी सर्दारसे हो गया। झरनेके किनारे शीरींके बागमें शबरी खिची है। वसन्तका पवन अपने एक एक थपेड़ेमें सैकड़ों फूलोंको रुला देता है। मधु-धारा बहने लगती है। बुलबुल उसकी निर्दयता पर क्रन्दन करने लगते हैं। शीरीं सब सहन करती रही। सर्दारका मुख उत्साहपूर्ण था। सब होने पर भी वह एक सुन्दर प्रभात था।

एक दुर्बल और लम्बा युवक पीठ पर गट्ठर लादे सामने आकर बैठ गया।

शीरींने उसे देखा पर वह किसीकी ओर देखता नहीं। अपना सामान खोल कर सजाने लगा।

सर्दार अपनी प्रेयसीको उपहार देनेके लिये कांचकी प्याली और काश्मीरके सामान छांटने लगे।

शीरीं चुपचाप थी। उसके हृदय काननमें कलरवोंका क्रन्दन हो रहा था। सर्दारने दाम पूछा। युवकने कहा—"मैं उपहार देता हूं बेचता नहीं। ये विलायती और काशमीरी सामान मैंने चुनकर लिये हैं। इनमें मूल्य ही नहीं हृदय भी लगा है। ये दाम पर नहीं बिकते।"

सर्दारने तीक्ष्ण स्वरमें कहा—"तब मुझे न चाहिये, ले जाओ—उठाओ।"

"अच्छा उठा ले जाऊंगा। मैं थका हुआ आ रहा हूं, थोड़ा अवसर दीजिये, मैं हाथ-मुह धोलू।" कह कर युवक भरभराई हुई आंखोंको छिपाते उठ गया।

सर्दारने समझा-झरनेकी ओर गया होगा। विलम्ब हुआ पर वह न आया। गहरी चोट और निर्मम व्यथाको वहन करते, कलेजा हाथसे पकड़े हुए, शीरीं गुलाबकी झाड़ियोंकी ओर देखने लगी। परन्तु इसकी आंसू भरी आंखोंको कुछ न सूझता था। सर्दारने प्रेमसे उसकी पीठ पर हाथ रखकर पूछा—"क्या देख रही हो?"

"एक मेरा पालतू बुलबुल शीतमें हिन्दोस्तानकी ओर चला गया था। वह लौट कर आज सवेरे दिखलाई पड़ा। पर जब वह पास आ गया और मैंने उसे पकड़ना चाहा तो वह उधर कोह काफ़की ओर भाग गया।" शीरींके स्वरमें कम्प था फिर भी वे शब्द बहुत सँभल कर निकले थे। सर्दारने हँसकर कहा—"फूलोंको बुलबुलकी खोज? आश्चर्य्य है।"

बिसाती अपना सामान छोड़ गया, फिर लौट कर नहीं आया। शीरींने बोझ तो उतार लिया पर दाम नहीं दिया।

——:o.——

# प्रतिध्वनि

मनुष्यकी चिता जल जाती है, और बुझ भी जाती है, परन्तु उसकी छातीकी जलन, द्वेषकी ज्वाला, सम्भव है, उसके बाद भी धक्-धक् करती हुई जला करे।

तारा जिस दिन विधवा हुई, जिस समय सब लोग रो-पीट रहे थे, उसकी ननदने, भाई के मरने पर भी, रोदनके साथ व्यंग्यके स्वरमें कहा—"अरे मैय्यारे, किसका पाप किसे खा गयारे!" तभी आसन्न वैधव्य ठेलकर अपने कानोंको ऊंचा करके, ताराने वह तीक्ष्ण व्यंग्य रोदनके कोलाहलमें भी सुन लिया था।

तारा सम्पन्न थी; इस लिये वैधव्य उसे दूर ही से डरा कर चला जाता। उसका पूर्ण अनुभव वह कभी न कर सकी। हाँ, ननद रामा अपनी दरिद्रताके दिन अपनी कन्या श्यामाके साथ किसी तरह काटने लगी। दोनों मिलकर

निराधासे कोई ब्याह करनेके लिये प्रस्तुत न होता। श्यामा १४ बरसकी हो चली। बहुत चेष्टा करके भी रामा उसका ब्याह न कर सकी। वह चल बसी।

श्यामा निस्सहाय, अकेली हो गई। पर जीवनके जितने दिन हैं, वे तो कारावासीके समान काटने ही होंगे। वह अकेली ही गङ्गा-तटपर अपनी बारीसे सटे हुए कच्चे झोपड़ेमें रहने लगी।

मन्नी नामकी एक बुढ़िया, जिसे श्यामा 'दादी' कहती थी, रातको उसके पास सो रहती, और न जाने कहांसे, कैसे उसके खाने-पीनेका कुछ प्रबन्ध कर ही देती। धीरे धीरे दरिद्रताके सब अवशिष्ट चिन्ह बिककर श्यामाके पेटमें चले गये।

पर उसकी आमकी बारी अभी नीलाम होनेके लिये हरी-भरी थी।

कोमल आतप गङ्गाके शीतल शरीरमें अभी ऊष्मा उत्पन्न करनेमें असमर्थ था। नवीन किसलय उससे चमक उठे थे। वसन्तकी किरणोंकी चोटसे कोयल कुहुक उठी। आमकी कैरियोंके गुच्छे हिलने लगे। उस आमकी बारीमें माधव ऋतुका डेरा था, और श्यामाके कमनीय कलेवर में यौवन का।

श्यामा अपने घरके द्वार पर खड़ी हुई मेष संक्रान्तिका पर्व-स्नान करने वालोंको कगारेके नीचे देख रही थी। समीप होने पर भी वह मनुष्योंकी भीड़ उसे चींटियां रेंगती हुई-जैसी दिखाई पड़ती थी।

मन्नीने आते ही उसका हाथ पकड़ कर कहा—"चल बेटी, हम लोग भी स्नान कर आवें।"

उसने कहा—"नहीं दादी, आज अंग-अंग टूट रहा है, जैसे ज्वर आनेको है।"

मन्नी चली गई।

तारा स्नान करके दासीके साथ कगारेके ऊपर चढ़ने लगी। श्यामाकी बारीके पाससे ही पथ था। किसीको वहां न देखकर ताराने संतुष्ट होकर

सांस ली। कैरियोंसे गदराई हुई डालीसे उसका सिर लग गया। डाली राहमें झुकी पड़ती थी। ताराने देखा; कोई नहीं है; हाथ बढ़ा कर कुछ कैरियां तोड़ लीं। सहसा किसीने कहा—"और तोड़ लो मामी, कल तो यह नीलाम ही होगा।"

ताराकी अग्निशिखा-सी आँखें किसीको जला देनेके लिये खौलने लगीं। फिर उसके हृदयमें वही बहुत दिनकी बात प्रतिध्वनित होने लगी—"किसका पाप किसको खा गया!" तारा चौंक उठी। उसने सोचा रामाकी कन्या व्यंग्य कर रही है। तारा होंठ चबाते हुए चली गई।

❀ ❀ ❀ ❀

एक सौ पांच—एक

एक सौ पांच—दो

एक सौ पांच रुपये—तीन!

बोली हो गई। अमीनने पूछा—"नीलामका चौथाई रुपया कौन जमा करता है?

एक गठीले युवकने कहा—"चौथाई नहीं कुल रुपया लीजिये, और ताराके नामकी रसीद बनाइये।" रुपया सामने रख दिया गया, रसीद बना दी गई।

श्यामा एक आमके वृक्षके नीचे चुपचाप बैठी थी। उसे और कुछ नहीं सुनाई पड़ता था। केवल डुग्गियोंके साथ एक-दो-तीनकी प्रतिध्वनि उसके कानोंमें गूंज रही थी। एक समझदार मनुष्यने कहा—"चलो अच्छा ही हुआ, ताराने अनाथ लड़कीके बैठनेका ठिकाना तो बना रहने दिया; नहीं गंगा किनारेका घर और तीन बीघेकी बारी, एक सौ पांच रुपये में? ताराने बहुत अच्छा किया।"

बुढ़िया मुन्नीने कहा—"भगवान् जाने, ठिकाना कहां होगा!" श्यामा चुपचाप सुनती रही। सन्ध्या हो गई। जिनका उसी अमराईमें नीड़ था, उन पक्षियोंका झुण्ड कलरव करता हुआ घर लौटने लगा। पर श्यामा न हिली; उसे भूल गया कि उसके भी घर है।

घुड़ियाके साथ अमीन साहब आकर खड़े हो गये। अमीन एक सुन्दर कहे जाने योग्य युवक थे, और उनका यह सहज विश्वास था कि कोई भी स्त्री हो, वह मुझे एक बार अवश्य देखेगी। श्यामाके सौन्दर्य्यको तो दारिद्र्यने ढक लिया था, पर उसका यौवन छिपनेके योग्य न था। कुमार यौवन अपनी क्रीड़ामें विह्वल था। अमीनने कहा—"मन्नी! पूछो, मैं रुपया दे दूं—अभी एक महीनेकी अवधि है। रुपया दे देनेसे नीलाम रुक जायगा।" श्यामाने एक बार तीखी आंखोंसे अमीनकी ओर देखा। वह पुष्ट कलेवर अमीन उस अनाथ बालिकाकी दृष्टि न सह सका, धीरेसे चला गया। मन्नीने भी देखा, बरसातीकी-सी गीली चिता श्यामाकी आंखोंमें जल रही थी। मन्नीका साहस न हुआ कि उससे घर चलनेके लिये कहे। उसने सोचा, ठहर कर आऊंगी, तो इसे घर लिवा जाऊंगी। परन्तु जब वह लौट कर आई, तो रजनीके अन्धकारमें बहुत खोजने पर भी श्यामाको न पा सकी।

ताराका उत्तराधिकारी हुआ उसके भाईका पुत्र प्रकाश। अकस्मात् सम्पत्ति मिल जानेसे जैसा प्रायः हुआ करता है, वही हुआ—प्रकाश अपने आपेमें न रह सका। वह उस देहातका प्रथम श्रेणीका विलासी बन बैठा। उसने ताराके पहले घरसे कोस भर दूर श्यामाकी बारीको भली भांति सजाया, उसका कच्चा घर तोड़ कर बंगला बन गया। अमराईमें लड़के और क्यारियां दौड़ने लगीं। वहीं प्रकाश बाबूकी बैठक जमी। अब इसे उसके नौकर 'छावनी' कहते थे।

आषाढ़का महीना था। सवेरे ही बड़ी उमस थी। पुरवाईसे घन मण्डल स्थिर हो रहा था। वर्षा होनेकी पूरी संभावना थी। पक्षियोंके झुण्ड आकाशमें अस्त-व्यस्त घूम रहे थे। एक पगली गंगाके तटसे ऊपरकी ओर चढ़ रही थी। वह अपने पादक्षेप पर एक-दो-तीन अस्फुट स्वरसे कह देती, फिर आकाशकी ओर देखने लगती थी। अमराईमें खुले फाटकसे वह घुस आई,

और आमके वृक्षोंके नीचे घूमती हुई "एक-दो-तीन" करके गिनने लगी।

लहरीले पवनका एक झोंका आया। तिरछी बूंदोंकी एक बाढ़ पड़ गई। दो-चार आम भी चू पड़े। पगली घबड़ा गई। तीनसे अधिक वह गिनना ही नहीं जानती थी। इधर बूंदोंको गिने कि आमोंको। बड़ी गड़बड़ी हुई। पर वह मेघका टुकड़ा बरसता हुआ निकल गया। पगली एक बार स्वस्थ हो गई।

महोखा एक डालसे बोलने लगा। डुग्गीके समान उसका हूप-हूप-हूप शब्द पगलीको पहचाना हुआ सा मालूम पड़ा। वह फिर गिनने लगी—एक-दो-तीन। उसके चुप होजाने पर पगलीने डालोंकी ओर देखा, और प्रसन्न होकर बोली—एक-दो-तीन। इस बार उसकी गिनतीमें बड़ा उल्लास था, विस्मय था और हर्ष भी। उसने एक ही डालमें पके हुये तीन आमोंको वृन्तों-सहित तोड़ लिया, और उन्हें झुलाते हुए गिनने लगी। पगली इस बार सचमुच बालिका बन गई, जैसे खिलौनेके साथ खेलने लगी।

माली आ गया। उसने गाली दी, मारनेके लिये हाथ उठाया। पर पगली अपना खेल छोड़कर चुपचाप उसकी ओर एकटक देखने लगी। वह उसका हाथ पकड़ कर प्रकाश बाबूके पास ले चला।

प्रकाश यक्ष्मासे पीड़ित होकर इन दिनों यहीं निरन्तर रहने लगा था। वह खांसता जाता था, और तकियेके सहारे बैठा हुआ पीकदानमें रक्त और कफ थूकता जाता था। कंकाल सार शरीर पीला पड़ गया था। मुखमें केवल नाक और बड़ी-बड़ी आंखें अपना अस्तित्व चिल्ला कर कह रही थीं। पगलीको पकड़ कर माली उसके सामने ले आया।

विलासी प्रकाशने देखा, पागल यौवन अभी उस पगलीके पीछे लगा था। कामुक प्रकाशको आज अपने रोग पर क्रोध हुआ, और पूर्ण मात्रामें हुआ। पर वह क्रोध धक्का खाकर पगलीकी ओर चला आया। प्रकाशने आम देख कर ही समझ लिया, और फूहड़ गालियोंकी बौछारसे उसकी अभ्यर्थना की।

पगलीने कहा—"यह किस पापका फल है? तू जानता है? इसे कौन खायगा? बोल? कौन मरेगा? बोल! एक-दो-तीन—"

"चोरीको पागलपनमें छिपाना चाहती है। अभी तो तुझे बीसों चाहनेवाले मिलेंगे। चोरी क्यों करती है?" प्रकाशने कहा।

एकबार पगलीका पागलपन, लाल वस्त्र पहन कर, उसकी आंखोंमें नाच उठा। उसने आम तोड़-तोड़कर प्रकाशके क्षय-जर्जर हृदय पर खींच कर मारते हुए गिना—एक-दो-तीन। प्रकाश, तकिये पर चित लेट कर, हिचकियां लेने लगा, और पगली हसते हुये गिनने लगी—एक-दो-तीन! उसकी प्रतिध्वनि अमराईमें गूज उठी।



## पं० विश्वम्भरनाथ जिज्जा

जन्मकाल १९५१ वि०

रचनाकाल १९१२ ई०

मधुकरी



श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा

# परदेसी

## १

विधवा होने पर जमुनाकी माता जसोदाने जमुनाको ससुराल नहीं भेजा। अपने पास ही रखा। जसोदाके कोई नहीं था। पतिका स्वर्गवास पहले ही हो चुका था, आज छः बरस हुए, लड़का भी मर गया। इधर जमुना भी विधवा हो गई, इस कारण उसने उसे अपने पास रखके घरकी चहल-पहल बनाये रखनेकी चेष्टा की। शहरमें जसोदाके कई मकान थे, उन्हींके किरायेसे उसका जीवन निर्वाह होता था। किराया कम नहीं था—यथेष्ट था। सूखा भोजन न करके दोनों समय अच्छा भोजन करनेके लिये काफ़ी था। घरमें जसोदा अकेली थी। साथ थी, केवल एक यही विधवा जमुना। माताकी छाती बच्चीके लिये अब भी वैसी ही दूध-भरी थी। जमुनाकी अवस्था १७

सालकी है। पतिको स्वर्गवासी हुए तीन वर्ष हो गये। सारा सुख सूखा हो गया। हृदयके उल्लास उद्गार सदाके लिये हृदयमें दब गये।

परसों चन्द्रग्रहण लगने वाला है। काशीमें चन्द्रग्रहणका बड़ा माहात्म्य है। दूर-दूरसे लोग गङ्गास्नानके लिये आते हैं। लाखों यात्रियोंकी भीड़ होती है। जसोदाका मकान गङ्गा तट पर था। उसके मकानके बाहर पक्के ओसारेमें कई दिनसे एक परदेसी यात्री आ के टिका हुआ है। यात्री युवा है, गरीब है। इस भीड़-भाड़में काशीमें कहीं ठहरनेका ठिकाना नहीं मिला। जसोदाने दया करके उसे अपने मकानके बाहर ओसारेमें स्थान दे दिया है।

## २

सन्ध्या समय जमुना जब नहा-धोकर ऊपर छत पर टहलती थी उस समय परदेसी ओसारेके बाहर चौतरे पर रोटियां ठोंकता था। जमुना देखती थी कि वह गोहरेसे सुलगाये हुए चूल्हेको फूंकते-फूंकते रोने लगता था। धूएंसे आंखे बहुत लाल हो जाती थीं, कभी कभी हाथ जल जानेसे, बहुत देर तक तड़फता था। जमुनाने एक रोज़ यह भी देखा कि उसकी दालकी बटुली उलट गई। अपना परिश्रम निष्फल देख परदेसीका खिला चेहरा मुरझा गया। जमुनाने सोचा—"माताने जहां इस परदेसी पर इतनी दया दिखाई है, वहां भोजन भी दे दिया करे तो, क्या हर्ज है।"

दिन भरकी धूपसे तपे हुए पक्के ओसारेकी गच पर परदेसी रातको केवल एक दरी बिछाके सो रहता था—गरमीकी ऊमस उसे विकल करनेमें और भी सहारा देती थी। जिस समय जमुना कई घड़े पानीसे सींची हुई ठंढी छत पर शीतलपाटी बिछा कर सोती थी—चन्द्रकी शीतल किरणें छतको धवलित करती थीं—ठंढी हवाके झोंके चलते थे—उस समय वह उस दीन परदेसीके लिये बहुत चिन्ता करती थी। मनमें सोचती थी कि बिचारा इस समय गरमीकी व्यथासे पसीनेमें तर पड़ा होगा। ओसारेकी तपती हुई पक्की गचसे उसका शरीर जलता होगा। पीठ तपती होगी। ताड़की टूटी पखी जो उसीने

दया करके उसके पास भेजवा दी थी, पपनेको हांकते हांकते ठंढा करता होगा। अनजान बिछौनेके गरम ओसारेमें जमुनाकी शीतल कल्पना चक्कर मारने लगी, वहीं छत पर शीतल चन्द्रके नीचे जमुनाका कलेजा गरमीके मारे जलने लगा। उसी रातमें, दोपहरियेकी लूहका अनुभव होने लगा।

जिस रातमें युवतियां अपने प्रेमियोंको गजरे पहिनाती हैं—नववधुएं सैयांसे मान करती हैं—जिस रातमें रसिया बालम मानवती सुन्दरियोंको मनाते-मनाते चादनी ओर खींच लेते हैं—छातीसे लगाके हसते हैं—हसाते हैं जिस रातमें मुलायम बिछौना युवक-युवतियोंकी आनन्द-क्रीड़ासे कुचला जाता है, उसी रातमें—उसी सुखमयी आनन्द रजनीमें जमुना, एक पतली शीतलपाटी पर नक्षत्रोंको गिनती हुई सवेरा कर देती थी।

## ३

सन्ध्या समय दुर्गाजीके मन्दिरसे प्रसादमें बेलेकी कलियोंकी माला जो जमुना लाई थी, इस समय उसके वक्ष पर पड़ी हुई है। उस समय, सब कलियां थीं, इस समय रात्रिमें एक कामिनीकी मुलायम छाती पर आसीन होनेके कारण प्रसन्न हो सबकी सब खिलखिल पड़ीं—सुगन्ध आने लगी। किन्तु अन्य युवतियोंके सुखका ध्यान करते-करते जमुनाने उस मालाको मींजके फेक दिया। सारा संसार सुखसे—निस्तब्ध रात्रिमें विश्राम करता था। जमुनाने अनुमान किया कि परदेसी भी ओसारेमें पखा हांकते-हांकते सो गया होगा। आकाशमें अनगिनती तारिकाये हँस रही थीं। बादलके टुकड़ोंमें चन्द्रकी लूक-लुकैया देखते-देखते जमुनाने परदेसीको एक बार देखनेका विचार किया। गरमीकी व्यथासे उसकी क्या दशा होगी, यही उसे देखनेकी इच्छा थी। सहसा उसके कानमें एक मधुर रागिनी सुन पड़ी। उसे ऐसा जान पड़ा कि मानो कोई उमङ्ग मदमाती इस खिली हुई चांदनीमें जी खोलके गा रहा है। जमुना उस गानको ध्यानपूर्वक सुनने लगी। गवैयेकी तान और गिट-किरीमें, गीत समझ नहीं पड़ता था। बहुत ध्यान देने पर समझ पड़ा—

"बेला फूले आधी रात, गजरा केकरे गरे डारूं ।
एक तो मैं बारी भोरी, मैं बारी भोरी, सय्याँ छाये परदेस,
गजरा केकरे गरे डारूं ॥"

बहुत कालकी विस्मृति, सुख स्मृतिकी नाईं वह मधुर गान जमुनाके कानोंमें घुस गया। गवैया अपनी आन्तरिक उमङ्गकी मस्तीमें गीत गा रहा था। आनन्दके उछाहसे गाया गया गीत उस निस्तब्ध चान्दनी रातमें कोयलकी सुन्दर कूककी तरह गूज उठा। मस्तीसे बजती हुई बीणा-झनकारकी नाईं जमुनाकी हृत्-तन्त्री बज उठी।

वह उठके टहलने लगी। टहलते-टहलते मुण्डेरेके पास गई। उसे जान पड़ा कि नीचे ओसारेमे कोई गा रहा है। उसने सोचा कि यह उसी परदेसीके कलकण्ठकी मधुरध्वनि है। जमुना मुग्ध होके सुनने लगी। सुनने ही नहीं लगी साथ साथ रोती भी गई।

अच्छा जमुना क्यों रोई? गानेके एक एक मर्मवेधी शब्द उसके हृदय पर अविराम चोटे मार रहे थे। जमुनाने अभी बेलेकी माला मींज कर फेक दी थी। इसी बीचमें उसे सुन पड़ा— 'बेला फूले आधी रात...' इसीसे उसका आन्तरिक पर्दा हिल उठा—नये साजमेंसे टूटे हुये दिलकी आवाज निकलने लगी। जमुना रो पड़ी।

एक सुन्दरी नायिका—जिसका पति विदेश चला गया है, आधी रातमें जब बेलेकी माला फूली तो उसकी महकसे कमरा गूज उठा—उद्भ्रान्त चित्त होके गाने लगी—"बेला फूले आधी रात गजरा केकरे गरे डारूँ।"

सुगन्धित तेल और अम्बरमें बसी हुई जवानीमें मस्त युवती अपने पति-शून्य आनन्द अभिसारमें बैठी है। पास पड़ी हुई बेलेकी माला फूल उठी। पति परदेस गया है इस कारण दुखी होके कहती है—बेला फूले आधी रात..."

अभी 'सैयां' नहीं हैं, किन्तु आनेपर उसके गलेमें माला अवश्य पड़ेगी। आज घर परदेस गया है, कल आनेपर जो अपने कर-कमलोंसे गजरा उसके

कंठमें पहनाके प्यार करेगी। चाहे वह कल आवे चाहे दो महीने बाद—पर माला उसके गलेमें अवश्य पड़ेगी।

किन्तु जिसको कोई आशा नहीं, वह क्या करे? जहां सूर्यके प्रकाशमें उज्वलता नहीं है—चन्द्रकी किरणोंमें शीतलता नहीं है—सुगन्धित कुसुम-पर भौंरा नहीं है—निर्मल नदीके जलमें लहरोंकी टक्करका एक न रुकनेवाला घोर आन्दोलन है—वहां क्या हो? तेल-रहित दीपकके समान जमुना क्या आशा करे? सब अपने सैयांको फूल चढ़ाएँगी—गजरे पहनाएगी, पर जमुना अपनी प्रेम पुष्पांजलि किसे चढ़ावे? जिसका पति न कल आवेगा—न दो महीने बाद—न जीवन पर्यन्त वह किस आशा पर कहे "सैयां गए परदेस गजरा केकरे गरे डारूं..."

चांदनीके स्वच्छ-प्रकाशमें पृथिवी, वृक्ष, लता, घास-पात, मकान-अटारी सभी हसते-हसते लोट रहे हैं, जमुनाकी हसी किसने छीन ली?

कृष्ण पक्षके चमकीले तारोंकी ज्योति मन्द पड़ गई थी। टहाका खिली हुई चांदनीके हृदयमें आनन्दका प्रादुर्भाव हो रहा था। परदेसी उसी आनन्दकी उमङ्गमें गा रहा था। उसके गान और तान दोनोंमें करुणा थी। आवाजमें दर्द था। इसीसे, जमुनाके भी हृदयमें दर्द होने लगा, आन्तरिक वीणाके ऋषभ, गधार और मध्यम स्वरसे बजने लगा। जमुना हिचकियां ले लेकर रोने लगी। गान बन्द हो गया। पर जमुनाका करुण-क्रन्दन नहीं बन्द हुआ।

## ४

आज चन्द्रग्रहणका महान पर्व है। बहुतसे मेवेवाले, चूरनवाले, और अन्य दुकानदार अपनी अपनी दुकानोंको साजे हैं। इन विचारोंको यात्रियोंसे विशेष लाभकी सम्भावना है। इसीसे अपनी अपनी दुकानोंको सब साज-साजके बैठे हैं। एक ओर बालक बालिका गण चर्खियोंमें झूलेका आनन्द ले रही हैं।

बूढे, बच्चे, जवान सभी आए थे। हिन्दू धर्मका सच्चा विश्वास, दूर दूर देशों—और गावोंके कितने हजार मनुष्योंको खींच लाया था। ऐसा जान पड़ता था कि मानों अनन्त कतारमें मनुष्य रूपी अनगिनती नद-नाले, अपने अन्यान्य सहायक धाराओंके साथ एक महासागरमें मिलने जा रहे हैं। सब मनुष्योंका धर्म विशाल एक न रुकनेवाली सरिताकी नाईं उमड़ा हुआ था। चारों ओरसे ध्वनि आ रही थी—"गङ्गा माईकी जय।"

लड़की, लड़के, जवान, बूढे सभी नरनारी, विमल उज्वल जलमें स्नान कर अक्षय पुण्यका सुख लूट रहे थे। पवित्रताकी खान और प्यासोंको बुझानेवाली गङ्गा माई भी स्वच्छ निर्मल जलसे अपने बच्चोंको नहला-नहलाकर पवित्र करनेके लिये उत्सुकतासे उछल रही थीं।

स्वयंसेवक और पुलिसका यथेष्ट प्रबन्ध था। कोई यात्री पददलित न हो जाय, कोई बूढा-बच्चा दबके मर न जाय, इसलिये चारों ओर अच्छा पहरा था।

शामकी नौबत झरी। 'गौरी' में शहनाई बजी। डंके पर थाप पड़ने लगी। कुछ अँधेरा होते देखकर जसोदाने कहा—"चल जमुना! हम भी स्नान कर आवें। ग्रहण लग गया।"

दोनों स्त्रियां धोती ले-लेके स्नान करने चलीं। जमुनाको बाहर ओसारेमें परदेसी नहीं देख पड़ा। उसने सोचा—यह शायद हमसे पहिले नहाने चला गया है, इसीसे नहीं देख पड़ता।

गङ्गाजीमें गोता लगाते हुए जमुनाने देखा कि उसका परदेसी भी दूरपर खड़ा हुआ नहा रहा है। जमुनाको परदेसीने कभी देखा नहीं था। वह उसके सामने नहीं हुई थी। वह घरमें थी। देखता कैसे? इसी देखनेके लिये जमुना अब तक मरती थी। वह चाहती थी कि एक बार किसी भी दृष्टिसे यह परदेसी उसकी ओर निहार दे। आज गङ्गाजीमें उसकी यह तृष्णा बुझ गई। परदेसी उसकी ओर एक सामान्य—साधारण दृष्टिसे देख, फिर नहाने लगा।

जीवन सफल हो गया! इसी दृष्टिके लिये जमुना अब तक व्याकुल थी। पर प्रेम-शून्य दृष्टिसे उसकी तृष्णा पूर्णतः नहीं बुझी।

## ५

रातके दस बज चुके हैं। जमुना खा के रोज़की तरह आज भी ठंढी छत-पर—शीतलपाटी बिछाके लेटी है। आज भी कल वाला गीत सुननेकी उत्कट अभिलाषा है। ग्यारह बज गया, बारह, फिर एक बजा, दो भी बज गये, पर अबतक गवैएकी वह तान न सुन पड़ी। गवैया कहां गया, यह जाननेके लिये वह नीचे झांकने लगी।

पर सड़क पर क्या दिखेगा? परदेसी गवैया तो ओसारेमें गाता था, इसलिये उसने एक वार उसे नीचे जाके देखनेका विचार किया।

दबे पांव जमुना नीचे गई। अन्दरसे, किवाड़के झरोखेसे उसने देखा। देखा, ओसारेमें कोई नहीं है—शून्य हृदयकी नाईं खाली ओसारा धांय-धांय कर रहा है। क्षण भर अंधकारमें परदेसीकी कल्पना करते करते—शून्य स्नेह सम्पन्न प्रेम मूर्त्तिका आवाहन करते करते जमुना वहीं सिर थामके बैठ गई।

आशाका भी क्या प्रबल प्रताप है। मनुष्यको कभी निराशा नहीं होती। इसका पग सदा आगे चलता है। तुरन्त फांसी पर लटकाए जानेवाले मनुष्यको छूट जानेकी आशा बनी रहती है—सम्भव है न्यायाधीश अब भी दया करके उसे टिकठी परसे उतरवानेकी आज्ञा दे दे। इसी तरह दुःख-में सदा सुखकी आशा बनी रहती है। वही सुखमयी आशा, इस समय कोयल बनके दुखिया जमुनाके हृदयमें कूकने लगी। उसने आशा की—सोचा, सम्भव है परदेसी कहीं चला गया हो! प्रभातमें आ जाय। अपने गवकी कल्पना करके दुखिया जमुना क्षण भरके लिये सुखी हो गई।

थोड़ी देरके बाद फिर कोठे पर गई। चन्द्रदेव चमक रहे थे। उस उज्वल चांदनीमें गर्म उछ्वास फेंकती हुई जमुना आकाशकी ओर निहारने लगी। बादलोंमें से तेजीके साथ जाते हुए चन्द्रदेवको देखते-देखते जमुना सो गई।

सवेरा हुआ। जमुना उन्मत्तकी नाईं नीचे ओसारेमें गई। उसने देखा, ओसारा सूनसान पड़ा है !

सप्ताह, महीने और वर्ष बीत गये। पर फिर, परदेसी नहीं देख पड़ा। फिर वह—"बेला फूले आधी रात गजरा केकरे गरे डारू" वाली मधुर तान नहीं सुन पड़ी।

चांदनी रातमें छतपर लेटे-लेटे जमुना आज भी उसी तानका अनुभव करती है। आज भी परदेसीके कलकंठकी मनोहर ध्वनि उसे अपने हृदयाकाशमें गूंजती हुई मालूम होती है। परदे पर उंगली फेरनेके समान आज भी उसके आन्तरिक तार झनझना उठते हैं—सरगमके पंचम स्वरमें कंठ-वीणा उसी कारुणिक स्वरमें बजती है—"सैयां गये परदेस गजरा केकरे गरे डारू। जमुना हंसती है—रोती है !



# पं० विश्वम्भरनाथ शर्म्मा कौशिक

दे०

कर रहल १९४२ वि०

सम्पन्न

रचनाकाल १९१२ ई०

मधुकरी-



पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

# वह प्रतिमा

## १

स्मृति—वह मर्म-स्पर्शी स्मृति, जो हृदय-पृष्ठपर कल्लोलत्पादक भावोंकी उस पक्की और गहरी-स्याहीसे अंकित की गई है, जिसका मिटना इस जन्ममें कठिन ही नहीं, प्रत्युत असम्भव है। आह! वह स्मृति कष्ट-दायिनी होने-पर भी कितनी मधुर और प्रिय है! उस स्मृतिसे हृदय जला जाता है, तन-मन राख हुआ जाता है, फिर भी उसे मिटानेकी चेष्टा करनेको, जी नहीं चहता। वह स्मृति वह मीठी छुरी है, जिसकी तेज धारसे हृदय लहू-लुहान हो रहा है; परन्तु उसमें वह मधुरता है, वह मिठास है कि, उसे कलेजेसे दूर करनेको जी नहीं चाहता। क्यों? इसलिये कि वह उस प्रेम-प्रतिमाकी स्मृति है, जिसके प्रेमके मूल्यको, जिसकी कर्तव्यशीलताकी गहराईको मैं उस समय

समझा, जब वह मुझसे सदैवके लिये बिछुड़कर मृत्युके परदेमें अदृश्य हो रही थी। उस प्रेमकी पुतलीका असली रूप मैंने उस समय देखा, जब मृत्युकी यवनिकाके बधन खुल चुके थे, और वह धीरे-धीरे हम दोनोंके बीच गिर रही थी। उसका असली जाज्वल्यमान स्वरूप देख कर मेरी आंखे झपक गईं, और फिर उस समय खुलीं, जब निष्ठुर यवनिका उसे अपनी ओटमें छिपा चुकी थी।

मेरा विवाह उस समय हुआ था, जब मेरी आयु १६ वर्षकी थी। विवाह-के दो ही वर्ष बाद गौना भी हो गया था। मेरी स्त्री चमेली साधारण सुन्दरी और कुछ पढ़ी लिखी भी थी। अधिक सुन्दरी न होने पर भी उसमें दो-एक ऐसी बातें थीं, जो हृदयको अपनी ओर उसी प्रकार खींचती थीं, जिस प्रकार सौन्दर्य्य खींच सकता है। वे बातें क्या थीं ? आह! उनकी याद आने पर आज भी कलेजेमें हूक उठती है। सच तो यह है कि केवल उन हाव-भावों पर ही कोई भी सहृदय अनुपम सौंदर्यको न्योछावर कर सकता है। वे बातें थीं—उसकी लजीली आंखे, उसकी मन्द मुसकान। उसका लजाकर मद मुसकानके साथ आंखें नीची कर लेना बड़े-से-बड़े सौन्दर्यका रङ्ग फीका कर देता था। गौना होनेके पश्चात् तीन-चार वर्ष तक हम दोनोंके दिन बड़े सुखसे कटे। इस बीचमें दो सन्ताने भी हुईं। उनमें एक पुत्र अभी तक जीवित है। एक कन्या हुई थी। वह कुछ ही महीनों बाद मर गई। कन्या उत्पन्न होनेके पश्चात् हमारे सुखमय जीवन पर पाला पड़ गया। विधातासे हम दोनोंका वह जीवन, जिसमें किसी प्रकारके भी दु:खका लेश-मात्र न था, सीधी आंखों न देखा गया। परिणाम यह हुआ कि चमेली रोग-ग्रस्त हो गई। न-जाने किस अशुभ-घड़ीमें रोगका आगमन हुआ कि उसने प्राण लेकर ही छोड़ा। रोग था राजयक्ष्मा। यह वह रोग है, जो मनुष्य-को घुला-घुलाकर मारता है। इस रोगमें मनुष्य बरसों जीवित रहता है, पर स्वस्थ एक क्षणके लिये भी नहीं होता। यही हाल चमेलीका भी हुआ।

यद्यपि रोग-ग्रस्त होनेके पश्चात् वह छः-सात वर्ष तक जीवित रही, परन्तु स्वस्थ पूर्ण एक महीने भी न रही। कभी-कभी ऐसी दशा हो जाती थी कि सरसरी दृष्टिसे देखने पर कोई रोग न मालूम होता था ; पर, तब भी, उसका जी उदास रहता था। किसी काममें जी न लगता था। केवल इन्ही बातोंसे पता चलता था कि रोगने उस परसे अपना अधिकार नहीं उठाया है।

एक वर्ष तक तो मैं उसकी इस दशा पर बड़ा चिन्तित रहा। दवा-दारू भी खूब की। परन्तु इसके पश्चत् मेरा जी कुछ ऐसा ऊब उठा कि मैंने उसे ईश्वरके भरोसे पर छोड़ दिया। साधारण रूपसे चिकित्सा होनेके अतिरिक्त और कोई विशेष चेष्टा न की।

चिकित्सकोंसे मुझे यह मालूम हुआ था कि राजयक्ष्मा बड़ा सङ्क्रामक रोग है। अतएव आप भी उसी रोगसे ग्रस्त हो जानेके भयसे मैंने उसके पास बैठना-उठना भी कम कर दिया था। इसके अतिरिक्त एक यह कारण भी था कि उसका कांति-हीन मुख और दुबला-पतला शरीर देख कर मेरा हृदय दुःखित होता था। और, सच तो यह है कि कुछ ग्लानि भी होती थी। मेरे परिवारमें मेरी माता और दो छोटी भावजें थीं। इस कारण गृहस्थी-सम्बन्धी सब काम वे ही करती थीं। यह भी एक कारण था, जिससे मुझे उससे अधिक सम्पर्क रखनेकी आवश्यकता न पड़ती थी। कभी कभी तो ऐसा होता था कि दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिन तक उससे मेरी बात-चीत तक न होती थी। मेरी इस उदासीनताको चमेली भी जानती थी ; पर उसके सम्बन्धमें उसने मुझसे कभी शिकायत नहीं की।

## २

इस प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो गया। इन दिनों मेरी चित्तवृत्ति बिलकुल बदल गई थी। अब मुझे घरमें एक क्षण रहना भी कष्टदायक मालूम होता था। जबतक बाहर रहता, चित्त प्रसन्न रहता था ; परन्तु घरमें आते ही चित्त उदास और खिन्न हो जाता था। इसीलिये दिनमें केवल दो-तीन घंटे घरमें

रहता था, और उधर रातको दस-ग्यारह बजेके पहले घर न लौटता था। मुझे नशेबाजी इत्यादि दुर्गुणों और दुर्व्यसनोंकी भी लत पड़ गई थी, क्योंकि मेरा हृदय सदैव आनन्द और प्रसन्नताके लिये लालायित रहता था। इन दुर्व्यसनोंमें मुझे आनन्द मिलता था।

एक दिन मैं दोपहरमें बैठा हुआ एक उपन्यास पढ रहा था। सहसा किसीके आनेकी आहट पाकर मैंने सिर उठाया। सामने चमेलीको देख कर कुछ सिटपिटा गया, क्योंकि मैं उससे सदैव अलग-अलग रहनेकी चेष्टा किया करता था। मैंने शिष्टाचारके नाते चमेलीसे कहा—"आओ बैठो, कहो, अब जी कैसा रहता है?"

चमेली मेरे सामने बैठ गई, और उदास स्वरमें बोली—"जैसा है, वैसा ही रहता है।"

मैं—"आख़िर कुछ मालूम तो हो, पहलेसे कुछ अच्छा है या कुछ......?"

चमेली—"अच्छा तो क्या, किसी-न-किसी प्रकार जी रही हूं। जीवनके जितने दिन है, वे तो किसी-न-किसी प्रकार पूरे ही करने पड़ेंगे।'

मैं कुछ कहनेके अभिप्रायसे बोला—"हां यह तो ठीक ही है। क्या कहें, इतनी दवा-दारू हुई, और हो रही है, पर अभी तक कुछ भी फायदा न हुआ।"

चमेली मेरी इस बातपर ध्यान न देकर बोली—"आज बीस दिन बाद तुमसे बात-चीत करनेका अवसर मिला है।"

मै—"बीस दिन। अभी आठ-दस दिन तो हुए, जब मैं तुमसे मिला था।"

चमेली—"तुम्हें बीस दिन आठ-दस दिन ही समझ पड़ते हैं; पर मेरे लिये तो बीस दिन बीस ही दिन हैं।"

मैंने कुछ लज्जित होकर कहा—"सभव है, बीस दिन हो गए हों। जबसे तुम बीमार रहने लगीं, तबसे मिलने-जुलनेका सुयोग ही नहीं लगता।"

चमेली—"सुयोग तो तब लगे, जब सुयोगके लिए कुछ चेष्टा की जाय।"

मेरा हृदय धड़कने लगा। अतःकरणपर कुछ चोट सी लगी ; क्योंकि चमेलीकी इस बातमें सत्यताका बहुत कुछ अंश था।

मैंने उपन्यासके पृष्ठ उलटते हुए कहा—"माता इत्यादिके रहते हुए इस प्रकारकी चेष्टा करना कुछ भद्दा-सा मालूम होता है।"

कहनेको तो यह बात कह गया, परन्तु मुझे ख़ुद यह बात बेतुकी-सी मालूम हुई ; क्योंकि एक वह समय भी था, जब माता इत्यादिके रहते हुए भी मैं दिनमें जितनी बार चहता था, चमेलीसे मिलनेका सुअवसर उत्पन्न ही कर लेता था।

चमेलीने भी यही बात कही। वह बोली—"मेरे बीमार होनेके पहले भी तो माता और भौजाइयां थीं।"

इसका उत्तर मैं कुछ न दे सका। मुझे चमेलीका बैठना बुरा मालूम हुआ। मैं मन-ही-मन ईश्वरसे प्रार्थना करने लगा कि कोई कारण ऐसा उत्पन्न हो जाय, जिससे चमेली मेरे पाससे उठ जाय। आह! कैसा विकट परिवर्तन था! जिस चमेलीके दर्शनोंके लिये मैं मकानके कोने और कोठरियोंमें छिपा खड़ा रहता था, उसी चमेलीका पास बैठना आज मुझे बुरा मालूम हो रहा था!

चमेली कुछ देर तक चुप रहकर बोली—"लज्जित क्यों होते हो? लज्जित होनेका कोई कारण नहीं। मैं इस बातसे ज़रा भी रुष्ट नहीं हूं। मै जानती हूं कि मुझमें अब ऐसा कोई आकर्षण नहीं रहा, जो तुम्हें मेरे पास आनेके लिये विवश करे।"

मैंने विकल होकर कहा—"आज तुम्हे यह क्या सूझा है, जो वाहियात बाते मुंहसे निकाल रही हो?"

चमेली एक लम्बी सांस लेकर बोली—"वाहियात बाते नहीं, सच्ची बाते हैं। मुझे कोई शिकायत नही, पर कुछ दुःख अवश्य है। तुम्हे यह ध्यान रखना चाहिये कि सबका जी तुम्हारा-सा नहीं है।"

मैंने कुछ रुष्ट होकर कहा—"देखो चमेली, यदि तुम ऐसी निरर्थक बातें करोगी, तो मैं उठकर चला जाऊंगा।"

रखती थी। वह मेरे अलग-अलग रहने पर भी मुझे प्रसन्न और सुखी रखने-की चिन्तामें रहती थी। यद्यपि उसका शारीरिक सौंदर्य नष्ट हो गया था, परन्तु हार्दिक सौंदर्य वैसा ही बना हुआ था; बल्कि पहलेकी अपेक्षा भी कुछ बढ़ ही गया था। यद्यपि वह पुष्प मुरझा गया था, सूख गया था, परन्तु वह गुलाबका पुष्प था कि जो सूख जाने पर भी अपनी सुगन्ध नहीं छोड़ता। इसके प्रतिकूल मेरे हृदयमें कितना गहरा परिवर्तन हो गया था! मेरा हृदय-भ्रमर उस पुष्पकी सुगन्धकी जरा भी पर्वा नहीं करता था। भ्रमरको सुगन्धसे क्या सरोकार? वह तो केवल रस चाहता है। सुगन्ध होते हुए भी वह नीरस पुष्पके पास नहीं फटकता।

एक दिन मैंने अपने पुत्र ज्ञानूको, जिसकी उम्र उस समय सात वर्षकी थी, किसी साधारण अपराध पर पीट दिया। वह रोता हुआ अपनी मां के पास गया। केवल इसी बात पर चमेलीने दूसरे दिन मुझसे मिलकर कहा—"कल तुमने ज्ञानूको बड़ी बुरी तरह मारा।"

मैंने कहा—"उसने काम ही मार खानेका किया था।"

चमेली आंखोंमें आँसू भरके बोली—"उसे मारा न करो।"

मैंने कहा—"क्यों?"

चमेली—"मुझे बड़ा दुख होता है।"

मुझे उसकी इस बात पर कुछ हँसी आई। सभी बच्चे कुछ-न-कुछ मारे-पीटे जाते हैं। इसमें इतना दुख अनुभव करनेकी क्या आवश्यकता? मैंने चमेलीसे कहा—"अपराध करने पर तो ताड़ना की ही जाती है। इसमें तुम्हारा इतना दुख मानना बिलकुल निरर्थक है।"

चमेली—"मेरे इतना दुख माननेका कारण है।"

मैं—"क्या कारण?"

चमेली—"वह बिन मां का है!"

मैं हतबुद्धि होकर बोला—"बिन मां का है?"

चमेली—"हाँ, मै ऐसा ही समझती हूं। मेरे जीवनका क्या भरोसा?

मैं अपनेको मरा हुआ ही मानती और इसी कारण उसे मातृ-हीन समझती हूं। यही कारण है कि जब उसे कोई कुछ कहता-सुनता है, जब कभी तुम मारते-पीटते हो, तब आकर वह मेरी छातीसे लग जाता है। मैं उसे हृदयसे लगाकर, चुमकार-पुचकारकर शांत कर देती हूं। पर मेरे पीछे वह किसके पास जायगा, किसके अंचलमें मुह छिपाकर बैठेगा ? कौन उसे प्यार करके प्रसन्न करेगा ? इसीलिये कहती हूं कि तुम उसे कुछ न कहा करो।"

चमेलीकी इस करुण प्रार्थनासे कुछ क्षणके लिये मेरा हृदय थर्रा गया। उसके इन शब्दोंमें न-जाने कितनी प्रबल शक्ति थी कि उसने मेरे पाषाण हृदयको भी ठेस पहुंचाई। मैंने कहा—"अच्छा अब जहांतक हो सकेगा, उसे कुछ न कहा करूंगा।"

चमेलीका अन्त समय निकट था। एक महीना हुआ, उसने चारपाईकी शरण ली थी। तबसे उसकी दशा दिन-प्रति-दिन बिगड़ती ही गई। वह जिस दिन रातको इस संसारसे सदैवके लिये विदा होनेवाली थी, उसी दिन उसने दोपहरको मुझे अपने पास बुलवाया। मैं उसके पास पहुंचा। मुझे यह तो मालूम था कि अब चमेली थोड़े ही दिनोंकी मेहमान है, पर स्वप्नमें भी यह ख्याल न आया था कि यही दिन उसका अन्तिम दिन है। मै उसके पास बैठ गया, और पूछा—"इस समय कैसा जी है ?"

चमेली कुछ मुस्कराई और बोली—"अब जी बहुत अच्छा है।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा तो क्या होगा ?"

चमेली—"मेरा चित्त इस समय जितना प्रसन्न है, उतना कभी नहीं रहा।"

मैं—"ये तो तुम्हारी बातें हैं।"

चमेली—"नही मैं सच कहती हूं।"

मैने चमेलीके मुखको ध्यान-पूर्वक देखा। आज छः वर्ष पश्चात् मुझे उसकी आंखोंमें, उसके मुखपर, वही सौन्दर्य दिखाई पड़ा, जो छ वर्ष पूर्व था। मुझे

ऐसा प्रतीत हुआ कि चमेलीको कोई रोग ही नहीं ; वह बिलकुल स्वस्थ है। न-जाने उस दिन मेरे हृदयमें उसके प्रति पहलेका-सा प्रेम क्यों उत्पन्न हो गया। छः वर्ष पश्चात् मैंने बड़े प्रेम-पूर्वक उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा—"जो तुम्हारी तबियत ऐसी ही रही, तो दो ही चार दिनमें तुम बिलकुल स्वस्थ हो जाओगी।" मेरा प्रेम-व्यवहार देख कर चमेलीने मन्द-मुसकानके साथ शरमाकर अपनी दृष्टि दूसरी ओर फेर ली। मैं विकल हो गया। वही शरमीली दृष्टि। वही मद-मुस-कान! मैंने अपने मनमें कहा—चमेलीके सौन्दर्यमें तो जरा भी अन्तर नहीं आया। क्या मैं इतने दिनों तक अन्धा रहा, जो यह बात न देख सका? ओफ! मैंने कितना घोर अनर्थ किया, जो इसकी ओरसे इतना उदासीन हो गया। मुझे क्या हो गया था? मैं इसे इतने दिन कैसे और क्यों ठुकराये रहा? इसमें कौन-सा ऐसा बुरा परिवर्तन हो गया था, जिसके कारण मैं इससे इतने दिनों घृणा करता रहा? मैं इस रत्नको छोड़कर इधर-उधर काचके टुकड़ों-से कैसे आनन्दका अनुभव करता रहा? इस लिये कि यह रोग-ग्रस्त थी? छि-छि! कितनी पाशविकता हुई! मैं यदि उसी प्रकार चेष्टा करता रहता, तो बहुत सम्भव है, यह अबतक कभी रोग-मुक्त हो गई होती। इसे रोग-ग्रस्त और इतने कष्टमें छोड़कर मैं अकेला केवल अपने ही लिए, आनन्द और सुखकी खोजमें कैसे घूमता रहा? यदि यह दुखी थी, तो मुझे इसका दुख बटाना चाहिये था, न कि इसको इस दशामें छोड़कर अकेले सुखभोग करना। ओफ! कितना अनर्थ हुआ! इसने इन सब बातोंको जानकर भी कभी कोई शिकायत नहीं की, उलटे यह सदैव मुझे प्रसन्न और सुखी रखनेकी चिन्ता करती रहती। यहां तक कि केवल मुझे सुखी करनेके लिए इसने मेरा दूसरा विवाह करानेकी भी चेष्टा की। आह! मेरे और इसके व्यवहारमें आकाश-पातालका अन्तर रहा। ओफ! मैंने बड़ा पाप किया। न-जाने इस पापसे कैसे मुक्त हो सकूगा!

चमेलीने मुझे विचार-सागरमें निमग्न देखकर पूछा—"क्या सोच रहे हो?"

मैं—"कुछ नहीं।"

चमेली—"मैंने कुछ कहनेके लिये बुलाया था।"

मैं—"कहो क्या कहती हो ?"

चमेली—"मेरे कारण तुम्हें बड़ा कष्ट मिला। मैं तुम्हारे सुख-मार्गका कांटा रही। मेरे भाग्यमें तो विधाताने सुख लिखा ही नहीं था। जितना लिखा था, वह भोगा, और वह स्वप्नमें बैकुण्ठ मिलनेकी तरह था। परन्तु मैं तुम्हारा सुख नष्ट करनेका कारण रही। अब मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि मैं तुम्हारे सुख-मार्गसे अलग हुई जाती हूँ। अब तुम संसारमें सुख भोगनेके लिये स्वतन्त्र........।"

मैं आगे कुछ न सुन सका। मैंने बेचैन होकर कहा—"चमेली, यह तुम क्या बक रही हो ? तुम्हारे बिना मुझे स्वर्गमें भी सुख नहीं मिल सकता। ईश्वर न करे......।"

चमेली कुछ विस्मित होकर बोली—"नाथ, अब लोकाचार दिखानेका समय नहीं है। यह कपट-वेष छोड़ो, और जो मैं कहती हूँ, उसे सुनो।"

मैं अत्यन्त दुखित होकर बोला—"चमेली, मैं बड़ा अधम हूँ, बड़ा नीच हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि एक घण्टा पहले तक मैं कपट-वेष धारण किये हुये था ; परन्तु ईश्वर साक्षी है, इस समय मैं अपने पिछले शुष्क-व्यवहार पर अत्यन्त लज्जित हूँ। मैंने जो कुछ किया, उसका प्रायश्चित्त यदि ये प्राण देकर भी हो सके, तो मैं करनेको तैयार हूँ। मैं अंधा हो गया था। मैं नहीं जानता, मुझे क्या हो गया था। मुझे इस बातपर आश्चर्य है कि मैंने कैसे तुमसे यह दुर्व्यवहार किया।"

इतना कहते-कहते मेरी आंखोंसे आँसू बहने लगे। मेरी हिचकी बंध गई। चमेलीकी आँखोंसे भी आंसुओंकी धारा बहने लगी।

कुछ देर बाद उसने कहा—"यदि यह बात तुमने आजसे कुछ दिनों पहले कही होती, तो कदाचित् मैं जीवित रहनेकी चेष्टा करती ; परन्तु अब कुछ नहीं हो सकता।"

मैं चौंक पड़ा। मेरी आंखोंके आगे अंधेरा आने लगा। मैंने चमेलीका सिर अपनी गोदमें रख कर कहा—"नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता। ऐसे समयमें, जब मैं अपनी भूलपर पश्चात्ताप कर रहा हूं, उसका प्रायश्चित्त करनेके लिये तैयार हूं, जब तुम अब मुझे संसारकी समस्त मूल्यवान् चीज़ोंसे प्रिय हो गई हो, तब मुझे छोड़कर जाना चाहती हो? नहीं प्रियतमे, ऐसा कभी नहीं हो सकता!"

चमेली एक आह भरकर बोली—"तुम्हारी इन बातोंसे मुझे मृत्युसे भय मालूम होता है। हृदयमें जीनेकी उत्कट लालसा उत्पन्न होती है। अभी तक मैं प्रसन्नतापूर्वक मरनेको तैयार थी; परन्तु अब तुम्हारी बातोंसे मुझे मरना दुखदाई प्रतीत हो रहा है। नाथ, मेरा अन्त समय दुखदाई न बनाओ! मुझे इस प्रकार मरनेमें कष्ट होगा। तुम यही कहो कि मैं तुमसे घृणा करता हूं। उसी प्रकार उदासीन भाव रखो। मुझे विश्वास दिला दो कि तुम्हें मेरे मरनेसे प्रसन्नता होगी, सुख होगा, जिसमें मुझे मृत्युसे भय न हो, मैं प्रसन्नता-पूर्वक मरूं।"

दुःख और पश्चात्तापसे मेरा कंठ रुंध गया। मैं उसकी बातका कोई उत्तर न दे सका। चमेलीने कहा—"इस अन्त समयमें मैं केवल एक भिक्षा तुमसे मांगती हूं।"

मैंने बड़ी कठिनतासे कहा—"क्या?"

चमेली—"मेरे ज्ञानूको कभी कुछ न कहना!"

इतना कह कर चमेली बेहोश हो गई, फिर उसे अन्तिम श्वास तक होश न आया।

---

# ताई

१

"ताऊजी, हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे?"—कहता हुआ एक
वर्षीय बालक बाबू रामजीदासकी ओर दौड़ा।

बाबू साहबने दोनों बाहें फैलाकर कहा—"हाँ बेटा ला देंगे।"

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया। उन्होंने बालकको
दमें उठा लिया, और उसका मुख चूम कर बोले—"क्या करेगा रेलगाड़ी?"

बालक बोला—"उसमें बैठ कर बड़ी दूर जायगे। हम भी जायगे, चुन्नी-
भी ले जायंगे। बाबूजीको नहीं ले जायगे। हमें लेलगाली नहीं ला देते।
ऊजी, तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायंगे।"

बाबू—"और किसे ले जायगा?"

बालक दम-भर सोच कर बोला—"वह और किसीको नही ले जायंगे।"

पास ही बाबू रामजीदासकी अर्द्धाङ्गिनी बैठी थीं। बाबू साहबने उनकी ओर इशारा करके कहा—"और अपनी ताईको नहीं ले जायगा ?"

बालक कुछ देर तक अपनी ताईकी ओर देखता रहा। ताईजी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बैठी थीं। बालकको उनके मुखका यह भाव अच्छा न लगा। अतएव वह बोला—"ताईको नहीं ले जायेंगे।"

ताईजी सुपारी काटती हुई बोलीं—"अपने ताऊजीको ही लेजा ! मेरे ऊपर दया रख।"

ताईने यह बात बड़ी रुखाईके साथ कही। बालक ताईके शुष्क व्यवहारको तुरन्त ताड़ गया। बाबू साहबने पूछा—ताईको क्यों नहीं ले जायगा ?"

बालक—"ताई हमें प्याल ( प्यार ) नहीं करतीं।"

बाबू—"जो प्यार करें तो ले जायगा ?"

बालकको इसमें कुछ सन्देह था। ताईका भाव देख कर उसे यह आशा नहीं थी कि वह प्यार करेगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहबने फिर पूछा—"क्यों रे, बोलता नहीं ? ताई प्यार करे तो, रेल पर बिठा कर ले जायगा ?"

बालकने ताऊजीको प्रसन्न करनेके लिये केवल सिर हिला कर स्वीकार कर लिया ,परन्तु मुखसे कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांङ्गिनीजीके पास ले जाकर उनसे बोले—"लो, इसे प्यार करलो, यह तुम्हें भी ले जायगा।" परन्तु बच्चेकी ताई श्रीमती रामेश्वरीको पतिकी यह चुहुलबाजी अच्छी न लगी। वह तुनककर बोलीं—"तुम्हीं रेल पर बैठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।"

बाबू साहबने रामेश्वरीकी बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चेको उनकी गोदमें बिठानेकी चेष्टा करते हुये बोले—"प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेलमें नहीं बिठावेगा।—क्यों रे मनोहर ?"

मनोहरने ताऊकी बातका उत्तर नहीं दिया। उधर ताईने मनोहरको

अपनी गोदसे ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीरमें तो चोट नहीं लगी; पर हृदयमें चोट लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहबने बालकको गोदमें उठा लिया, चुमकार-पुचकार कर चुप किया, और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला देनेका बचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भय-पूर्ण दृष्टिसे अपनी ताईकी ओर ताकता हुआ उस स्थानसे चला गया।

मनोहरके चले जानेपर बाबू रामजीदास रामेश्वरीसे बोले—"तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है? बच्चेको ढकेल दिया! जो उसके चोट लग जाती तो?"

रामेश्वरी मुंह लटकाकर बोलीं—"लग जाती, तो अच्छा होता। क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे। आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और अब आप ही ऐसी बाते करते हैं।"

बाबू साहब कुढ़कर बोले—"इसीको खोपड़ीपर लादना कहते हैं?"

रामेश्वरी—"और नहीं किसे कहते हैं? तुम्हे तो अपने आगे और किसीका दुख-सुख सूझता ही नहीं। न-जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हे इन बातोंकी कुछ परवाह ही नहीं, अपनी चुहुलसे काम है।"

बाबू—"बच्चोंकी प्यारी-प्यारी बाते सुनकर तो चाहे जैसा जी हो प्रसन्न हो जाता है। मगर तुम्हारा हृदय न-जाने किस धातुका बना हुआ है!"

रामेश्वरी—"तुम्हारा हो जाता होगा। और होनेको होता भी है; मगर वैसा बच्चा भी तो हो! पराए धनसे भी कहीं घर भरता है।" बाबू साहब कुछ देर चुप रहकर बोले—"यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।"

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—"बाते बनाना बहुत आता है। 'तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बाते अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं। नहीं तो ये दिन काहेको देखने पड़ते। तुम्हारा चलन तो दुनियासे निराला है। आदमी सन्तानके लिये न-जाने

क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं, पर तुम्हें इन बातोंसे क्या काम ? रात-दिन भाई-भतीजोंमें मगन रहते हो।"

बाबू साहबके मुखपर घृणाका भाव झलक आया। उन्होंने कहा—"पूजा-पाठ, व्रत सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग्यमें नहीं, वह पूजा-पाठसे कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।"

श्रीमतीजी कुछ रुआंसे स्वरमें बोलीं—"इसी विश्वासने तो सब चौपट कर रक्खा है ! ऐसे ही विश्वासपर सब बैठ जाय, तो काम कैसे चले। सब विश्वासपर ही बैठे रहें, आदमी काहेको किसी बातके लिये चेष्टा करे।"

बाबू साहबने सोचा कि मूर्ख स्त्रीके मुह लगना ठीक नहीं। अतएव वह स्त्रीकी बातका कुछ उत्तर न देकर वहांसे टल गए।

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़ेकी आढ़तका काम करते हैं। लेन-देन भी है। इनके एक छोटा भाई है। उसका नाम है कृष्णादास। दोनों भाइयोंका परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदासकी आयु ३५ वर्षके लगभग है, और छोटे भाई कृष्णादासकी २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान हैं। कृष्णादासके दो सन्तानें हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्याकी आयु दो वर्षके लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सतानपर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभावसे उन्हें अपनी सतान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाईकी सतानको वे अपनी ही सतान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदाससे इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पितासे भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदासकी पत्नी रामेश्वरीको अपनी सतान-हीनताका बड़ा दुःख है। वह दिन-रात सतान-ही-के सोचमें घुला करती है। छोटे भाईकी सतानपर पतिका प्रेम उनकी आंखोंमें कांटेकी तरह खटकता है।

रातको भोजन इत्यादिसे निवृत्त हो कर रामजीदास शय्यापर लेटे हुए

शीतल और मंद वायुका आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्व-री, हथेलीपर सिर रखे, किसी चिन्तामें डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहबके पाससे उठकर अपनी माँके पास गए थे।

बाबू साहबने अपनी स्त्रीकी ओर करवट लेकर कहा—"आज तुमने मनो-हरको इस बुरी तरहसे ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुख है, कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिलकुल ही अमानुषिक हो उठता है।"

रामेश्वरी बोलीं—"तुम्हींने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पंडितने कहा था कि हम दोनोंके जन्म-पत्रमें संतानका जोग है, और उपाय करनेसे संतान हो भी सकती है, उसने उपाय भी बताए थे; पर तुमने उनमेंसे एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं दोनोंमें मगन हो। तुम्हारी इस बातसे रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना-न-होना तो भगवानके अधीन है।"

बाबू साहब हँस कर बोले—"तुम्हारी-जैसी सीधी स्त्री भी......क्या कहूं, तुम इन ज्योतिषियोंकी बातोंपर विश्वास करती हो, जो दुनियां-भरके झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने-ही-की रोटियां खाते हैं।"

रामेश्वरी तुनक कर बोलीं—"तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही दिखाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफसे तो बना कर कहते ही नहीं हैं, शास्त्रमें जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अंगरेजी क्या पढ़ी, अपने आगे किसीको गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादोंके ज़मानेसे चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बताते हैं।"

बाबू साहब—"तुम बात तो समझती ही नहीं, अपनी ही ओटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। संभव है, वह सच्चा हो। परन्तु ज्योतिषियोंमें अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिषका पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, दो-एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़ कर ज्योतिषी बन बैठते हैं और लोगोंको ठगते फिरते हैं। ऐसी दशामें उनपर कैसे विश्वास किया जा सकता है?"

रामेश्वरी—"हूँ सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक सच्चे हो। अच्छा, एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में संतानकी इच्छा क्या कभी नहीं होती?"

इस बार रामेश्वरीने बाबू साहबके हृदयका कोमल स्थान पकड़ा। वह कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी साँस लेकर बोले—"भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदयमें संतानका मुख देखनेकी इच्छा न हो। परन्तु किया क्या जाय? जब नहीं है, और न होनेकी कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करनेसे क्या लाभ? इसके सिवा, जो बात अपनी संतानसे होती, वही भाईकी संतानसे भी हो रही है। जितना स्नेह अपनीपर होता, उतना ही इनपर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ासे आता, वही इनकी क्रीड़ासे भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।"

रामेश्वरी कुढ़ कर बोलीं—"तुम्हारी समझको मैं क्या कहूं। इसीसे तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हींसे तुम्हारा नाम चलेगा?"

बाबू साहब हँस कर बोले—"अरे तुम भी कहांकी पोच बातें लाईं। नाम संतानसे नहीं चलता। नाम अपनी सुकृतिसे चलता है। तुलसीदासको देशका बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदासको मरे कितने दिन हो चुके? इसी प्रकार कितने महात्मा हो गए हैं, उन सबका नाम क्या उनकी संतान ही की बदौलत चल रहा है? सच पूछो, तो संतानसे जितनी नाम चलनेकी आशा रहती है, उतनी नाम डूब जानेकी भी सम्भावना रहती है। परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है, जिससे नाम बढ़नेके सिवा घटनेकी कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरिधारीलाल कितने नामी आदमी थे? उनके संतान कहां है? पर उनकी धर्म-शाला और अनाथालयसे उनका नाम अब तक चला जा रहा है, और अभी न-जाने कितने दिनों तक चला जायगा।"

रामेश्वरी—"शास्त्र में लिखा है, जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती?"

बाबू—"मुक्तिपर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़ियेका नाम? यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानोंकी मुक्ति हो ही जाती है? मुक्तिका भी क्या सहज उपाय है। ये जितने पुत्र वाले हैं, सभीकी तो मुक्ति हो ही जाती होगी?"

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं—"अब तुम से कौन बकवाद करे। तुम तो अपने सामने किसीको मानते ही नहीं।"

३

मनुष्यका हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो, जबतक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब-तक उससे प्रेम नहीं करता। किन्तु भद्दी-से-भद्दी और बिलकुल काममें न आनेवाली वस्तुको भी यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःखका अनुभव नहीं करता, इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काममें न आनेवाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्यको दुःख होता है, इसलिए कि वह अपनी चीज़ है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज़से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशामें भी जबतक मनुष्य उस वस्तुको अपनी बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदयमें यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तबतक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्वसे प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेमसे ममत्व। इन दोनोंका साथ चोली-दामनका-सा है। ये कभी पृथक नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरीको माता बननेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माताका हृदय बननेकी पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदयमें वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे; जो एक माताके हृदयमें होते

हैं; परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमिकी तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सींचकर और इस प्रकार बीजको प्रस्फुटित करके भूमिके ऊपर लानेवाला कोई नहीं। इसीलिए उनका हृदय उन बच्चोंकी ओर खिंचता तो था, परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं, दूसरेके हैं, तब उनके हृदयमें उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेष कर उस समय उनके द्वेषकी मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वह देखती थी कि उनके पति-देव उन बच्चोंपर प्राण देते हैं, जो उनके ( रामेश्वरी के ) नहीं हैं।

शामका समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थी। पास ही उनके देवरानी भी बैठी थी। दोनों बच्चे छतपर दौड़-दौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेलको देख रही थीं। इस समय रामेश्वरीको उन बच्चोंका खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवामें उड़ते हुए उनके बाल, कमलकी तरह खिले हुए उनके नन्हे-नन्हे मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें उनका चिल्लाना, भागना, लौट जाना इत्यादि क्रीड़ाएं उनके हृदयको शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहनको मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़ कर रामेश्वरीकी गोदमें जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ा हुआ आया, और वह भी उन्हीं-की गोदमें जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गईं। उन्होंने दोनों बच्चोंको उसी प्रकार हृदयसे लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चोंके लिये तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृष्णातासे दोनोंको प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हे देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चोंकी माता हैं।

दोनों बच्चे बड़ी देरतक उनकी गोदमें खेलते रहे। सहसा उसी समय किसीके आनेकी आहट पाकर बच्चोंकी माता वहाँसे उठकर चली गई।

"मनोहर, ले तलवार!"—कहते हुए बाबू रामजीदास ऊपर आए। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरीकी गोदसे तड़पकर निकल भागे।

रामजीदासने पहले दोनोंको खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरीकी नींद-सी टूटी। पतिको बच्चोंमें मगन होते देखकर उनकी भौंवें तन गईं। बच्चोंके प्रति हृदयमें फिर वही घृणा और द्वेषका भाव जग उठा।

बच्चोंको रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरीके पास आए, और मुसकिरा कर बोले—"आज तो तुम बच्चोंको बड़ा प्यार कर रही थीं! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदयमें भी इनके प्रति कुछ प्रेम अवश्य है।"

रामेश्वरीको पतिकी यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमज़ोरी-पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुख ही नही, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पतिके उक्त वाक्यसे और भी बढ़ गया। उनकी कम-ज़ोरी पतिपर प्रगट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—"इसीलिये मैं कहता हूं कि अपनी सतानके लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगो, तो तुम्हें ये ही अपनी सतान प्रतीत होने लगेंगे। मुझे इस बातसे प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।"

यह बात बाबू साहबने नितांत शुद्ध हृदयसे कही थी, परन्तु रामेश्वरी-को इसमें व्यंगकी तीक्ष्ण गध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मनमें कहा—इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायँ, पाप कटे! आठो पहर आंखोंके सामने रहनेसे प्यार करनेको जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहबने पत्नीको मौन देखकर कहा—"अब झेंपनेसे क्या लाभ? अपने प्रेमको छिपाना व्यर्थ है। छिपानेकी आवश्यकता भी नहीं!"

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—"मुझे क्या पड़ी है, जो मैं प्रेम करूंगी? तुम्हींको मुबारक रहे! निगोड़े आप ही आ-आकर घुसते हैं। एक घरमें रहनेसे कभी-कभी हँसना-बोलना ही पड़ता है। अभी परसों ज़रा यों ही ढकेल

दिया, उसपर तुमने सैकड़ों बातें सुनाईं। सकटमें प्राण है, न यों चैन, न वों चैन।"

बाबू साहबको पत्नीके वाक्य सुनकर बड़ा क्षोभ आया। उन्होंने कर्कश स्वरमें कहा—"न जाने कैसे हृदयकी स्त्री है। अभी अच्छी खासी बैठी बच्चों-को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिटकी तरह रङ्ग बदलने लगी। अपनी इच्छासे चाहे जो करे, पर मेरे कहनेसे बल्लियों उछलती है। न-जाने मेरी बातोंमें कौन-सा विष घुला रहता है। यदि मेरा कहना ही बुरा मालूम होता है, तो न कहा करूंगा। पर इतना याद रखो कि अब जो कभी इनके विषयमें निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा! तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।"

रामेश्वरीने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोधको वह आँखों द्वारा निकालने लगीं।

जैसे-ही-जैसे बाबू रामजीदासका स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे-ही-वैसे रामेश्वरीके द्वेष और घृणाकी मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्राय बच्चोंके पीछे पति-पत्नीमें कहा-सुनी हो जाती थी, और रामेश्वरीको पतिके कटुवचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरीने यह देखा कि बच्चोंके कारण ही वह पतिकी नजरोंसे गिरती जा रही है, तब उनके हृदयमें बड़ा तूफान उठा। उन्होंने सोचा—पराए बच्चोंके पीछे यह मुझसे प्रेम कम करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मै कुछ भी नहीं। दुनियां मरती जाती है, पर इन दोनोंको मौत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर गये। न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे उस दिन घीके दिये जलाऊंगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रक्खा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुये। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत-पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदयमे अनेक प्रकारके विचार आ रहे थे। विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निजकी सन्तानका अभाव, पतिका

भाईकी सन्तानके प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद उनके विचार स्वयं उनको कष्ट-दायक प्रतीत होने लगे, तब वह अपना ध्यान दूसरी ओर लगानेके लिए उठकर टहलने लगीं।

वह टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहरको देखकर उनकी भ्रुकुटि चढ़ गई, और वह छतकी चहारदिवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गई।

सन्ध्याका समय था। आकाशमें रंग-बिरङ्गी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतङ्गोंको देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कट कर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतङ्ग गिरनेकी आशा करनेके बाद वह दौड़कर रामेश्वरीके पास आया, और उनकी टांगोंमें लिपट कर बोला—"ताई हमें पतङ्ग मंगा दो।" रामेश्वरीने झिड़क कर कहा—"चल हट, अपने ताऊसे मांग जाकर।"

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाशकी ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़में आकर अत्यन्त करुण-स्वरमें कहा—"ताई, पतङ्ग मंगा दो; हम भी उड़ावेंगे।"

इस बार उसकी भोली प्रार्थनासे रामेश्वरीका कलेजा कुछ पसीज गया। वह कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखतीं रहीं। फिर उन्होंने एक लम्बी सांस लेकर मन-ही-मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझसे बढ़ कर भाग्यवान् स्त्री संसारमें दूसरी न होती। निगोड़-मारा कितना सुन्दर है, और कैसी प्यारी-प्यारी बातें करता है। यही जी चाहता है कि उठा कर छातीसे लगा ले।

यह सोच कर वह उसके सिर पर हाथ फेरने वाली ही थी कि इतनेमें मनोहर उन्हें मौन देख कर बोला—"तुम हमें पतंग नहीं मंगवा दोगी, तो ताऊजीसे कहकर तुम्हें पिटवावेंगे।"

यद्यपि बच्चेकी इस भोली बातमें भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी-

का मुख क्रोधके मारे लाल हो गया। वह उसे झिड़क कर बोलीं—"जा कहदे अपने ताऊजीसे। देखूं, वह मेरा क्या कर लेंगे!"

मनोहर भयभीत होकर उनके पाससे हट आया, और फिर सतृष्ण नेत्रोंसे आकाशमें उड़ती हुई पतंगोंको देखने लगा।

इधर रामेश्वरीने सोचा—यह सब ताऊजीके दुलारका फल है कि बालिस्त-भरका लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाशसे एक पतंग कट कर उसी छतकी ओर आई, और रामेश्वरीके ऊपरसे होती हुई छज्जेकी ओर गई। छतके चारों ओर चहार-दिवारी थी। जहां रामेश्वरी खड़ी हुई थी, केवल वहां पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वारसे सटी हुई खड़ी थीं। मनोहरने पतंगको छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़नेके लिये वह दौड़-कर छज्जेकी ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास होकर छज्जे पर चला गया, और उनसे दो फीटकी दूरी पर खड़ा होकर पतंगको देखने लगा। पतंग छज्जे परसे होती हुई नीचे, घरके आँगनमें, जा गिरी। एक पैर छज्जेकी मुंडेर पर रख कर मनोहरने नीचे आँगनमें झांका, और पतंगको आँगनमें गिरते देख प्रसन्नताके मारे फूला न समाया। वह नीचे जानेके लिए शीघ्रतासे घूमा, परन्तु घूमते समय मुंडेर परसे उसका पैर फिसल गया। वह नीचेकी ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथोंमें मुंडेर आ गई। वह उसे पकड़ कर लटक गया, और रामेश्वरीकी ओर देख कर चिल्लाया—"ताई!" रामेश्वरीने धड़कते हुए इस घटनाको देखा। उनके मनमें आया कि अच्छा है, मरने दो, सदाका पाप कट जायगा। यही सोच कर वह एक क्षणके लिए रुकीं। उधर मनोहरके हाथ मुंडेर परसे फिसलने लगे। वह अत्यन्त भय तथा करुणा नेत्रोंसे रामेश्वरीकी ओर देख कर चिल्लाया—"अरी ताई!" रामेश्वरीकी आंखें मनोहरकी आंखोंसे जा मिलीं। मनोहरकी वह करुणा दृष्टि देख कर रामेश्वरीका कलेजा मुंहको आ गया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहरको पकड़नेके लिये अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहरके हाथ तक पहुंचा

ही नहीं था कि मनोहरके हाथसे मुंडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख़ मार कर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुख़ारमें बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वह ज़ोरसे चिल्ला उठतीं, और कहतीं—"देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहरको बचा लो।" कभी वह कहतीं—"बेटा मनोहर, मैंने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।" इसी प्रकारके प्रलाप वह किया करतीं।

मनोहरकी टांग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरीका ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—"मनोहर कैसा है?"

रामजीदासने उत्तर दिया—"अच्छा है।"

रामेश्वरी—"उसे मेरे पास लाओ।"

मनोहर रामेश्वरीके पास लाया गया। रामेश्वरीने उसे प्यारसे हृदयसे लगाया। आँखोंसे आंसुओंकी झड़ी लग गई। हिचकियोंसे गला रुँध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई। अब मनोहरकी बहन चुन्नीसे भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं। और, मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हे एक क्षण भी कल नही पड़ती।



# श्रीराजा राधिकारमण सिंह

जन्मकाल १९४७ वि०

रचनाकाल १९१३ ई०





श्री राजा राधिकारमण सिंह

# कानोंमें कंगना

१

किरण ! तुम्हारे कानोंमें यह क्या है ?

उसने कानोंसे चचल लटको हटाकर कहा—'कङ्गना'

सचमुच दो कङ्गन कानोंको घेर कर बैठे थे।

"अरे कानोंमें कङ्गना ?"

"हाँ—तब कहाँ पहिनू ?"

किरण अभी भोली थी। दुनियाँमें जिसे भोली कहते हैं वैसी भोली नहीं ; उसे वनके फूलोंका भोलापन समझो। नवीन उद्यानके फूलोंकी भङ्गी नहीं ;—विविध खाद या रससे जिनकी जीविका है, निरन्तर काट-छांटसे जिनका सौन्दर्य्य है, जो दो घड़ी चंचल, चिकने बालकी भूषा हैं, जो दो घड़ी

तुम्हारे फूलदानके गौरव हैं, वैसे, वनके फूल, ऐसे नहीं। प्रकृतिके हाथोंसे लगी है मेघोंकी धारासे बढ़ी है चटुल दृष्टि उसे पाती नहीं जगत्-वायु उसे छूती नहीं। यह सरल, सुन्दर, सौरभमय जीवन है। जब जीवित रहे तब चारो तरफ अपने प्राण-धनसे हरे-भरे रखे, जब समय आया तब अपनी माँके गोदमें झर पड़े।

आकाश स्वच्छ था—नील, उदार, सुन्दर। पत्ते चुप थे, शान्त थे। सन्ध्या हो चली थी। सुनहली किरणें सुन्दर पर्वतकी चूड़ासे देख रही थीं। यह पतली किरण अपनी मृत्युशय्यासे इस शून्य, निविड़ कानननमें क्या ढूंढ रही थी? कौन कहे? किसे एक टक देखती थी? कौन जाने? अपनी लीला-भूमिको सस्नेह करना चाहती थी, या हमारे बाद वहाँ क्या हो रहा है इसे चाहती थी? मैं क्या बता सकता हूं। उस भङ्गीमें आकांक्षा अवश्य थी। मैं तो खड़ा-खड़ा उन बड़ी-बड़ी आंखोंकी किरण लूटता था। आकाशके तारेको देखा, या उन मनोहर आंखोंको देखा, बात एक ही थी। हम दूरसे तारेके सुन्दर, शून्य झिकमिकको बार-बार देखते है लेकिन वह निःस्पन्द, निश्चेष्ट ज्योति सचमुच भावहीन है, या आप-ही-आप अपनी अन्तर लहरोंमें मस्त है, इसे जानना आसान नहीं। हमारी ऐसी आँखें कहाँ कि, उनके सहारे उस निगूढ़ अन्तरमें डूबकर थाह लें।

मैं रसालकी डाली थामकर पास ही खड़ा था। वह बालोंको हटाकर कंगना दिखानेकी भंगी प्राणोंमें रह-रहकर उठती थी। जब माखन चुराने वालेने गोपियोंके मरके मटकेको तोड़कर उनके भीतरी किलेको तोड़ डाला, या नूरजहाँने अँचलसे कबूतरको उड़ाकर शाहनशाहके कठोर हृदयकी धज्जियाँ उड़ा दीं, फिर नदी किनारे वसंत-वल्लभ रसाल-पल्लवोंकी छायामें बैठी किसी अपरूप बालिकाकी सरल, स्निग्ध लीला एक मानव अन्तर पर क्यों न दौड़े? किरण इन आंखोंके सामने प्रतिदिन आती-ही जाती थी। कभी आमके टिकोरे आंचल भर लाती, कभी मौलसरीके फूलोंकी माला बना लाती, किन्तु कभी भी ऐसी प्राण-लुभन लीला आंखोंसे

होकर हृदय तक नहीं उतरी। आज क्या था? कौन शुभ या अशुभ लग्न था कि अचानक वह वनेली लता मन्दार-मालासे भी कहीं मनोरम दीख पड़ी। कौन जानता था कि चालसे कुचाल जानेमें, हाथोंके कङ्गन भूलकर कानोंमें पहिननेमें इतनी माधुरी थी, दो टकेके कङ्गनोंमें ऐसी शक्ति है! गोपियोंको कभी स्वप्नमें भी नहीं झलका था कि बाँसकी बाँसुरीमें घूंघट खोलकर नचा देनेकी शक्ति है।

मैंने चटपट उसके कानोंसे कङ्गन उतार लिया, फिर धीरे-धीरे उसकी उँगलियों पर चढ़ाने लगा। न जाने उस घड़ी कैसी खलबली थी, मुहसे अचानक निकल आया—

"किरण! आजकी यह घटना मुझे मरते दम तक न भूलेगी। यह, भीतर तक पैठ गयी।"

उसकी बड़ी-बड़ी आंखें और भी बड़ी हो गयीं। मुझे चोट सी लगी। मैं तत्काल योगीश्वरकी कुटीकी ओर चल पड़ा। प्राण भी उसी समय नहीं चल पड़े, यही विस्मय था।

२

एक दिन था कि इसी दुनियांमें दुनियांसे दूर रहकर भी लोग दूसरी दुनियांका सुख उठाते थे। हरिचन्दनके पल्लवोंकी छाया भूलोक पर कहाँ मिले, किन्तु किसी समय हमारे यहाँ भी ऐसे वन थे जिनके वृक्षोंकी छाया-में दो घड़ी घाम निवारनेके लिये स्वर्गसे देवता तक उतर आते थे। जिस पंचवटीके अनन्त यौवनको देखकर रामकी आँखे भी खिल उठी थीं वहांके निवासियोंने अमर-तरुके सुन्दर फूलोंकी माला नहीं चाही। मन्दाकिनीके छीटोंकी शीतलता नहीं ढूढ़ी। वृन्दावनका सानी कहीं वन भी था? कल्प-वृक्षकी छायामें शान्ति अवश्य है; लेकिन कदमकी छांहकी शान्ति कहाँ मिल सकती है? हमारी तुम्हारी आँखोंने कभी नन्दोत्सवकी लीला नहीं देखी, लेकिन इसी भूतल पर एक दिन ऐसा उत्सव हो चुका है जिसको

देख-देखकर प्रकृति रजनी ६ महीने तक ठगी रही, शत-शत देवाङ्गनाओंने, पारिजातके फूलोंकी वर्षासे नन्दन-काननको उजाड़ डाला।

समयने सब कुछ पलट दिया। अब ऐसे वन नहीं जहाँ कृष्ण गोलोकसे उतर कर दो घड़ी वंशी टेर दें। ऐसे कुटीर नहीं, जिनके दर्शनसे रामचन्द्रका अन्तर भी प्रसन्न हो, या ऐसे मुनीश नहीं जो धर्मधुरन्धर धर्मराजको भी धर्ममें शिक्षा दें।

यदि एक दो भूले-भटके हैं भी तब अभी तक उनपर दुनियाँका परदा नहीं उठा—जगन्मायाकी माया नहीं लगी। लेकिन कबतक बचे रहेंगे। लोक अपने यहां अलौकिक बातें कबतक होने देगा।

हृषीकेशके पास एक सुन्दर वन है, सुन्दर नहीं अपरूप सुन्दर है। वह प्रमद-वनके विलास-निकुञ्जोंसे सुन्दर नहीं वरंच चित्रकूट या पञ्चवटीकी महिमासे मण्डित है। वहाँ चांदनीमें बैठकर कनक घुंघरूकी इच्छा नहीं होती, वरंच प्राणोंमें ऐसी आवेग धारा उठती है जो कभी अनन्त साधनाके कूल पर पहुंचाती है, कभी जीव जगतके एक-एक तत्वसे दौड़ मिलाती है। गङ्गाकी अनन्त गरिमा, वनकी निविड़ योगनिद्रा नहीं देख पड़ेगी। कौन कहे वहां जाकर यह चंचल चित्त क्या चाहता है, गंभीर अलौकिक आनन्द, या शान्त सुन्दर मरण?

इसी वनमें एक कुटी बनाकर योगीश्वर रहते थे। योगीश्वर, योगीश्वर ही थे।

यद्यपि वह भूतल ही पर रहते थे तथापि उन्हें इस लोकका जीव कहना यथार्थ नहीं था। उनकी चित्तवृत्ति सरस्वतीके श्रीचरणोंमें थी या ब्रह्मलोककी अनन्त शान्ति लिपटी थी। और वह बालिका स्वर्गसे एक किरण उतरकर इस घने काननमें उजेला करती फिरती थी। वह लौकिक माया-बद्ध जीवन नहीं था। उसे बन्धन-रहित, बाधाहीन नाचती किरणोंकी लेखा कहिये। मानों मत्त, चंचल मलय-वायु फूल-फूलपर डाली-डालीपर डोलती फिरती हो, या कोई रुनझुनी अमर संगीत बे रोक-टोक हवा पर, या जलके

तरंग भङ्ग पर नाच रही हो। मैं ही वहां इस लोकका प्रतिनिधि था, मैं ही उन्हें उनकी अलौकिक स्थितिसे इस जटिल मर्त्यराजमें खैंच लाता था।

कुछ साल भरसे मैं योगीश्वरके यहां आता-जाता था। पिताकी रुचि थी कि उनके यहां जाकर अपने धर्मके ग्रन्थ सब पढ़ डालो। योगीश्वर और बाबा लड़कपनके साथी थे, इस लिए उनकी मुझपर इतनी दया थी। किरण उनकी लड़की थी, उस कुटीरमें एक वही दीपक थी। जिस दिनकी घटना मैं लिख आया हूं उसी दिन सबेरे मेरे अध्ययनकी पूर्णाहुति थी और मैं बाबाके कहने पर एक जोड़ा पीताम्बर पांच स्वर्ण मुद्रा तथा किरणके लिए दो कनक कङ्कन आचार्य्यके निकट लेगया था। योगीश्वरने सब लौटा दिया, केवल कङ्कनको किरण उठा लेगई। वे, नहीं मालूम क्या समझ कर चुप रह गये। समयका अद्भुत चक्र है। जिस दिन मैंने धर्म्मग्रन्थसे मुहँ मोड़ा उसी दिन कामदेवके यहां जाकर उनकी किताबका पहला पन्ना उलटा

दूसरे दिन मैं योगीश्वरसे मिलने गया। वह किरणको पास बिठाकर न जाने क्या-क्या पढा रहे थे। उनकी आँखें गम्भीर थीं। मुझको देखते ही वह उठ पड़े और मेरे कन्धे पर हाथ रख कर गद्गद स्वरसे बोले—"नरेन्द्र! अब मैं चला, किरण तुम्हारे हवाले है।" यह कह कर उन्होंने सुकोमल अंगुलियोंको मेरे हाथोंमें रख दिया। लोचनोंके कोनों पर दो बूंदें निकल कर झाँक पड़ीं। मैं सहम उठा। क्या उन पर सब बातें विदित थीं। क्या उनकी तीव्र दृष्टि मेरी अन्तर्लहरी तक डूब चुकी थी। वे ठहरे नहीं, चल दिये। मैं काँपता रह गया। किरण देखती रह गई।

वन-वायु भी अवाक् हो गई। हम दोनों चल पड़े। किरण मेरे कन्धे पर हाथ रक्खे थी। हठात् अन्तरसे कोई कड़क कर कह उठा—"हाय नरेन्द्र यह क्या? तुम इस वन-फूलको किस उद्यानमें ले चले। इस बन्धन-विहीन स्वर्गीय जीवनको किस लोक-जालसे बाँधने ले चले।"

३

कङ्कड़ी जलमें जाकर कोई स्थायी विवर नहीं फोड़ सकती। क्षण भर जलका समतल भलेही उलट-पुलट हो, लेकिन इधर-उधरसे जल तरंग दौड़कर किसी छिद्रका चिन्ह मात्र भी नहीं रहने देते। जगतकी भी यही चाल है। यदि स्वर्गसे देवेन्द्र भी भाग कर इस लोक-चला-चलसे खड़े हों, फिर संसार देखते ही देखते उन्हें अपना बना लेगा। इस काली कोठरीमें आकर इसकी कालिमासे बचा रहे ऐसी शक्ति अब आकाश कुसुम ही समझो। दो दिनमें राम हाय जानकी कह कर, वन-वन भटकते फिरे। दो क्षणमें वही विश्वामित्र-को स्वर्गसे घसीट लाया।

किरणकी भी यही अवस्था हुई। कहां प्रकृतिका निर्मुक्त गोद, कहां जगत्-का जटिल बन्धन-पाश, कहांसे कहां आ पड़ी। वह अलौकिक भोलापन, वह निसर्ग उच्चावास हाथो-हाथ लुट गये। उस बनकी मायावी मनोहारितामें परिणत हुई। अब आंखे उठा कर आकाशसे नीरव बात-चीत करनेका अवसर कहांसे मिले, मलय-वायुसे मिलकर मलयाचलके फूलोंकी पूछ-ताछ क्योंकर हो?

जब किरण नये सांचेमें ढलकर उतरी, उसे पहचानना भी कठिन था। वह अब लाल, पीली, हरी साड़ी पहिनकर सरपर सिन्दूर लेखा सजती, और हाथोंमें कङ्कन कानोंमें बाली, गलेमें कंठी तथा कमरमें करधनी दिन-दिन उसके चित्तको नचाये मारती थीं। जब कभी वह सज-धज कर चांदनीमें कोठे पर जाती और बसन्तवायु उसके आंचलसे मोतियोंकी लपट लाकर मेरे बरामदेमें भर देती; उस समय किसी मतवाली माधुरी या तीव्र मदिराके नशेसे मेरा मस्तिष्क घूम जाता और मैं चटपट अपना प्रेमचित्कार फूलदार रंगीन चिट्ठीमें भरकर जूही के हाथ ऊपर भिजवाता, या बाजारसे दौड़कर कटकी गहने या विलायती चूड़ी खरीद लाता। लेकिन जो हो, अब भी कभी-कभी उसके प्रफुल्ल वदन पर उस अलोक आलोककी छटा पूर्व्व जन्मकी सुख स्मृतिवत् चली आती थी और आंखें उसी जीवन्त सुन्दर झिकमिकका नाच दिखाती थीं। जब अन्तर प्रसन्न था तब, बाहरी चेष्टा पर प्रतिबिम्ब क्यों न पड़े।

योंही साल-दो-साल मुरादाबादमें कट गये। एक दिन मोहनके यहां नाच देखने गया। वहीं किन्नरीसे आँख मिली, मिली क्या, लीन हो गई। नवीन यौवन, कोकिल कण्ठ, चतुर चचल चेष्टा तथा मायावी चकमक—अब चित्तको चलानेके लिए और क्या चाहिये। किन्नरी सचमुच किन्नरी ही थी। नाचने-वाली नहीं नचानेवाली थी। पहली वार देखकर उसे इस लोककी सुन्दरी समझना दुस्तर था—एक लपट सी लगती—किसी नशा-सी चढ़ जाती। यारोंने मुझे और भी चढ़ा दिया। आँखें मिलती-मिलती मिल गईं। हृदयको भी साथ-साथ घसीट ले गईं।

फिर क्या था—इतने दिनोंकी धर्मशिक्षा, शत वत्सरकी पूज्या लक्ष्मी, बाप-दादोंकी कुल-प्रतिष्ठा, पत्नीसे पवित्र प्रेम—एक-एक करके ये सब उस प्रदीप्त वासना कुण्डमें भस्म होने लगे। अग्नि और भी बढ़ती गई। किन्नरीकी चिकनी दृष्टि, चिकनी बातें घी बरसाती रहीं। घर-बार सब जल उठा। मैं भी निरन्तर जलने लगा; लेकिन ज्यों-ज्यों जलता गया, जलनेकी इच्छा जलाती रही।

पांच महीने कट गये नशा उतरा नहीं। बनारसी साड़ी, पारसी जैकेट मोतीका हार, कटकी काम सब कुछ लाकर उस मायाकरीके अलक रंजित चरणों पर रक्खा। और किरण! हेमन्तकी मालती बनी थी; जिसके घर एक फूल नहीं—एक पल्लव नहीं।

घरकी वधू क्या करती। जो अनन्त सूत्रसे बंधा था, वही हाथों-हाथ परायेके हाथ बिक गया। किन्तु ये तो दोनों दिनके चकमकी खिलौने थे, इन्हें शरीर बदलते क्या देर लगे। दिन भर बहानाकी माला गूथ-गूथ कर किरणके गलेमें और रात्रिको मोतीकी माला उस नाचनेवाली या नचानेवालीके गलेमें सशङ्क, निलज्ज डाल देता। यही मेरा कर्तव्य, धर्म, नियम हो उठा। एक दिन सारी बातें खुल गईं। किरण, पछाड़ खाकर जमीनपर जा पड़ी। उसकी आंखोंमें आंसू न थे, मेरी आंखोंमें दया न थी।

## ४

बरसातकी रात थी। रिमझिम-रिमझिम बूँदोंको झड़ी लगी हुई थी। चान्दनी मेघोंसे आंख मुदौल खेल रही थी। बिजली, लोल कपाटसे बार-बार झांकती थी। वह किसे चचल देखती थी, और बादल किस समोगसे रह-रह कर चिल्लाते थे, इन्हें सोचनेका मुझे अवसर ही न था। मैं तो किन्नरीके दरवाजेसे हताश लौटा था, आंखोंके ऊपर न चान्दनी थी न बदली। त्रिशंकुने स्वग जाते-जाते बीच ही से टग कर किस दु:खको उठाया, और मैं तो अपने स्वर्गके दरवाजे पर सर रख कर निराश लौटा था, मेरी वेदना क्यों न बड़ी हो। हाय! एक अँगूठी भी रहती तो उसे दिखाकर उसके चरणोंसे चन्दन चाटता।

घर पर आतेही जूहीको पुकार उठा—"जूही! जूही!! किरणके पास कुछ भी बचा-बचा हो तो फौरन जाकर मांग लाओ।" ऊपरसे कोई आवाज नहीं आई, केवल सरके ऊपरसे एक काला बादल, कालान्त चित्कारसे चिल्ला उठा। मेरा मस्तिष्क घूम गया। मै तत्क्षण कोठे पर दौड़ा।

बस सन्दूक, झांपे जो कुछ मिला सब तोड़ डाला, लेकिन मिला कुछ भी नहीं। आलमारीमें केवल मकड़ेका जाला था। शृङ्गार-बक्समें एक छिपकली बैठी थी। उसी दम किरण पर झपटा।

पास जाते ही सहम गया। वह एक तकियेके सहारे नि सहाय, निस्पन्द लेटी हुई थी। चांदनीने, खिड़कीसे आकर उसे गोदमें ले रक्खा था। और बायु उस शान्त शरीर पर जलसे भिगोया पखा झल रही थी। मुख पर एक अपरूप छटा थी। कौन कहे कहीं जीवनकी शेष रश्मि क्षण भर वहीं अटकी हो। आँखोंमें एक नवीन ज्योति थी। शायद प्राण शरीरसे निकल कर किसी आसरेसे वहीं बैठ रहा था। मै फिर पुकार उठा—"किरण तुम्हारे पास कोई और गहना भी बच गया है ?"

"हाँ"—क्षीण कण्ठकी काकली थी।

"कहां है—अभी देखने दो।"

उसने धीरे से घूंघट सरका कर कहा—"वही कानोंका कङ्गना।"

सर तकियेसे ढल पड़ा। आँखे भी झिप गईं। वह जीवन्त रेखा कहां उड़ गई। क्या इतने ही के लिए अबतक ठहरी थी।

मेरी आंखें मुखपर जा पड़ीं—वही कङ्गन थे, वैसे ही कानोंको घेर कर बैठे थे। मेरी स्मृति तड़िद्वेगसे चमक उठी। दुष्यन्तने अँगूठीको पहचान लिया था—भूली शकुन्तला, तत्क्षण याद आगयी थी। लेकिन दुष्यन्त सौभाग्य-शाली थे, चक्रवर्ती राजा थे; अपनी प्राणप्रियाको आकाश-पाताल छानकर ढूढ़ निकाला। मेरी किरण तो इस भूतल पर नहीं थी, कि किसी तरह प्राण देकर भी पता पाता। परलोकसे ढूढ़ निकालू ऐसी शक्ति इस दीन-हीन मानव-में कहां?

सारी बातें सूझ गईं। चढ़ा नशा उतर पड़ा, आंखों-पर-की पट्टी खुल गई; लेकिन हाय! खुली भी तो उसी समय जब जीवनमें केवल अंधकार ही अंधकार रह गया।



# वीर बाला

## १

किसी राजपूत-बालाका चित्र नहीं—किसी देवकन्याकी बातें नहीं। एक यमन- रमणी थी, शाही महलकी मूर्तिमती माया थी—दाराके हृदयकी रानी थी। विविध विलासोंकी गोदमें पली थी, अनन्त चन्द्रिकाकी किरणोंमें खिली थी, अमृतके छींटोंसे सींची हुई लता थी, पारिजात-पादपपर चढ़ी हुई कोमल लतिका थी। उसने कभी किसीके आँखोंका विस्फारण नहीं देखा—किसी मस्त मस्तकके उरोजको नहीं देखा। दाराके सरकी कलँगी उसके पैरोंकी धूलि झाड़ती—शत-शत स्निग्ध दृष्टि उसकी पदांगुलीकी अँगूठियां बनी रहतीं। और उसका सौन्दर्य्य! सौन्दर्य्य क्या था बिजलीकी लपट थी—चमक कर चोटसी लगती, देखने वालोंकी आंखें पल्लवोंमें जा छिपतीं तथापि एक बार देखकर

सौ वार देखनेकी इच्छा होती। जो हो, ऐसे सौन्दर्य्यको हम सौन्दर्य्य नहीं मानते। यह फूलोंकी दो-घड़िया चमक है—पहली रातका क्षणिक पुलक है। ऐसे हिलोरे हैं जिन्हे उठते भी देर नहीं, मिटते भी देर नहीं।

यह तो बाहरी चाक-चमक है। संसारका राज्य—मायाका मन्दिर है। राज-कन्या इसी दुनियांमें रहती थी तथापि इससे कहीं दूर थी। इन्हीं रँगरलियोंमें रहकर भी इस रंगमें रँग नहीं गई थी। झुकती जवान और गर्दनपर चढ़कर भी नहीं फिसली थी। चातुरी माया दिन-दिन गले मिलनेसे बाज नहीं आती तथापि उसके प्राणोंकी सहचरी बने ऐसी क्षमता नहीं थी। विलास शत-शत रंगीन रस-भरे प्याले पिलाकर भी उसके चित्तको हिला नहीं सकता था। संसार शरीर पर थपकियां दे-देकर खड़ा रहता था—लाख फुसलाता, लाख चिल्लाता, लाख सर पटकता लेकिन कपाट खुलते नही कि भीतर जा सके। सचमुच उसमें जो कुछ सौन्दर्य्य था वह भीतर ही था। वह ऐसा सौन्दर्य्य था जिसके सामने त्रैलोक्य-सुन्दर भी लुटे पड़ते हैं—वह सौन्दर्य्य, जिसकी किरणोंको लेकर स्वर्गकी चांदनी है। वह सौम्य प्रकाश था, जिसे हम इन आँखोंसे नहीं देख सकते, वह असीम सङ्गीत जिसे हम इन कानोंसे नहीं सुन सकते। एक सत्य सुन्दर हृदय—एक तरुण निमुक्त जीवन!! कमला अपनी लाख मायाविनी डाली दिखाकर भी फुसला नहीं सकती थी, काम अपने शत-शत पुष्पवाण या अग्निवाणकी वर्षासे भी बेध नहीं सकते थे। वह हँसती, खेलती, अठिलाती, बलखाती—सभी आँखोंमें प्राण भरकर इस भङ्गीको देखते तथा हाथों-हाथ बिक जाते। लेकिन किसीने कभी देख नहीं पाया कि इस हास-विलास, रस-रासके आडम्बरके भीतर कौस्तुभ-मणिकी ज्योतिसी कौनसी ज्योति छिपी थी। लोक अपनी मायावी चमकके लिए शरीर पर, रोम रोम-पर, खड़ा पुकार रहा था, स्वर्ग अपनी तेज तरुण ज्योति लिये हृदयमें, रोम-रोममें, शान्त, निर्विघ्न बैठा था। लेकिन दुनियांके लोग इस जगमगाती दुनियां ही को देखते हैं—दुनियांमें अतीत क्या है? इसे देखनेकी इच्छा नहीं करते। मूर्तिके चकमककी चाम-चूमको देखनेके लिए न जाने

कितने आदमी मन्दिरकी चौकटपर सिर टकराते हैं लेकिन उस चकाचौंधके भीतर कोई ज्योति छिपी है या नहीं यह देखनेकी भला किसे पड़ी है? फूले-फूले फूलोंके भीतर वसन्तको कौन ढूढता है?

२

चाँदनीके दिन चल बसे। सरपर बदली उनह आयी। दारा विचारा सहोदरके हाथसे पटका खा घर-बार, सुख-विलास छोड़कर वनमें—कालके मुहमें—भग गया। औरङ्गजेबने दिल्लीको अपनी मुठ्ठीमें किया—बुड्ढे बापपर अपने दिलकी लगी बुझायी। फिर भाई बन्धुओंके अल्ला-तल्ला रक्तसे अपने हाथोंमें मेंहदी लगायी। इतनाही नहीं—प्यास ऐसी थी कि शाहजादियोंके विलास-मधुर अन्तरंक्त पर भी होंठ लपके। एक दिन दाराकी दारापर भी चितवन फिरी। चितवनही नहीं फिरी—चित्त भी फिर गया।

उसने ततक्षण बांदीके हाथ एक पत्र लिखकर भेजाः—"प्रिये! मैं तुम्हारी काली-काली खुशबूदार जुल्फोंपर मर रहा हूं।" राजकुमारी क्षणभर चुप रही। फिर बड़े लाड़से पाले, फूलोंसे गूथे चचन्ल-चिकने बालोंको चुपचाप काट डाला और हेनाके इत्रसे उन्हें भिगो कर शाहशाहके निकट भेज दिया।

औरङ्गजेबने फिर लिख भेजा, "प्रिये। मैं तुम्हारी इन नर्गिसनुमां आंखोंका शैदा हो रहा हू।" जिस समय बांदी चिट्ठी लेकर आई उस समय वह शायद आंखोंमें सुर्मा लगा रही थी। झट धीरेसे सुकुमार छमीली आंखोंको निकाल कर रगीन फूलदार लिफाफेमें भर कर बांदीके हाथ भेजवा दिया।

औरङ्गजेबकी आग भभक उठी। फिर लिख भेजा, "प्रिये! मैं तुम्हारे चाँदसे मुह पर आशिक हू।" बाँदीने चिट्ठी पढ़कर सुना दी। राजकुकारीने चू तक नहीं किया। किसी तरह मायावी गुलाबी गालोंको काट-कूट कर भेजवा ही दिया। जो कुछ देने योग्य था सब दे दिया। प्राणोंको भी दे दिया मगर हृदय नहीं—सत्य नहीं। औरङ्गजेब भी हृदयको माँग नहीं सका। हृदय तो वह किसी औरको दे चुकी थी।

शाहंशाहने एक बार निर्जीव लोचनोंको देखा, एक बार लद-फद रक्तमांसके पिण्डको देखा। कुछ उसी दृष्टिसे देखा जिस दृष्टिसे अपने पिताकी आंखोंसे खून टपकते देखा था, बड़े भाईके मुण्डको भूमिपर लुढ़कते देखा था। उसे ग्लानि हुई या नहीं सो मैं नहीं कह सकता। हाँ? एक बार तमाशा देखनेको शायद भीतर दौड़ पड़ा। उस समय शाहजादी खूनसे सराबोर पृथ्वीपर गिर चुकी थी। जो हो—भूमिपर गिरी तो गिरी—अपने धर्म्म या पातिव्रतसे नहीं गिरी, हमारी-तुम्हारी आँखोंसे, दिलसे, नहीं गिरी। हा नराधम नरपति! इस वीर हृदयपर ध्वजा उड़ाना बांये हाथका खेल नहीं था। यहाँ तुम्हारे सरकी कलङ्गी खस पड़ी। इसे भी क्या इस खोखले हिन्दुस्तानका जीतना समझा था? विलासी दाराको मार भगाना समझा था? यदि तुम यहां जीतते, तभी हम तुम्हे विजयी मानते।

३

वह उठ गयी—लेकिन नाम नहीं उठा—कीर्ति नहीं मिटी। प्यारे पाठक! वह अनन्त जीवन था, भला मिटता क्योंकर? इसी देशसे न जाने कितने उठ गये। अब ऐसे वीर-हृदय मिलते नहीं और जो कहीं हैं भी तो भूले भटके। सूर्य्यवंशी, यदुवशी और न जाने कितने वंशी बनने की अभिलाषा बहुतोंको है किन्तु यह ध्यान किसी को नहीं कि वे क्या थे और हम कैसे हैं? वे क्या कर गये और हम क्या करते हैं? हमने माना कि जननी-जठरमें सोये ही सोये ब्रह्मज्ञान सीख लेना या रणकौशलकी दीक्षा ले लेना अब सम्भव नहीं। अब तो कोई इसे मरते दम भी दिखा दे तो बहुत समझिये। उन पूर्व-पुरुषोंकी सन्तान बनकर मटकनेकी चाल अच्छी लगे, आप उनके नामको लेकर अपना नाम भलेही लम्बा-चौड़ा कर लें—उसे कहनेमें बड़ी शान हो, सुननेवालों पर बड़ा असर हो। आप उनके जन्म दिनके उपलक्ष्यमें गौहर या बांदीको भलेही नचा लीजिये, बारूदके खिलौने बना कर शत-शत बार गोलियां पीट लें, आप उनकी कीर्तिलताको अमृतकी छींटें दे-दे कर भलेही

हरी भरी रखे, उसे देशदेशान्तरोंमें भेज कर अपने बागका मूल्य खूब बढ़ा लें। किन्तु इससे क्या आपकी कुछ करनी देखी गयी? वे बातें भी देखनेमें आयीं जिन्हें देखनेके लिए आपकी मातृ-भूमिकी आंखें कबसे तरस रही हैं? विजयादशमीमें रामकी गद्दी बड़ी धूमधामसे दिखाना कुछ कठिन नहीं, लेकिन इस जीवन रङ्गपर भी तो आप मुझे वैसा एक भी दिखा दे, उनकी सन्तान कहलाने योग्य भी तो किसी को बतलादे। घुंघरू पहिन कर मुरली बजानेसे कोई देवकीका पुत्र नहीं बनता—कुक्कुट और बगुलेपर गोली मारनेसे आप गाण्डीवधारीकी सन्तान होने योग्य नहीं।

अब किसी के मनमें क्षण भर भी इन भावोंका प्रादुर्भाव होना भारतवर्षमें सबसे विस्मयी-प्रलयी-काण्ड है। क्यों न हो, सभी जातियोंने अपनी-अपनी गर्दन ऊंची की है, लेकिन इतनी नहीं। सभीकी कलँगी सिरसे खसी है लेकिन ऐसी नहीं। दामन झाड़कर फिर खड़ा हो उठना कुछ बुरा नहीं, लेकिन पड़े-पड़े धूलिको गोंजना और उसपर खिलखिलाकर हँसना करुणा भी दिलाता है और उपहास भी। लोटना ही है तो गोकुलकी गलियोंमें बाल-गोपालके मुख से उगली हुई मिट्टीपर लोटिये। धूलि ही पसन्द है तो उस धूलिके लिए गली-गली धूलि फाँकिये जिसको पाकर पत्थरमें भी जान पड़ गई थी किन्तु किसीके दरवाजे पर फेंके हुए कस्तूरी-कूड़ेपर भी लोट-लोट कर दाताकी जय मनाना या उसके होंठों पर हँसी ढूढना कोई अपरूप सुन्दर दृश्य नहीं हो सकता।

---

## पं० ज्वालादत्त शर्मा

जन्मकाल १९४५ वि०

रचनाकाल १९१४ ई०

मधुकरी



पं० ज्वालादत्त शर्मा

# विधवा

## १

राधाचरणकी अकाल मृत्युसे उसके चचा-चाचीको बहुत शोक हुआ। किन्तु अभागिनी पार्वतीके लिए तो संसार ही अन्धकार-मय हो गया। उसके लिए तो संसारमें आशा, उत्साह और सुखका सोलहो आने नाश हो गया। उसने इस घोर दुःखको, इस अनभ्रवज्रपातको, दिलका खून करके, किसी तरह सहन किया। वह न रोई, न चिल्लाई। उसने इस असह्य दुःखको मनकी पूरी ताकतसे चुपचाप सहन किया। शोकके भारी बोझसे पार्वतीका सुकोमल मन निःसन्देह चूर-चूर हो गया। किन्तु विधिके इस विपरीत विधानमें किसीका क्या वश था।

राधाचरणके चचा, रामप्रसाद, औसत दर्जेके आदमी थे। राधाचरणके

पिता, गुरुप्रसादका देहान्त, जब उसकी अवस्था पांच वर्षकी थी तभी, होगया था। सुनीति माता भी, पतिकी मृत्युके एक वर्ष बाद ही, स्वर्ग-लोक-गामिनी हो गई थी। इस लिए बालक राधाचरणका पालन-पोषण चचा रामप्रसाद और उनकी पत्नी हरदेवीने ही किया था। उनके पास कुछ पैतृक मिलकियत थी, जिसकी आमदनीसे घरका खर्च चलता था। रहनेका पक्का मकान था। पर इस पैतृक मिलकियत और रहनेके मकानमें—जायदादका क्षय-रोग—कर्जके कीटाणुओंने प्रवेश कर लिया था। रामप्रसादने अपनी कन्या चमेलीके विवाहमें शहरके मूर्ख और निठल्ले आदमियोंके मुहँ से चिकनी-चुपड़ी बातें सुननेके लिए बहुत रूपया बरबाद किया था। विवाहके बाद, कोई एक सप्ताह तक, पकवानकी सुगन्धिके साथ-साथ रामप्रसादकी इस मूर्खता-पूर्ण उदारताकी बू भी महल्लेमें सर्वत्र, और शहरमें यत्र-तत्र, फैल रही थी। खस्ता कचौरी, मोती-चूरके लड्डू, गोल बालूशाही, कुरकुरी इमरती और मसालेदार तरकारियोंके साथ-साथ नये चमकते हुए "इन्दुसम उज्जवल" रूपराजकी दक्षिणाकी बात जहां-तहां होती थी। किन्तु रामप्रसादके यशकी उस स्निग्ध चांदनीमें, उसके विमल यशकी सफेद चादरमें, कोई कलक न हो, कोई धब्बा न हो सो बात नहीं। दुष्ट समालोचक, जिन्होंने ज्योनारमें कई दिनों पहलेसे अल्पाहार करते रहनेके कारण, बुरी तरह खस्ता कचौरी और मेवा मिली मुलायम मिठाइयोंका ध्वंस किया था, अपने दुष्ट, पर प्रकृतिदत्त स्वभावसे मजबूर होकर बालकी खाल निकालने और रामप्रसादकी दूधकी गंगामें विष मिलाने लगे। कोई कहता था—कचौरियोंमें मोयन कम डाला गया और कोई बताता था कि शाकमें नोन ज्यादा हो गया था। कोई लड्डूओंकी बूंदीको ठोस, तो कोई बेसनकी बरफीको सख्त करार देता था। मतलब यह कि रामप्रसादकी मूर्खताका श्राद्ध करने वाले नर-पुङ्गवोंकी भी कमी न थी। किन्तु घरोंकी मालकिनें, जिन्होंने अपने बच्चोंसे रुपये छीनकर बटुओंमें भर लिये थे और इस तरह एक अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया था, रामप्रसादकी प्रशंसा अपनी प्रलयङ्करी बुद्धिकी सहायता से शत-शत मुखसे कर रही थीं। इस प्रशंसा-रूप बीमारीका

दौरा भी एक महीनेसे अधिक न रहा। हलवाइयोंके हिसाबके साफ होते ही लोगोंके वेकार अतएव खाली दिमाग़ भी इस खब्तसे खाली हो गए। छः मासके बाद, रामप्रसादके उसकाने पर भी किसीको लड्डुओंकी बूंदियोंमें खराबट मालूम न होती थी—कोई उस विषयका उत्थान न करता था। इससे रामप्रसादके श्लाघा सुननेके अभिलाष पर तुषार पात हो जाया करता था' किन्तु उसकी आशालताको पल्लवित करनेवाला सूदखोर छज्जूमल महाजन "पड़ोस'-का हक, करीब-करीब रोज निभा देता था।

जिस साल रामप्रसादकी लड़की—चमेलीका विवाह हुआ था उसी साल राधाचरण बी० ए०-में तीसरे नम्बर पर पास हुआ था। राधाचरणको स्कूलसे ही, उसकी योग्यताके कारण, छात्रवृत्ति मिलती थी। पर बी० ए०-की फीस और किताबोंके लिए चचा रामप्रसादने १५०) उसे जरूर दिए थे। उसी साल "ग़रीब नवाज" लाला छज्जू मलने यथानियम अगले-पिछले जोड़कर रामप्रसादसे पांच हजार रुपयोंकी दस्तावेज लिखाकर उसकी "इज़्जत" बचाई थी। कोई तीन हजार रुपये उसने लड़कीके विवाहमें स्वाहा किये थे। किन्तु कर्ज़का प्रसङ्ग उठते ही रामप्रसाद भतीजेकी पढ़ाईका उल्लेख करते थे। उनके हिसाबसे यदि राधाचरण न पढ़ता तो उन्हें ऋणी न बनना पड़ता। छोटी-छोटी बातों पर रामप्रसाद राधाचरण से कहते—"अभी तूने मेरी क्या सेवा की है? एक सालसे पचास रुपये महीना कमाने लगा है। मुझे देख, तेरी पढ़ाईके कारण ही तबाह हो गया। इतना देना हो गया।"

सुशील राधाचरण अपने मूर्ख चचाकी बातका उत्तर न देता था। नीची गर्दन करके वह सब कुछ सुन लेता था।

राधाचरणकी मृत्युसे चचा और चाचीको बेशक बहुत दुःख हुआ, पर दुःखकी उस तीव्र आगमें जलते हुए भी रामप्रसादने राधाचरणके कारण कर्ज़दारीका जिक्र करनेकी प्रवृत्तिको बड़े यत्नसे सुरक्षित रक्खा।

## २

शोककी प्रबल लहरोंमें बही जाने वाली रामप्रसाद-दम्पतीने अपने धेवते-का सहारा पाकर बहुत कुछ शन्ति लाभ किया। भाद्र पदकी बर्षाके बाद जिस तरह सूर्य्य और अधिक असह्य हो उठता है उसी तरह शोक-सागर में स्नान करके रामप्रसाद-दम्पतीका कठोर हृदय और अधिक सख्त हो गया। अब वे बात-बातमें कहते थे—"राधे हमें मार गया। वह हमारा भतीजा नहीं, शत्रु था। हमें बरबाद करने आया था।"

पार्वती शोक-महानदकी जिस प्रबल लहरमें बही जा रही थी उसमें तिनके-का भी सहारा नही था। वह थी और अनन्त शोककी अनन्त लहरी थी। उसके लिए भाद्रपदके तरुण सूर्य्यकी प्रखर धूप उत्ताप-हीन थी—प्रकाश-हीन थी। शरत्कालके लुभावने चन्द्रमाकी चिकनी चान्दनी उसके लिये सिंह-के सूर्य्यकी धूपसे कहीं अधिक प्रखर थी। उसके मनमें शोककी प्रचण्ड अग्नि धू-धू जल रही थी। बाहर रामप्रसाद-दम्पतीका कठोर व्यवहार उस अबलाको बेदम किये देता था। शोककी अनन्त ज्वालामें, अनन्त बिरहके प्रचण्ड अनलमें, निराशाके घने अन्धकार में, उपेक्षाके दुर्गन्धिपूर्ण संसार में—सब कहीं—उसे परलोकगत पतिका पूत और पवित्र मुखपद्म दिखाई देता था, मानों वह उससे मौन भाषामें कहता था —"प्रिये पार्वती, धैर्य्य धारण करो, त्रिताप दग्ध ससारमें जब तक हो, जैसे बने काल-यापन कर दो। स्वर्गमें मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। मैं तुम्हे अवश्य मिलूंगा। क्योंकि तुम मेरी हो और मैं तुम्हारा हूं।"

पार्वतीका छलनीकी तरह छिदा हुआ हृदय शान्त हो जाता था। रामप्र-साद-दम्पतीका कठोर व्यवहार उसके लिए सुकोमल हो जाता था। संसार भी उसकी दृष्टिमें उतनी घृणाका पात्र नहीं रहता था, उस पर से उसकी विरक्ति-की मात्रा कम हो जाती थी। ससारके अन्तरिक्षमें ही, इसी ससारके आकाशमें ही, उसके परलोकवासी पतिके प्रभा-पूर्ण मुखका प्रतिबिम्ब मध्या-

कायमें न सही, हृदयाकाशमें ही सही—दिखाई पड़ता था। इसलिए संसार उसके लिए उतना हेय नहीं रहता था; कुछ कामकी चीज हो जाता था।

सासके कुलिशसम कठोर वाक्यों और उससे भी बढ़कर परुषन्तर पार्थिव व्यवहारोंको वह अनायास सह लेती थी। मृत्यु शय्यापर पड़े पतिके ज्योतिर्हीन नेत्रोंका कातर भाव उसे कभी न भूलता था। उसके आखिरी शब्द—"प्रिये पार्वती—" आज भी उसके कानोंमें गूँज रहे थे। उस कातर भावकी शब्द-हीन भाषाका मर्म भी उसने ठीक-ठीक समझ लिया था। चचा-चाचीका कठोर स्वभाव और पार्वतीके पीसालकी शोचनीय अवस्था ही उस कातर भावका प्रधान उपादान थी।

पार्वती हिन्दी-मिडिल पास थी। राधाचरणने बड़े आग्रहसे उसे अंगरेजी भी पढ़ाई थी। उसका विचार था कि वह उससे प्रवेशिका परीक्षा दिलायेगा; किन्तु उसकी अकाल मृत्युने, बहुतसी अन्य बातोंके साथ, इस विचारको भी कार्यमें परिणत न होने दिया।

पतिकी मृत्युके बाद अभागिनी पार्वतीको पुस्तक छूनेका मौकाही न मिलता था। घरमें उसकी कोई सत्ता ही न थी। सास राधाचरणकी मृत्युका कारण उसे ही समझती थी। पार्वती अन्न पीसती है, चौका-बरतन साफ करती है, भोजन बनाती है; किन्तु फिर भी सास-ससुरकी सहानुभूतिका पात्र नहीं बनती। फिर भी उनके मुहसे कभी मीठी बात नहीं सुनती। सुनती है कर्जदारीका कारण, अपने दुर्भाग्यकी गाथा और कभी-कभी गूढ़ प्रेमके परदेमें पतिकी निन्दा।

पार्वतीको कुटिलता-पूर्ण संसारमें सहानुभूतिका चिन्ह कहीं दिखाई न देता था। उसके एक चचेरा भाई था; वह कहीं चपरासी था। पर था विवाहित। इस लिए गरीबीका मेवा सन्तानकी बहुतायतसे माला-माल था। अत्यन्त गर्मी पड़नेके बाद वर्षा होती है। बहुत तप चुकने पर धराधाम जलकी अनन्त धाराओंसे प्लावित हो जाता है। पार्वतीने भी निराशाके घोर अन्धकारमें, सास-ससुरके कठोर व्यवहार रूप नरकमें, उपेक्षाके समुद्रमें, शोकके महा-

सागरमें ध्रुव तारेका दर्शन किया उसे देख कर दिग्भ्रष्टा पार्वतीने कर्त्तव्य-पथका निश्चय कर लिया। सामने खड़ी आलमारीमें भरी हुई पुस्तकें उसे मानों अपनी-अपनी भाषामें सान्त्वना देने लगीं। वे कहने लगीं —"पार्वती, तू लिखी-पढ़ी है, हम तेरी साथिन हैं। दुःख में, शोकमें, सन्तापमें सदा-सर्वदा—हम तेरी साथिन है। हमें घृणा करने नहीं आता उपेक्षा करनी नहीं आती हमसे भले कोई दिक हो जाय, हम किसीसे दिक नहीं होतीं।" पुस्तकोंकी विभिन्न, पर मौन, भाषाको उसने साफ-साफ समझा। उसके भग्न हृदयमें शान्तिकी अस्फुट किरणका उदय हुआ। आलमारीकी चुनी हुई किताबोंमें उसने साक्षात् अभयदा सरस्वतीके दर्शन किये। बहुत समयके बाद मानों मां सरस्वतीके इशारेसे ही उसने आलमारीमेंसे एक पुस्तक निकाली। पुस्तक थी सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार स्माइल्स साहबकी 'Self-Help' या आत्मावलम्बन। चटाई पर बैठकर पार्वती उसे पढने लगी।

पुस्तकके अभी-दो-ही चार पृष्ठ पढ़े होंगे कि रामप्रसादकी स्त्री वहां आ पहुंचीं। पार्वतीको पुस्तक पढ़ते देखकर उसके शरीरमें आग लग गई। उसने अपने अभ्यस्त अनेक कुवाक्योंका विष उगल कर अन्तमें कहा— "पुस्तकें पढ़कर ही तू राधेको चट कर गई। तू नार नहीं नागन है। भगवान् भगवान्! मेरे घरमें ऐसी डायन कहांसे आ गई! वह था—तबाह कर गया; तू है—तबाह करनेकी फिक्रमें है"।

हिरनके बच्चे पर शेरनीको गुर्राता देखकर जिस तरह उसका प्रणयी शेर भी गरजने लगता है उसी तरह रामप्रसाद भी गरीब पार्वती पर टूट पड़ा। उसने भी स्वस्ति वाचनके बाद कहा—ठीक तो कहती है, यह नार नहीं, नागन है। कहींको मुह काला भी तो नहीं करती। मै ऐसी नागनको पालना नहीं चाहता। उसे खा गई। अब मुझे खायगी क्या?

इधर रामप्रसाद बक रहा था, उधर पार्वतीके हृदयमें अनेक तरंगें उठ रही थीं। उन्हीं तरङ्गोंमें उसने अपने पति रामचरणके दर्शन किये। इस समय उसकी आंखमें कातरताके साथ-साथ दुःख भी था, विषाद भी था और

अभागिनी पार्वतीके लिए थी—गहरी सहानुभूति। स्माइल्स साहबकी आत्मा भी अबला पार्वतीको पुस्तकके रूपमें खूब बल-प्रदान कर रही थी। पार्वतीने पुस्तकको बन्द कर दिया। पुस्तकके आवरण पृष्ठ पर सोनेके अक्षरोंमें छपे "Self-Help" के मनोहर शब्द पार्वतीके अश्रुपूर्ण नेत्रोंको अपनी ओर खींचने लगे।

३

दूसरे दिन प्रातःकाल पार्वतीने बड़ी शान्तिसे अपनी सासको समझा दिया कि वह कुछ दिनोंके लिए अपने भाईके पास जाना चाहती है। आप उसे एक चिट्ठी लिखवा दीजिए।

सासको मनचाही बात हाथ लग गई। उसने उसी समय स्त्री-जन-सुलभ नमक मिर्च लगाकर अपने पति रामप्रसादसे कह दिया। उन्होंने पहले तो 'हाँ' 'हूं' की। फिर धर्म्म और स्वभावकी साथिनी स्त्रीके कहने-सुनने पर सुखदयालको एक चिट्ठी लिख दी।

चार दिन बाद बहू चली जायगी—इसलिए बहूके साथ अधिक कठोर व्यवहार न करना चाहिए, यह सोच कर रामप्रसाद-दम्पतीका व्यवहार पार्वतीके साथ अपेक्षाकृत अच्छा हो गया है। घरके कामोंके साथ अब उसे गालियोंका बोझा वहन नहीं करना पड़ता। पर कर्जदारीके कारणका ज़िक्र यथा-नियम प्रतिदिन एक-दो बार हो जाता है।

राधाचरणको मरे अभी पूरा एक वर्ष भी नहीं हुआ था। इसी थोड़े समयमें ही घरकी हरएक चीज पार्वतीके लिए बिलकुल बदल गई थी। घरके आदमियोंके साथ घरके दरोदीवार भी उसे काटने दौड़ते थे। मूल्य समाप्त न होनेके कारण अभी तक उसके नाम कुछ समाचार-पत्र आते थे। पार्वती समय मिलने पर उन्हें पढ़ लेती थी। आजके "हितकारी" में उसने "आवश्यकता"-के स्तम्भको बहुत गौरसे पढ़ा।

तीसरे दिन जवाब आ गया कि शनैश्चरकी रातको सुखदयाल बहनको

लेनेके लिए आवेगा। बृहस्पतिवारको पत्र मिला था। पार्वतीको सिर्फ दो रोजका मिहमान समझ कर सास और ससुरका कठोर हृदय और ढीला पड़ गया। पार्वतीकी सेवा और उसके कभी न डिगनेवाले शीलमें उन्हें अब बहुत कुछ भलाई दिखाई देने लगी। विच्छेदके विचारने निस्सन्देह उनकी मानसिक कलुषताको बहुत कुछ दूर कर दिया।

काल भगवान् किसीकी उपेक्षा नहीं करते। सूर्यके रथका धुरा कभी नहीं टूटता। काल भगवान्के प्रधान सहचर सूर्यदेव सुखी, दुःखी—सभी—को पीछे छोड़ते हुए रथ बढ़ाये चले ही जाते हैं। शनैश्चरकी रातको सुखदयाल—दैन्य और दारिद्र्यकी मूर्त्ति सुखदयाल—आ गया। बहनको गले लगा कर वह बहुत रोया। दूसरे दिन प्रातःकालकी ट्रेनसे वह पार्वतीको लेकर घरको रवाना हो गया।

पार्वतीने चलते समय सिर्फ अपने पतिकी पुस्तकोंका एक ट्रङ्क अपने साथ लिया। बाकी न कोई जेवर और न दो धोतियोंको छोड़ कर कोई कपड़ा। भरा हुआ घर, जो उसके लिए पहले ही खाली हो चुका था, उसने भी खाली कर दिया। चलते समय सासने ऊपरी मनसे जल्द आनेके लिए कहा और स्त्री-जन-सुलभ अश्रुवर्षाका परिहास भी दिखाया।

पार्वतीने निष्कपट मनसे जिस समय सासके चरण छुए उस समय गरम-गरम आंसुओंकी कुछ बूंदोंने भी हरदेवीके चरण छूनेमें उसके साथ प्रतियोगिता की।

## ४

पार्वतीके आनेसे सुखदयालकी ग़रीबीका—पर पैतृक, और इसीलिए पक्का—घर स्वर्ग बन गया। उसके बालक, जो निर्धनताके कारण शिक्षा न पा सकते थे, बुआ पार्वतीसे पढ़ने लगे। सुखदयालकी बड़ी लड़की शान्ति उससे हिन्दी-शिक्षाके साथ-साथ सिलाईका काम भी सीखने लगी। थोड़े ही दिनोंमें पार्वती और शान्तिको सुईके प्रतापसे कुछ कम दो रुपये रोजकी

आमदनी होने लगी। पार्वतीके कहने पर सुखदयाल एक अच्छी गाय खरीद लाया। अब उसके घरमें सब कुछ था। विद्या थी, धन था और गोरस था। सुखदयालकी स्त्री चमेली पार्वतीको अपनी समृद्धिका मूल कारण समझती थी। वह उसे साक्षात् देवी समझती थी। प्रातःकाल उठकर उसके चरण छूती थी। घरका हर काम उसकी आज्ञा लेकर करती थी।

एक वर्ष बीत गया। पार्वती हिन्दू-गर्ल्स-स्कूलमें हिन्दी पढ़ाती है। इसी वर्ष उसने प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली है। ५०) मासिक वेतन मिलता है। अब सुखदयालके बालक, जो एक वर्ष पहले लावारिस और आवारा घूमते-फिरते थे, साफ कपड़े पहन कर भले बालकोंकी तरह बगलमें पुस्तके दबाये स्कूल जाते हैं। लड़की शान्ति भी पार्वतीके साथ स्कूलमें काम करती है। देवि-स्वरूपिणी बहन पार्वतीकी बदौलत भाई सुखदयालने भी चपरासगरीके कर्कश हाथोंसे छुटकारा पाकर सौदागरीकी दूकान खोल ली है।

सुखदयालका घर भी अच्छा खासा बालिका-विद्यालय था। महल्ले भरकी छोटी बड़ी अनेक लड़कियाँ स्कूलसे इतर समयमें पढ़ने और सूईका काम सीखने आती थीं। विद्यादानका द्वार सदा उन्मुक्त रहता था। पार्वतीके परोपकार आदि सद्गुणोंकी प्रशंसा महल्लेसे बढ़कर शहर भरमें फैल गई थी।



चार वर्ष और बीत गये। पार्वतीने प्राइवेट तौर पर पहली कक्षामें बी०ए० पास किया। रायपुरके कलेक्टरकी पत्नीने अपने हाथसे पार्वतीकी सफेद साड़ी पर प्रतिष्ठा-सूचक मेडल पहनाया। हिन्दू-गर्ल्स-स्कूलकी प्रधान शिक्षयित्री-( लेडी प्रिन्सिपल ) के पद पर ( जिसकी शोभा, उपयुक्त हिन्दू पण्डिताके न मिलनेके कारण, अब तक क्रिश्चियन लेडियां बढ़ाती रहीं ) पण्डिता पार्वतीका वरण किया गया। शहर भरमें पार्वतीका यशोगान होने लगा। वेतन भी एक दम २५०) हो गया।

## ५

रविवारका दिन था। स्कूलके बड़े कमरेमें प्रबन्ध-कारिणी समितिके सभ्योंकी अन्तरङ्ग सभा हो रही थी। मेम्बर सभी स्त्रियां थीं। राय रामकिशोर बहादुरकी पत्नी, जो स्कूलकी आनरेरी सेक्रेटरी थी, प्रबन्ध-सम्बन्धी अनेक विषय पेश कर रही थीं। राय बहादुरकी पत्नीने कहा—अब मैं आजकी बैठकका आख़िरी विषय अर्थात् स्कूलके चपरासीके कामके लिए आई हुई दरख्वास्तें पेश करती हूं। मेरी सम्मतिमें जिन लोगोंकी दरख्वास्तें हैं उन्हें बिना देखे नौकर रखना ठीक न होगा। चपरासी बूढ़ा तो होगा ही, पर साथ-ही-साथ चिड़चिड़ा या ज़ियादह कमजोर भी न होना चाहिए और यह ऐसी बात है जो बिना देखे ठीक नहीं हो सकती। अब मैं इस विषयमें आपकी या बाईजीकी ( मतलब था प्रिन्सिपल पार्वतीसे ) जैसी आज्ञा हो वैसा करूँ।

उपस्थित अन्य तीन महिलाओंने एक-स्वरसे कहा—इस विषयमें बाईजीकी आज्ञानुसार ही काम होना चाहिए, क्योंकि बाईजीकी आज्ञायें वहन करने और दरबानीके लिए ही चपरासीकी नियुक्ति होगी।

पार्वतीने अपने शान्त, पर प्रभा-पूर्ण, मुख-कमलको खिलाते हुए कहा—मैं रायबहादुरकी पत्नीसे सहमत हूं। आदमीको देख कर ही रखना अच्छा होगा। मनुष्यके चेहरेसे उसके गुण-दोषोंका बहुत पता लग जाता है। उस दिन "रैशनल थाट" में मिस्टर अरण्डलका, आपने, सेक्रेटरी महोदया इसी विषयपर एक लेख पढ़ा था ?

रायबहादुरकी पत्नीने कहा—पढ़ा तो था। पर समझा था कम। आजकल आपका पूरा समय और शक्ति "विधवा-आश्रम"-की स्थापनामें लग रही है। इस तरह आप देशकी बड़ी भारी सेवा कर रही हैं। आपका कुछ भी समय खाली होता तो मैं आपसे अँगरेजी-साहित्यका थोड़ा-बहुत अध्ययन करके अपनी इस कमीको जरूर पूरा करती। पर मेरे मूर्ख रह जानेसे देशकी विधवाओंकी दुःख भरी शोचनीय अवस्थाको सुधार देनेवाले "विधवा-आश्रम"-की स्थापना कहीं बढ़कर आवश्यक और एकान्त कर्तव्य है।

पार्वतीने मुस्कराते हुए कहा—धन्यवाद। आपकी सहायता और ईश्वरकी कृपासे ही यह काम पूरा हो सकेगा। आप सुन कर प्रसन्न होंगी कि हमारे प्रजा-प्रिय छोटे लाट महोदयने हिमालय-पार्श्वके उस बड़े भू-खण्डको विधवा-आश्रमके लिए देनेकी कृपा की है। चन्दा भी कुछ कम एक लाख हो गया है। ईश्वरकी कृपा हुई तो अब यह कार्य्य शीघ्र ही पूर्ण हो जायगा।

रायबहादुरकी पत्नीने बड़े हर्षके साथ कहा—अब कामके पूरा होनेमें कुछ सन्देह नहीं। जिस दिन आपने आश्रमके लिए अपना जीवन देनेका महा प्रण किया था हमें क्या, देशके सभी हितैषियोंको, उसी दिन कामके पूरा होनेका पक्का भरोसा हो गया था।

पार्वतीने बड़ी सरलतासे कहा—बहन, धन्यवाद। हां तुम्हारी अंगरेजी-साहित्य पढ़नेकी बात रही जाती है। उसके विषयमें मेरा निवेदन है कि आप रायबहादुर साहबसे पढ़ें। स्त्रियोंके लिए पतिसे बढ़कर शिक्षक और कोई नही। लड़कियोंको तो माता-पिता या अन्य कोई शिक्षक पढ़ा सकता है। पर स्त्रियोंका, या साहित्यकी भाषामें प्रौढ़ाओंका, परम गुरु और शिक्षक पति ही है। आशा है आप मुझे इस वक्तव्यके लिए क्षमा करेंगी।

रायबहादुरकी पत्नीने सौजन्य दिखाते हुए लेडी प्रिन्सिपलका धन्यवाद किया और साथ ही सभाका कार्य्य भी समाप्त कर दिया।

## ६

कङ्गाल भारतकी विभूतिका कल्पित स्वप्न देख कर आज भी अनेक विदेशी चौंक उठते हैं। किन्तु जिन लोगोंने भारतके गाँव देखे हैं, एक-वस्त्र-धारी कृश-काय अस्थि-चर्म्मावशिष्ट भारत-गौरव किसानोंको देखा है वे भारतकी विभूतिको खूब समझते हैं।

गर्ल्स-स्कूलमें आठ रुपयेकी चपरासके लिए इतने आदमी आवेंगे—किसीको ख़याल भी न था। अनेक बूढ़े आदमी पाँत बांधे बैठे थे। रायबहा-दुरकी पत्नी और सेकेण्ड मिस्ट्रेस छबीला देवीने उस भीड़मेंसे चार आद-

मियोंको चुन लिया। इन्हींमेंसे एकको बड़ी बाईजी चुनेंगी। हिन्दू-गर्ल्स-स्कूलमें परदे और सदाचारका विशेष ध्यान रखा जाता है। इसीलिए किसी नौकरकी नियुक्तिके विषयमें बहुत सावधानतासे काम लेना पड़ता है। स्कूल-भरमें सिर्फ़ चपरासीका काम ही बूढे मर्दके सिपुर्द था, बाकी सब कामों पर स्त्रियां ही नियुक्त थीं।

दस बजते-बजते लेडी प्रिन्सिपलकी गाड़ी स्कूलके बरामदेमें पहुंच गई। विभिन्न कक्षाओंको विभिन्न पंक्तियोंमें खड़ी बालिकाओंने बड़ी श्रद्धासे प्रधानाध्यापिकाको प्रणाम किया। गाड़ीसे उतर कर वे सीधी आफिसमें पहुंचीं। रायबहादुरकी पत्नी वहां पहले ही से उपस्थित थीं। प्रिंसिपलके पहुंचनेपर दासीने बारी-बारीसे उन चारों आदमियोंको बुलाया।

पहले आदमीको देखते ही पार्वतीके विस्मयका ठिकाना न रहा। वह बूढ़ा आदमी और कोई न था—अभागा रामप्रसाद था। उसे देखकर पण्डिता पार्वतीके हृदयमें क्षणभरके लिए लज्जाका उदय हुआ। किन्तु उसने तत्काल ही अपनेको सँभाल लिया।

नौ मीलकी दूरी पर आठ रुपयेकी नौकरीके लिए वह क्यों आया है? मालूम होता है, उसकी मिल्कियत और मकान चाटुकार पड़ोसी सूदखोरकी विशाल तोंदमें जरूर समा गया है। रामप्रसादके मलीन और चिन्तित मुखको देखकर करुणा-हृदया पार्वतीके मनका अन्तस्थलतक हिल गया। उसने दूसरी तरफ़से मुंह करके अनमने भावसे सन्देह निवारणके लिए पूछा—
"आपका नाम?'

"रामप्रसाद पाण्डे।"

"मकान?"

"विनामपुर।"

"इतनी दूर नौकरीके लिए क्यों आए?"

"माँ, पेटकी खातिर।"

"घर पर रोटी-दाल न थी?"

"माँ, सब कुछ था ; खेती क्या, ज़मींदारी भी थी।"

"वह क्या हुई ?"

"कर्ज़में बिक गई।"

"कर्ज़ क्यों लिया था ?"

"मां, दुःखकी बातें हैं उन्हे भूल जाना ही अच्छा है।"

"फिर भी सुनाइये तो ?"

" भतीजेकी पढ़ाईके लिए।"

"और क्या ?"

"और कुछ नहीं—"

"लड़कीकी शादीमें तो फ़जूलख़र्चीं नहीं की थी ?"

बूढ़ेका चेहरा उतर गया। उसने पार्वतीका चेहरा कभी न देखा था और अब तो विद्या, मान और अधिकारकी दीप्तिने उसे बिलकुल ही बदल दिया था। बूढा, बाईजीको मन-ही-मन देवी समझने लगा। रायबहादुरकी पत्नी भी इस प्रश्नोत्तरीको एकाग्र मनसे सुन रही थीं।

"माँ, तुम देवी हो। सचमुच लड़कीकी शादीमें ही बरबाद हुआ हूं।"

"तो भतीजेके पढ़ाईके लिए कुछ न कुछ रुपया कर्ज़ लेना पड़ा होगा ?"

"माँ, सिर्फ डेढ़ सौ रुपये।"

कहते-कहते बूढ़ेके कोटर-लीन नेत्रोंमें आँसू भर आये।

"अच्छा आप बाहर बैठिए"

बाकी तीन आदमियोंमेंसे एक आदमी चुन लिया गया। बूढा रामप्रसाद उसी समय लेडी प्रिंसिपलके बङ्गले पर पहुंचाया गया।

आठ रुपयेकी नौकरीके लिए आए हुए रामप्रसादको बङ्गलेके नौकरोंने जब मालिककी तरह ठहराया तब उसे बहुत आश्चर्य्य हुआ।

शामको भोजनोपरान्त पार्वतीने कहा—

"आप मुझे पहचानते हैं ?"

"मां, आप स्कूलकी बड़ी बाई हैं।"

"मैं आपके भतीजेकी अभागिनी स्त्री हूं।"

बूढ़ेकी निद्रा टूट गई। उसे मूर्छा आने लगी, पार्वतीकी भतीजी शान्तिने संभाल लिया।

पार्वतीने बहुत चाहा कि रामप्रसाद यहीं रहे। पर वह किसी तरह राजी न हुआ। आत्म-ग्लानिकी तीव्र अग्निसे वह अन्दर ही अन्दर जल रहा था। चलते समय पार्वतीने कभी-कभी दर्शन देनेका वचन ले लिया। फिर एक एक हजारके दो नोटोंको लिफ़ाफ़ेमें बन्द करके बूढ़े ठाकुरके हाथमें दिया और बड़ी नम्रतासे कहा—"यह चिठ्ठी मांजीको दे दीजियेगा और अबकी बार उन्हें ज़रूर साथ लाइएगा।



# दर्शन

१

मैं उन दिनों कलक्टरीमें पेशकार था। विमलाकी मृत्युसे पहले तो मुझे बहुत दुःख हुआ। घर खाली मालूम होता था। वह अपने कानों तक फैले हुए नेत्रों द्वारा घरके कोने-कोने और आले-आलेसे टिकटिकी बाँधे हुए मुझे देखती मालूम होती थी। उस समय भी उसके अधरोंपर परितृप्तिकी हँसी और चेहरे पर शान्त भाव था। मरते समय उसके चेहरे पर नामको भी विकार न उत्पन्न हुआ था। तीन-चार दिनोंकी साधारण बीमारीसे ही उसने हँसते-हँसते इस लोकसे पयान कर दिया। उसकी मृत्युके ३-४ हसे बाद तक मेरी तबीयत बड़ी उचाट रही। मन सुस्त रहा। उसके कोमल व्यवहारों-का स्मरण करके मेरा कठोर हृदय पिघला जाता था।

उसके सामने ही मैं उच्छृङ्खल हो गया था। इसके बाद घर पर शराब पीने लगा था। किसी-किसी रातको घरसे अनुपस्थित भी रहता था। विमला मेरी दशापर बहुत कुढ़ती थी। वह कातर होकर कभी-कभी हाथोंसे मुझे समझाया करती थी। किन्तु अहलमदीकी आमदनीने जिस पाप बीजको मैं अपने हृदय-क्षेत्रमें बो चुका था उसका मूलोच्छेद विमलाकी मृदु और मधुर शिकायतें थोड़े ही हो सकता था। यही कारण था कि उसकी मृत्युका मुझे इतना दुःख नहीं हुआ जितना होना चाहिए था या हो सकता था। वह मेरे हृदयकी देवी बनने योग्य थी। किन्तु मेरे कुत्सित हृदयके और भी कई हिस्सेदार थे। उनमें विमलाके लिए स्थान जरूर था, पर वह उसकी एकमात्र अधिकारिणी न थी। इसलिए उसकी मृत्युके बाद हिन्दुओंके सम्मिलित परिवारकी तरह बचे हुए वारिसोंने ही उसके स्थानको प्राप्त कर ली।

विमलाके सामने मद्य-पानकी मात्रा बहुत कम थी। किसी-किसी दिन अनध्याय भी हो जाता था। विमलाके पास पहुँच कर मैं [illegible] या उल्फतरायकी शक्तिसे बाहर हो जाता था। फिर, मुकदमेवाला आया है, कोई बुलाता है, आदि बहाने मुझे बाहर न निकाल सकते थे। उस दिन मद्य-पान-रूप महा पाटका अनध्याय हो जाता था। किन्तु ग्रेड (Grade) अर्थात् दरजेकी उन्नति और विमलाकी मृत्युने मुझे अब मद्य-पानके साथ उन धूर्तोंका भी क्रीतदास बना दिया। शामको सात बजेके बाद मेरा स्थान छोटा सा पानालय बन जाता था। अब मेरे स्वेच्छाचारमें बाधा डालनेवाला कोई न था।

सौभाग्यसे मेरे कोई सन्तति न थी। मैंने दूसरा विवाह भी न किया।

## २

इन दिनों मुझे ६०) मासिक मिलते थे। दूसरे दर्जेके डिप्टी साहबके यहाँ पेशकार था। डिप्टी साहबको मिलते थे कुछ ऊपर तीन सौ और मुझे—ऊपरकी आमदनी मिलाकर कोई ढाई सौ पड़ जाते थे। पर पापके धनमें

स्थैर्य्य कहां ? बड़ी आसानीसे मिला हुआ धन उससे अधिक आसानीसे पानीकी तरह खर्च हो जाता था। जब मेरे यहां रही शराबकी डाटें खुलनेके बजाय विलायती जलकी बोतलोंसे "काग" खुलते थे।

बुराईके पास बुराई आती है और आश्चर्य्य यह है कि बिना बुलाये आती है। हमारी मण्डलीमें भी दो तीन गुण्डोंका प्रवेश हो गया था। वे भले-मानस गुण्डे थे। दिनमें आफिसोंमें मेरी तरह रोबदाबके साथ अपना-अपना काम करते थे। समाजमें पढ़े-लिखे और धनोपार्जनके खयालसे बड़े आदमी समझे जाते थे। पर रातको ताण्डव-नृत्यमें सम्मिलित होते थे।

हमारी मण्डलीके अन्यतम सदस्य स्टेशन-मास्टर बाबू थे। उन्हें हमलोग मास्टर बाबू कहते थे। उस दिन उनके यहां दावत थी। जब कोई नया शिकार फँसता था। तब मास्टर बाबू हम लोगोंको भी बुलाते थे।

छत पर एक छोटा-सा कमरा था। हम सब मिल कर तीन थे। मद्यपानके साथ उन लोगोंके आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे जिन्हें मास्टर बाबूने आज ही अपने जालमें फँसाया था।

दरवाजा खुला। स्टेशनके यमदूत एक स्त्रीको अन्दर लाये। स्त्रीकी अवस्था २२ वर्षसे अधिक न थी। उसके लावण्यपूर्ण किन्तु कुम्हलाये हुए चेहरे पर भीतिके चिन्ह स्पष्ट प्रकट हो रहे थ। चकित हिरनोंकी तरह अपने लम्बे-लम्बे नेत्रोंसे उसने चारों ओर देखा। किसी गृहस्थके मकानपर पहुंचाने-का धोखा देकर वह वहां लाई गई थी। कमरेकी विलासपूर्ण सामग्री और शराबकी आधीसे अधिक खाली बोतलें देख कर उसे अपने भाग्यके निर्णयका तत्काल बोध हो गया। मैं उसे देख रहा था। उसके चेहरेसे भीतिके चिन्ह एक साथ दूर हो गये। यमदूत उसे अन्दर पहुंचा कर यथा-विधि चले गये। मास्टर बाबूने उसे कुर्सीपर बैठनेके लिए कहा; किन्तु वह शरीरमात्रसे ही वहां स्थित थी। उसकी आत्मा मानों किसी ऐसे स्थानमें विचरण कर रही थी कि जहां भय नहीं, शोक नहीं और दुःख नहीं। उसके चेहरे पर विचार-सम्बन्धिनी दृढ़ता झलक रही थी। मास्टर बाबूने नशेकी झोंकमें कहा

"देखा, हमने आपका मन बहलानेके लिए कैसा अच्छा प्रवन्ध किया है। आप कुछ खाइये। थोड़ी-सी शराव पोजिये। दिन भरकी थकावट और सुस्ती दूर होकर आपके शरीरमे नये जीवनका सचार होगा। प्रात.कालकी ट्रेनसे मैं आपको देहरे भेज दूगा। वहां आप अपने पतिसे—निस्सन्देह भाग्यवान पतिसे—मिल जायँगी।"

रमणी स्थिर थी। उसने कुछ न कहा। वह स्थिर-दृष्टिसे न मालूम मनमें क्या स्थिर कर रही थी।

ऐं! रमणीके हाथसे फेंकी हुई शरावकी बोतलसे मास्टर बाबूका सिर फट गया। शरावके हल्के सुर्ख रङ्गके साथ मास्टरका गाढ़ा रक्त मिलकर उसके शरीर पर गिरने लगा। ग्लासके आघातसे मेरे माथे पर भी गहरी चोट आई। किन्तु मुझमें फिर भी शक्ति थी। मै उसे पकड़ सकता था, रोक सकता था; पर मैंने वैसा नहीं किया। इसलिए नहीं कि मैं डर गया था; उसके रो[illegible] नेत्रोंसे मुझे डर मालूम होने लगा था—नहीं। मैंने उसके नेत्रोंमें, उसके प्रभावपूर्ण कमनीय चेहरे में, विमलाका प्रत्यक्ष दर्शन किया। शराबके नशेके कारण, भावुकताके कारण, या मेरी मानसिक अवस्थाके कारण मुझे उसके रूपमे विमलाका सोलहो आने दर्शन हुआ। यदि वह विमला होती तो मुझे इस मण्डलीपर कितना रोप होता? नीतिके इस तत्त्वको समझकर मुझे उसपर दया ही आई, क्रोध न आया। रक्त-पात ठीक ही हुआ। कुल-कर्म्मका प्रायश्चित्त उचित ही हुआ। रमणी धीरतापूर्वक किवाड़ खोल कर चली गई। चलते समय उसने मेरी ओर देखा। मै काँप उठा। उसके नेत्रोंमें गजबका आतङ्क था। वैसा आतङ्क सभी साध्वी स्त्रियोंके नेत्रोंमें होता है; किन्तु पाठक, आप उस आतङ्कको नही जानते। पापी ही उसे अच्छी तरह जानते हैं। वह दृष्टि पुलिससे बढ़कर हमारे लिए भयका कारण होती है। हमारा तीसरा साथी मुफ्तकी मधके अधिक पीजानेके कारण कुर्सीपर पहलेसे ही चित हो गया था। पांच मिनटके भीतर ही उस छोटेसे कमरेमें जो रक्त-पात हो गया था उसकी उसे कुछ भी खबर न थी।

स्टेशन मास्टरके ज़ख़्मको मैं रोज़ देखता था। रक्त सम्बन्धी विकारके कारण उनका ज़ख़्म दिन दिन भीषण होता जाता था। पीब पड़जानेके कारण मास्टर बाबू रात दिन तड़पता था। उसकी विकल अवस्थाको देखकर मेरा दिल हिल गया। मैंने भी तो उससे कम पाप-संग्रह नहीं किया। अब मेरे सिवा उसके पास कोई न आता था। खाने-पीनेवाले मित्र मुझे भी वहां जानेसे रोकते थे और मौजमें रहनेकी सलाह देते थे। मेरे ज्ञान-चक्षु कुछ-कुछ खुल गये थे। मेरे बिगड़े समयमें भी यह लोग इसी तरह भाग जायगें। मुझे बड़ी निराशा हुई। खाने-पीनेवाले लोग, काले मुह भ्रमरोंकी तरह, एक फूलको छोड़कर दुसरे फूलकी तलाशमें लग जाते हैं। मेरी वृत्ति बदल गई। मुझे सभी कामोंसे—भले और बुरे दोनोंसे—विराग होगया। मन बुझ गया। मैंकी क्षणिक उत्तेजनासे तो मुझे बड़ी घिन हो गई। मास्टर बाबूकी यातना-पूर्ण लम्बी बीमारी, रमणीका रोषपूर्ण कटाक्ष और स्थिर-भाव आदि अनेक प्रासङ्गिक बातोंने मेरे मनको एकदम कुछका कुछ कर दिया।

उस दिन शरत्-पूर्णिमा थी। हम लोग मास्टर बाबूकी शव-क्रिया करके नदीमें स्नान कर रहे थे। ठाडे जलमें बार-बार गोते लगाने पर भी मेरे मनकी जलन न बुझती थी। मास्टर बाबूकी विधवा स्त्रीका आर्त-नाद सुनकर मेरा कलेजा निकला पड़ता था। मास्टर बाबूकी फ़िजूल खर्चीने उसके पास कुछ न छोड़ा था। किन्तु वह अपनी निराश्रयावस्थाके कारण दुखी न थी—कातर थी पति वियोगके कारण। पारिपार्श्विक अवस्था और मनके परिवर्त्तित-भावोंके कारण मेरा श्मशानवैराग्य सच्चे वैराग्यमें परिणत हो रहा था। मैं सोच रहा था कि मैं पापी हूं; मैं भी अनेक रोगोंके बीजोंको शरीरमें पाल रहा हूँ। इन बातोंसे मेरा मन उतना उचाट न होता था जितना कि अपने लक्ष्य-हीन जीवनको देख कर। भाद्रपदकी मेघावृत, अतएव अन्धकारपूर्ण रजनीमें चपलाकी चंचल रेखाकी तरह मेरे तमसावृत मनमें भी आशा देवीका

एक वार—पर क्षणभरके लिए—उदय हुआ। मेरे हृदयकी तन्त्रीमें आशाका मधुर राग बज उठा। अभी समय है; कृत-कर्मोंका बहुत कुछ प्रायश्चित्त हो सकता है; मैलेसे मैला कपड़ा यत्न-पूर्वक धोनेसे साफ हो सकता है; विगत जीवनके गहरे ज़ख़्म भी यत्न-पूर्वक चिकित्सा करनेसे अच्छे हो सकते हैं। और लोग स्नान करके चल भी दिये; मैं खड़ा-खड़ा इन्हीं बातोंको सोच रहा था। चन्द्रदेव भी मेरे मानसिक अभ्युदयके उत्थान पर मुसकरा रहे थे। नदीकी लहरें भी उठ कर मेरे निश्चयका अनुमोदन करती थीं। वायुदेव भी पीपलके मुलायम पत्तोंकी मारफ़त मानो मुझसे कह रहे थे—शुभस्य शीघ्रम्।

४

१२ वर्षोंसे मैं गृह-त्यागी हूं। गुरुकी कृपासे मुझे अब देववाणी संस्कृतका अच्छा अभ्यास हो गया है। विचार-सागरसे लेकर वेदान्त दर्शन तक वेदान्तके सभी प्रसिद्ध और प्रकरण-ग्रन्थ मैंने गुरु-मुखसे पढे हैं। उपनिषद् और गीता का भी मैंने मनोयोग-पूर्वक अध्ययन किया है। बारह वर्ष पहलेके जीवनसे मेरा वर्तमान जीवन कितना विभिन्न और उच्च है। अब उसमें आसक्ति नहीं है; राग द्वेष नहीं है, आनन्दकी धारा, कल-कल-नादिनी नदीकी तरह, समान-रूपसे वही जारही है। अनेक विद्यार्थियोंको मैं वेदान्त पढ़ाता हूँ। अनेक, व्याकरण और तर्क भी मुझसे पढते हैं। मेरे पास कपिल, कणाद और व्यास सदा ही वर्तमान रहते हैं। आत्मानुभव और समदर्शिताकी तलछट-विहीन मधसे मेरा मन सदा ही मस्त रहता है। कैसी शान्ति है। निवृत्ति-जन्य कैसा आनन्द है।

भारतके सभी प्रान्तोंमें मैं घूम चुका हूं। अनेक दुर्व्यसनियोंके व्यसन छुड़ानेमें मैं कृतकार्य्य हो चुका हूं। जिस शहरमें १२ वर्ष तक मैं सरकारी कर्म्मचारी रहा था वहां दो बार हो आया हूं। किन्तु वहां मुझे कोई न पहचान सका। मेरे उपदेशोंसे वहांके अनेक निवासियोंने शान्ति लाभ किया है। मेरे बढे हुए बाल और भरे हुए शरीरके कारण वे मुझे न पहचान सके।

शास्त्रीय अध्ययन और आत्मचिन्ताके तेजने भी मेरे विकृत मुखको बहुत कुछ गम्भीर और उज्ज्वल कर दिया है। मैं सबको वेदान्तका चरम उपदेश नहीं करता। सभीको मैं ब्रह्मजीवकी एकताकी शिक्षा नहीं देता। मैं साधारण मनुष्योंके मल-विक्षेप युक्त चित्तोंकी मलिनता, उन्हींके आचरित धार्म्मिक कृत्यों द्वारा, दूर करनेकी चेष्टा करता हूं। इसलिए मेरे पास सभी जाति और सभी विचारके मनुष्य आते हैं। उनसे मुझे और मुझसे उन्हें विचार-सम्बन्धी लाभ पहुंचता है।

दस वर्षों तक मैंने यथाशक्ति मनुष्योंका उपकार करके अपने विगत जीवनमें किये गये अपकारका प्रायश्चित्त किया है। पिछले सालसे मैंने अखाड़ेके पास एकान्त स्थानमें कुटी बना ली है। फिर भी यहां लगातार कुछ विचार-शील सत्सङ्गी मेरे पास पहुंच जाते हैं। उनके आनेसे मुझे भी खूब हर्ष होता है। जङ्गलमें रहता हुआ मनुष्य भी अन्ततः समाजका ही पशु है। गृहस्थ विद्वानोंसे मेरा बहुत उपकार हुआ है। वे मेरे गुरु हैं। किन्तु घरेलू झंझटोंमें फँसे रहनेके कारण उनकी साधनावस्था विशेष अच्छी नहीं होती। इसलिए वे लोग मुझसे साधन-सम्बन्धिनी कोई साधारण बात सुनकर मुझपर अनुरक्त हो जाते हैं।

उस दिन प्रोफेसर राजकिशोर, एम० ए० आये थे। वेदान्तके अच्छे ज्ञाता थे। अंग्रेजीमें वेदान्त-ग्रन्थ पढ़कर उनके तत्वको इतना अच्छी तरह बहुत कम आदमियोंने समझा होगा। मुझसे बातचीत करके वे बड़े प्रसन्न हुए। जल-वायु-परिवर्त्तनके लिए वे इधर आये हुए थे। जबतक पहाड़ पर रहेंगे मेरे पास आयेंगे, यह कहकर वे उस दिन चले गये।

दूसरे दिन वे अपनी धर्मपत्नीको भी साथ लाये। वे भी खूब पण्डिता हैं। प्रोफेसरकी पत्नी कहाने योग्य हैं। किन्तु उन्हें देखकर मुझे मालूम हो गया कि चित्तका संयम करनेके लिए अभी और भी कड़े साधनकी आवश्यकता है। उसमें राग नहीं है; उसमें द्वेष नहीं है—लोभ आदि निचले दर्जेके शत्रु भी नहीं हैं; किन्तु पूर्व-स्मृतिसे उत्पन्न हुई थोड़ी-सी भीति अभी तक अवशिष्ट है।

प्रोफेसरकी पत्नीने चलते समय विनीत भावसे कहा—"स्वामिन् आपके दर्शनसे हमारी पर्वत-यात्रा सार्थक हो गई।

मैंने माथे परसे जटायें हटाकर गिलासकी गहरी चोटका निशान दिखाते हुए उत्तर दिया—

"माता, इस कुबुद्धि सन्तानको पहचानती हो? रोषमयी माताके एक बार दर्शनसे जिस अधम सन्तानका इतना उपकार हुआ है अब प्रसन्न-वदना जननीके दर्शनसे भविष्यतमें कितना कल्याण होगा उसकी इयत्ता नहीं?"

मुझे पहचान कर पति-पत्नी चकित हो गये। मुझमें उनकी श्रद्धा कम नहीं हुई। वे दोनों आजकल मुझसे वेदान्त पढ़ रहे हैं। उन्हींके विशेष अनुरोधसे मैंने अपने तुच्छ जीवनकी साधारण, पर उपदेशप्रद, घटनायें लिपिबद्ध की हैं। पाठक क्षमा करें।



## श्री चतुरसेन शास्त्री

जन्मकाल १९४८ वि०

रचनाकाल १९१४ ई०

# खूनी

उसका नाम मत पूछिये। आज दश वर्षसे उस नामको हृदयसे और उस सूरतको आंखोंसे दूर करनेको पागल हुआ फिरता हूं। पर वह नाम और सूरत सदा मेरे साथ है। मैं डरता हूं, वह निडर है; मैं रोता हूं, वह हँसता है; मैं मर जाऊंगा, वह अमर है।

मेरी उसकी कभीकी जान-पहिचान न थी। दिल्लीमें हमारी गुप्त सभा थी, सब दलके आदमी आये थे, वह भी आया था। मेरा उसकी ओर कुछ ध्यान न था, वह पास ही खड़ा, एक कुत्ते-पिल्लेसे किलोल कर रहा था, हमारे दलके नायकने मेरे पास आकर सहज गम्भीर स्वरमें धीरेसे कहा,—"इस युवकको अच्छी तरह पहचान लो, इससे तुम्हारा काम पड़ेगा।"

नायक चले गये और मैं युवककी तरफ झुका। मैंने समझा, शायद नायक हम दोनोंको कोई एक काम सुपुर्द करेगा।

मैंने युवकसे हँसकर कहा,—"कैसा प्यारा जानवर है !" युवकने कँचके समान स्वच्छ आँखें मेरे मुख पर डालकर कहा,—"काश ! मैं इसका सहोदर भाई होता !" मैं ठठाकर हँस पड़ा। वह मुस्कराकर रह गया। कुछ बातें हुई। उसी दिन वह मेरा मित्र बन गया।

दिन-पर-दिन व्यतीत हुए। अछूते प्यारकी धाराएँ दोनों हृदयोंमें उमँड कर एक धार हो गई, सरल अकपट व्यवहारपर दोनों मुग्ध हो गए। वह मुझे अपने गांवमें ले गया। किसी तरह न माना। गांवके एक किनारे स्वच्छ अट्टालिका थी। वह गांवके जमींदारका बेटा था। इकलौता बेटा था। हृदय और सूरतका एक-सा। उसकी मांने दो दिनमें ही मुझे बेटा कहना शुरू किया। अपने होशके दिनोंमें मैंने वहां सात दिन माताका स्नेह पाया। फिर चला आया। फिर गया और आया। अब तो बिना उसके मन न लगता था। दोनोंके प्राण दोनोंमें अटक रहे थे। एक दिन उन्मत्त प्रेमके आवेशमें उसने कहा था,—"किसी अघट घटनासे जो हम दोनोंमेंसे एक स्त्री बन जाय तो मैं तो तुमसे ब्याह ही कर लू।"

नायकसे कई वार पूछा, क्यों तुमने मुझे उससे मित्रता करनेको कहा था ? वह सदा यही कहते, समय पर जानोगे। गुप्त सभाकी भयङ्कर गम्भीरता सब लोग नहीं जान सकते। नायक मूर्त्तिमान भयङ्कर गम्भीर थे।

उस दिन भोजनके बाद उसका पत्र मिला। वह मेरी पाकेटमें अब भी धरा है। पर किसीको दिखाऊँगा नहीं। उसे देखकर दो सांस सुखसे ले लेता हूँ, आंसू बहाकर हलका हो जाता हू। किसी पुराने रोगीको जैसे दवा खुराक बन जाती है, मेरी वेदनाको भी वह चिठ्ठी खुराक बन गई है।

चिठ्ठी पढ़ भी न पाया था, नायकने बुलाया। मै सामने सरल स्वभाव खड़ा हो गया। बारहों-प्रधान हाजिर थे। सन्नाटा भीषण सत्यकी तसवीर खींच रहा था। एक ही मिनटमें मैं गम्भीर और दृढ़ हो गया। नायककी मर्म-भेदिनी दृष्टि मेरे नेत्रोंमें गड़ गई, जैसे तप्त लोहेके तीर आंखमें घुस गए हों। मै पलक मारना भूल गया, मानों नेत्रोंमें आग लग गई हो। पांच मिनट

बीत गए। नायकने गम्भीर वाणीसे कहा,—"सावधान! क्या तुम तयार हो?"

मैं सचमुच तैयार था। मैं चौंका नहीं। आखिर मैं उसी सभाका परीक्षार्थी सभ्य था। मैंने नियमानुसार सिर झुका दिया। गीताकी रक्त-वर्ण रेशमी पोथी धीरेसे मेज़पर रख दी गई। नियमपूर्वक मैंने दोनों हाथोंसे उठाकर सिर पर चढ़ा ली।

नायकने मेरे हाथसे पुस्तक ले ली। क्षण-भर सन्नाटा रहा। नायकने एकाएक उसका नाम लिया और क्षण भरमें छ-नली पिस्तौल मेज़ पर रख दी।

यह छै नामोंका शब्द उस पिस्तौलकी छओं गोलियोंकी तरह मस्तकमें घुस गया। पर मैं कम्पित नहीं हुआ। प्रश्न करने और कारण पूछनेका निषेध था। नियमपूर्वक मैंने पिस्तौल उठाकर छाती पर रखी और स्थानसे हटा।

तत्क्षण मैंने यात्रा की। वह स्टेशन पर हाजिर था। अपने पत्र और मेरे प्रेम-पत्र पर इतना भरोसा उसे था; देखते ही लिपट गया। घर गये, चार दिन रहे। वह क्या करता है, क्या कहता है, मैं देख, सुन नहीं सकता था। शरीर सुन्न हो गया था, आत्मा दृढ़ था। हृदय धड़क रहा था, पर विचार स्थिर थे।

चौथे दिन प्रातःकाल जलपान करके हम स्टेशन चले। ताँगा नहीं लिया, जंगलमें घूमते जानेका विचार था। काव्योंकी बढ़-बढ़कर आलोचना होती चलती थी। उस मस्तीमें वह मेरे मनकी उद्विग्नता भी न देख सका। धूप और खिली। पसीने बह चले। मैंने कहा, चलो कहीं छाँहमें बैठें। घनी कुञ्ज सामने थी, वहीं गये। बैठते ही जेबसे दो अमरूद निकालकर उसने कहा,—"सिर्फ दो ही पके थे। घरके बगीचेके हैं। यहीं बैठकर खानेके लिए लाया हूँ। एक तुम्हारा एक मेरा।"

मैंने चुपचाप अमरूद लिया और खाया। एकाएक मैं उठ खड़ा हुआ। वह आधा अमरूद खा चुका था, उसका ध्यान उसीके स्वादमें था। मैंने

धीरेसे पिस्तौल निकाली, घोड़ा चढाया और ... रमें उसका नाम लेकर कहा,—" अमरूद फेंक दो और भगवानका ... लो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।"

उसे विश्वास न हुआ। उसने कहा,—"बहुत ठीक, प ... खा तो लेने दो !" मेरा धैर्य छूट रहा था। मैंने दबे कण्ठसे कहा,—"अ ... खा लो।' खाकर वह खड़ा हो गया, सीधा तनकर। फिर उसने कहा,— ... मारो गोली !" मैंने कहा, हँसी मत समझो, मैं तुम्हे गोली ही मारता ... भगवान-का नाम लो।" उसने हसीमें ही भगवानका नाम लिया ... नकली गम्भीरतासे खड़ा हो गया। मैंने एक हाथसे अपनी ... कहा,—"ईश्वरकी सौगन्ध ! हँसी मत समझो, मैं तुम्हें गोली मारता हूं।"

मेरी आंखोंमें वही कच्चे दूधके समान स्वच्छ आंखें मिलाकर उसने कहा,—"मारो।'

एक क्षण भर भी विलम्ब करनेसे मैं कर्तव्य-विमुख हो जाता ? पल-पलमें ... दूर रहा था। दनादन दो शब्द गूंज उठे। वह कटे वृक्षकी तरह गिर पड़ा। दोनों गोलियां छातीको पार कर गईं।

मैं भागा नहीं। भयसे इधर उधर मैंने देखा भी नहीं। रोया भी नहीं। मैंने उसे गोदमें उठाया। मुहकी धूल पोंछी, रक्त साफ किया। आंखोंमें ... देखने ... हो गया था। देरतक लिये बैठा रहा, जैसे मां ... —... भयसे—लिये निश्चल बैठी रहती है !

फिर ... उठा। ... चुना, चिता बनाई और जलाई। अन्त ... ... दिया।

* * * * *

... था। उसी स्थान पर जाकर मैं खड़ा हुआ। नायकने ... पिस्तौल मांगी। पिस्तौल दे दी। कार्य-निर्दिष्का सकेत ... हुआ। नायकने ... गम्भीर स्वरमें कहा,—"तेरहवें ... हम ... हैं।"

मैंने कहा,—"तेरहवें प्रधानकी हैसियतसे मैं पूछता हूं कि उसका अपराध मुझे बताया जाय।"

नायकने नम्रतापूर्वक जवाब दिया,—"वह हमारे हत्या-सम्बन्धी षड्-यन्त्रोंका विरोधी था, हमें उस पर सरकारी मुखबिर होनेका सन्देह था।" मैं कुछ कहने योग्य न रहा!

नायकने वैसे ही गम्भीरतासे कहा,—"नवीन प्रधानको हैसियतसे तुम यथेच्छ एक पुरस्कार मांग सकते हो।"

अब मैं रो उठा। मैंने कहा,—"मुझे मेरे वचन फेर दो, मुझे मेरी प्रतिज्ञाओंसे मुक्त करो, मैं उसीके समुदायका हूं। तुम लोगोंमें नङ्गी छातीपर तलवारके घाव खानेकी मर्दानगी न हो तो तुम अपनेको देशभक्त कहनेमें संकोच करो। तुम्हारी इन कायर हत्याओंको मैं घृणा करता हूं। मैं हत्याओं-के साथी, सलाही और मित्र नहीं रह सकता, तुम तेरहवीं कुर्सी जला दो।"

नायकको क्रोध न आया। बारहों प्रधान पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठे रहे। नायकने उसी गम्भीर स्वरमें कहा,—"तुम्हारे इन शब्दोंकी सजा मौत है, पर नियमानुसार तुम्हे क्षमा पुरस्कारमें दी जा सकती है।"

मैं उठकर चला आया।

दश वर्ष व्यतीत हो गए। देशभरमें घूमा, कहीं ठहरा नहीं, भूख-प्यास, विश्राम और शान्तिकी इच्छा ही मर गई दीखती है। बस अब वही पत्र मेरे नेत्र और हृदयकी रोशनी है। मेरा वारण्ट निकला था। मनमें आई, फांसी पर जा चढ़ू; फिर सोचा, मरते ही उस सज्जनको भूल जाऊंगा, मरनेमें अब क्या स्वाद है? जीना ही चाहता हूं। किसी तरह सदा जीते रहनेकी लालसा मनमें बसी है, जीते-जी ही मैं उसे देख और याद रख सकता हूं!

—:※:—

# जीजाजी

१

क्रमागत बीत रहे थे। अन्धेरी रात बादलोंसे घिर रही थी। रोगिणीने [illegible] पुकारा—"जीजाजी!"

रोगिणीके पिता खाटके पास ही बैठे थे। उन्होंने भरे हुए कण्ठसे दिलासा देते हुए कहा—"बिटिया! ऐसी अधीर मत हो, ज़रा धीरज धरो। अभी तो गाड़ीका समय है। तार तो ठीक समय पर पहुंच ही गया होगा; वह क्या रुकने वाले हैं।"

रोगिणीने मानो कुछ सुना ही नहीं। उसने पहले ही अधीर और आर्त-स्वरमें पुकारा—"जीजाजी!"

बूढ़ा चुप-चाप रोने लगा। द्वारपर शब्द हुआ। अमृतकला दौड़ी हुई आई, और उसने चिल्लाकर कहा—"जीजाजी आ गए!"

रोगिणीने आँख खोली। उसकी अवस्था सर्वथा आशा-हीन थी। छाती-का भयङ्कर फोड़ा इधर छातीके पार था, उधर कमरके। सात महीनेसे करवट भी नहीं ले सकती। दोनों पैर मारे गये थे। एक हाथ रह गया था—दूसरेमें हिलनेकी शक्ति नहीं थी। दस्तोंकी गिनती न थी। खाट काट दी गई थी। सिर्फ एक सुभीता था, वह सिरको यथेच्छ हिला सकती थी। आंख खोलकर उसने द्वारकी ओर सिर फेरा।

एक श्याम-वर्ण सुडौल युवकने घरमें प्रवेश किया। उसके एक हाथमें फलोंका रूमाल था, और दूसरेमें चमड़ेका बैग। दोनों वस्तुओंको वह नीचे न रख सका, वज्राहतकी तरह मुमूर्षु स्त्रीके मुखको देखने लगा।

एकाएक उसी उन्मत्त और विकल स्वरमें रोगिणी चिल्ला उठी—"जीजाजी!"

बन्दूककी गोलीकी तरह यह क्रन्दन युवकके मस्तिष्कमें घुस गया। उसने देखा, रोगिणीके नेत्रोंमें सदाकी लज्जा या सकोच नहीं है। उसकी आंखोंसे आँसू टपक पड़े। उसने अवरुद्ध कण्ठसे सासकी ओर देखकर कहा—"क्या पहचानती नहीं हैं?" बूढा फूटकर रो पड़ा, और बुढ़िया पछाड़ खाकर खाटपर झुक गई। उसने कहा—"मेरी बच्ची! ज़रा देख तो, ये तेरे पूज्य पतिदेव हैं।"

वैसे ही स्वरमें रोगिणीने फिर नाद किया—"जीजाजी!' इसके बाद उसका सारा शरीर थर-थर कांपने लगा, और दांत कटकटाने लगे।

युवकने घबराकर कहा—"दवा, दवा, दवा लाओ—यह क्या हो रहा है।" कुछ ही क्षणमें रोगिणी सचेत, सावधान हो गई। युवक खाटके किनारे बैठकर रोने लगा। धीरेसे, किन्तु बड़े कष्टसे, अपना सूखा लकड़ी-सा हाथ युवकके कन्धेपर रखकर उसने कहा—"रोओ मत जीजाजी।"

इस स्वरमें वह उन्माद न था, वह विकलता भी न थी। एक ठंडा—बहुत ही ठंडा—धैर्य था। बूढ़ा और बुढ़िया वहां खड़े न रह सके। युवकने देखा,

रोगिणीकी पथराई हुई आंखे चिर बिदा मांग रही है। आंखें चार होते ही उनमेंसे अश्रु-धारा बह चली। युवकके मुहसे शब्द नहीं निकला—वह अनन्त रुदन रो रहा था।

फिर वही हाहाकार गूज उठा—"जीजाजी !" घरका वातावरण कम्पायमान हो गया। युवकने अधीर होकर कहा—"इस तरह मत पुकारो प्यारी ! मैं तो तुम्हारा लुटा हुआ दास हूं। क्या तुम मुझे पहचानती भी नहीं हो ?"

रोगिणीने क्षीण स्वरमें कहा—"बड़ी मुशकिलसे पहचाना है; अब भुलावा मत दो जीजाजी !" इतना कहकर उसने अपनी बर्फके समान ठंढी और सफेद उङ्गलियोंसे युवकका हाथ छू लिया।

उसके हाथको आदरसे अपने हाथमें लेकर युवकने विकृत स्वरमें कहा—"तो क्या धर्मसे हम दोनों पति-पत्नी नहीं हैं ?"

रोगिणी पर पतिकी रोती हुई करुणा-पूर्ण बातका कुछ भी असर नहीं पड़ा। न वह रोई, न कांपी। उसने स्थिर स्वरमें कहा—"ना"

"ना ?"—यह युवकने चकित होकर पूछा।

इस बार रोगिणी रो उठी। शीघ्र ही उसकी हिचकियाँ बँध गई। कुछ देर बाद उसने कहा—"हम लोगोंका व्याह कब हुआ था ? वह एक भूल थी जो अब सुधर रही है। तुमने अमृतकलाकी जगह मेरा हाथ पकड़ लिया जीजाजी। अब मैं अपने घर जाती हूं। तुम्हारी जोड़ी सलामत रहे।"

युवकने अन्तको अधीर होकर दोनों हाथोंसे उसका मुह बन्द कर दिया और पागलकी तरह कहा "ना, ना, बस करो। यह नहीं सुना जाता। कदापि नहीं। इसके सुननेमें भी पाप है।"

रोगिणीने मुहपरसे हाथ हटाकर कहा—"इतनी शक्ति नहीं है कि तुम्हारे इतने जोर-जुल्म सहूं। अच्छा, तुम्हे क्या व्याहकी बात याद है ?"

युवकने हाय करके कहा—"वह दिन तो बिना याद किये ही सदा याद रहता है—कैसा उत्साह और जीवनका वह दिन था ?"

"फिर ? वह सुख, उत्साह और जीवन कहां गया ?"

"यही, मेरे सामने ही पड़ा है।"

युवक मुह ढाँपकर रोने लगा।

रोगिणीने गद्गद स्वरमें कहा—"यही भूल थी। तुमने भूलसे पराई वस्तु ले ली थी ; सो तृप्त होकर उसे कैसे भोग सकते थे, जीजाजी ? मैं सिर्फ़ एक दफ़े तीन दिनके लिये तुम्हारे घर गई थी। हम लोगोंने परस्पर एक दूसरेको न देखा न छुआ। हम दोनों पवित्र हैं।"

"मेरा तुम्हारा इतना ही भोग था।"

"यही तो जीजाजी ! सो हमने भोग लिया। अब असली अधिकारीको भोगने दो।"

"असली अधिकारी कौन ?"

"अमृतकला।"

"ना, यह नहीं होनेका।"

"यह अवश्य होनेका है। करो, बहस करो, मुझ मरती हुई से करो बहस।" इतना कहने पर वह एकदम बदहवास हो गई। उसकी आँखें पथरा गईं।

युवक चुप-चाप दोनों हाथोंसे मुह ढाँप कर रोने लगा। पीछेसे किसीके हाथका स्पर्श पाकर जो फिर कर देखा, तो बुढ़िया सास खड़ी है। उसने कहा—"आज एक सप्ताहसे इसने 'जीजाजी'-की धुन बाँध रक्खी है। इसीको बात रहे बेटा ! अमृतकलाको ही पैर धोने दो।" युवकने देखा, बुढ़ियाके पीछे बूढ़े ससुर भी करुणा-दृष्टिसे यही विनय कर रहे हैं।

युवकने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—"ना माँ ! मुझसे यह पाप न होगा।"

बूढ़ेने अपनी दाढ़ी हाथमें ले और आगे बढ़ युवकके आगे झुक कर कहा—"मेरी सफ़ेदीकी ओर तो देखो ! मुझे अकेला मत छोड़ो—बिटियाकी ही बात रक्खो।"

रोगिणी धीमें और उखड़े हुए स्वरमें बोली—"तो जाने दो, मैं भी नहीं मरूँगी। इसी यन्त्रणामें पड़ी-पड़ी सदा सड़ती रहूँगी। और, जो कहीं बिना मेरी इच्छाके ही मेरा दम निकल गया, तो भी मेरी आत्मा यहीं मरड़ाती रहेगी। हम सबमेंसे कोई कभी सुखी नहीं रहेगा जीजाजी !"

उसके सूखे और पीले मुखपर आंसू ढुलकने लगे। पहले हिलकियाँ आई पीछे हुचकी आने लगी, और उन्हीं हुचकियोंके साथ उसकी पसलियाँ चलने लगीं। आंखे बाहर निकल आई। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। अमृतकला 'हाय जीजी ! हाय जीजी, चिल्ला उठी।

तीनो विमूढ़ हो गये। युवकने देखा, बूढ़ा और बुढ़िया, दोनों टूटे दिलसे उसकी ओर देख रहे हैं। उसने लज्जासे मुह ढांप कर कहा—"यह जो कहेगी, वही करूंगा—पर, हाय ! ईश्वर !—" कहता हुआ युवक धरती पर बैठ गया।

रोगिणीने धीरे-धीरे आंख खोल कर जल मांगा। फिर उसने कहा—"कहां है अमृत, उसे मेरे पास लाओ।"

घर भर छान डाला गया। अमृतकला गई कहाँ ? वह छतपर, बूँदोंसे भीगती हुई, पड़ी, मुह छिपाए सिसक-सिसक कर रो रही थी। बापको देखते ही वह धाड़ मार कर रो उठी।

वृद्धने बड़े दुलारसे उसे गोदमें उठा लिया, और रोगिणीके पास लाया। वह रो रही थी, सिकुड़ रही थी, और मरी-सी जाती थी। सबने देखा, इतने ही समयमें वह बालिका पीली पड़ गई है। कमरेमें घुसते ही उसने कहा—"ना, ना, जीजी ! में मर जाऊंगी, ना-ना-ना।"

यों कहकर अपनेको छुड़ाकर वह भाग जानेके लिए छटपटाने और हाथ-पैर मारने लगी।

मांने कहा—"बेटी, जीजीकी ओर तो देख। फिर वह कहाँ देखनेको मिलेगी ? कब कुछ कहने आवेगी ?"

रोगिणीने सतेज स्वरमें "बहन ! इधर आ।" इतना कहकर बालिकाका

हाथ पकड़ लिया। एक नवीन बल उसके शरीरमें जैसे आ गया। बालिकाने रोते-रोते बदहवास होकर कहा—"मैं नहीं, मैं नहीं जीजी!"

रोगिणीने उधर न देखकर युवकसे कहा—"यहाँ आओ जीजाजी!" पत्थरकी मूर्तिकी तरह युवक वहीं खड़ा रहा। उसके सारे शरीरसे पसीना बह चला। एक बार उसने कातर दृष्टिसे स्त्रीकी ओर देखा। उस समय रोगिणीकी दृष्टि निस्पन्द धारामें असंख्य अनुनय-विनय बरसा रही थी। वह कैसी विनय थी, जो उठती जवानीकी सब कामनाओंके अन्तिम छोरसे प्रारम्भ होती थी। वह कैसा कटाक्ष था, जिसमें निराशाके सूखे बादलोंके बीच केवल एक अनुनयकी कालिमा थी। युवक न देख सका। वह वध-स्थान पर बकरेकी तरह रोगिणीके पास जा खड़ा हुआ। रोगिणी चन्द्रकलाने झट अमृतकलाका हाथ उसके हाथमें देकर कहा—"तुम दोनों आदमी सुखसे रहना।"

इसके बाद वह थकावटसे शिथिल हो गई; किन्तु क्षण-भरके बाद ही उसके मुख पर मुसकिराहट आई। उसने उत्साहसे पुकारा "जीजाजी!"

इस बार इस ध्वनिमें न वह उन्माद था, न हाहाकार! उस मध्य-रात्रिमें वह मानों विहाग रागिनीका एक स्वर था। पर यह स्त्री-हृदयका अन्तिम उकास था। उस हर्षके उद्वेगमें एकाएक उसके हृदयका स्पन्दन बन्द हो गया। मुसकिरानेको जो दांत निकले थे, वे निकले ही रह गए। मस्तानी रागिनीका जो स्वर उठा था, वह बीचहीमें टूट गया। पक्षी उड़ गया, पींजरा पड़ा रह गया।

---

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी

जन्मकाल १९४० वि०

रचनाकाल १९१५ ई०

# उसने कहा था

## १

बड़े-बड़े शहरोंके इक्के-गाड़ी वालोंकी ज़बानके कोड़ोंसे जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गये हैं उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसरके बम्बूकाट वालोंकी बोलीका मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरोंकी चौड़ी सड़कोंपर घोड़ेकी पीठको चाबुकसे धुनते हुए इक्केवाले कभी घोड़ोंकी नानीसे अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलोंकी आंखोंके न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरोंकी अगुलियोंके पोरोंको चींथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और ससार भरकी ग्लानि, निराशा, और क्षोभके अवतार बने नाककी सीध चले जाते हैं, तब अमृतसरमें उनकी बिरादरी वाले, तग, चक्करदार गलियोंमें, हर एक लड्ढीवालेके लिए ठहरकर सब्रका समुद्र उमड़ाकर

'बचो खालसाजी,' 'हटो भाई जी,' 'ठहरना भाई,' 'आने दो लालाजी,' 'हटो बाछा,' (१) कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने और खोमचे और भारेवालोंके जङ्गलमें राह खेते हैं। क्या मजाल है कि जी और साहब बिना सुने किसीको हटना पड़े। यह बात नहीं कि उनकी जीभ चलती ही नहीं, चलती है, पर मीठी छुरीकी तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीकसे नहीं हटती तो उनकी वचनावलीके ये नमूने हैं—हट जा, जीणे जोगिए; हटजा, करमा वालिए; हट जा, पुत्तां प्यारिए; बच जा, लम्बी वालिए। समष्टिमे इसके अर्थ है कि तू जीने योग्य है, तू भाग्योंवाली है, पुत्रोंको प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहिएके नीचे आना चाहती है? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालोंके बीचमें होकर एक लड़का और एक लड़की चौककी एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और इसके ढीले सुथनेसे जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामाके केश धोनेके लिए दही लेने आया था और यह रसोईके लिए बड़ियां। दूकानदार एक परदेशीसे गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ोंकी गड्डीको गिने बिना हटता न था।

'तेरे घर कहां है'?

'मगरेमें,—और तेरे?

'मांझेमें,—यहां कहां रहती है?'

'अतरसिंहकी बैठकमें, वे मेरे मामा होते हैं'

'मैं भी मामाके आया हूँ, उनका घर गुरु बाजारमें है।'

इतनेमें दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़केने मुसकराकर पूछा—'तेरी कुड़माई (२) हो गई?' इस पर लड़की कुछ आँखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

(१) बादशाह (२) मँगनी

दूसरे-तीसरे दिन सब्जीवालेके यहां, दूधवालेके यहां, अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़केने वैसे ही हँसीमें चिढ़ानेके लिए पूछा तो लड़की, लड़केकी सम्भावनाके विरुद्ध बोली—'हाँ हो गई।'

'कब ?'

'कल ; देखते नहीं यह रेशमसे कढ़ा हुआ 'सालू' (१)। लड़की भाग गई। लड़केने घरकी राह ली। रास्तेमें एक लड़केको मोरीमें ढकेल दिया, एक छाबड़ीवालेकी दिन भरकी कमाई खोई, एक कुत्ते पर पत्थर मारा और एक गोभीवालेके ठेलेमें दूध उंडेल दिया। सामने नहा कर आती हुई किसी वैष्णवीसे टकराकर अन्धेकी उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुंचा।

२

'रामराम, यह भी कोई लड़ाई है ! दिन-रात खन्दकोंमें बैठे हड्डियां अकड़ गईं। लुधियानेसे दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ़ ऊपरसे। पिंडलियों-तक कीचड़में धँसे हुए हैं। गनीम कहीं दिखाता नहीं ;—घण्टे दो घण्टेमें कान-के पर्दे फाड़ने वाले धमाकेके साथ सारी खन्दक हिल जाती है और सौ-सौ गज़ धरती उछल पड़ती है। इस ग़ैबी गोलेसे बचे तो कोई लड़े। नगरकोटका ज़लज़ला सुना था, यहां दिनमें पचीस ज़लज़ले होते हैं। जो कहीं खन्दकसे बाहर साफा या कुहनी निकल गई तो चटाकसे गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टीमें लेटे हुए या घासकी पत्तियोंमें छिपे रहते हैं।'

'लहनासिंह और तीन दिन हैं। चार तो खन्दकमें बिता ही दिए। परसों "रिलीफ" आ जायगी और फिर सात दिनकी छुट्टी। अपने हाथों झटका (२) करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरङ्गी (३) मेमके बाग़में—मखमल-

(१) ओढ़नी। (२) बकरा मारना (३) फ्रैंच।

का-सा हरा घास है। फल और दूधकी वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती। कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्कको बचाने आये हो।'

'चार दिन तक पलक नहीं झपी। बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो सगीन चढ़ा कर मार्चका हुक्म मिल जाय। फिर सात जरमनोंको अकेला मार कर न लौटूं तो मुझे दरबार साहबकी देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहींके. कलोंके घोड़े—सगीन देखते ही मुह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरेमें तीस-तीस मनका गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन नहीं छोड़ा था। पीछे जनरल साहबने हट आनेका कमान दिया, नहीं तो—'

'नहीं तो सीधे बर्लिन पहुंच जाते। क्यों?' सूबेदार हजारासिंहने मुसकरा कर कहा, 'लड़ाईके मामले जमादार या नायकके चलाये नहीं चलते। बड़े अफ़सर दूरकी सोचते हैं। तीन सौ मीलका सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा?'

'सूबेदारजी, सच है, लहनासिंह बोला, 'पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियोंमें तो जाड़ा धस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाईमें दोनों तरफ़से चम्बेकी बावलियोंके-से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आजाय।'

'उदमी, (१) उठ, सिगड़ीमें कोले डाल। वज़ीरा, तुम चार जने बालटियां लेकर खाईका पानी बाहर फेंको। महासिंह शाम हो गई है, खाईके दरवाज़ेका पहरा बदला दे।' यह कहते हुए सूबेदार सारी ख़न्दकमें चक्कर लगाने लगे।

वज़ीरासिंह पलटनका विदूषक था। बाल्टीमें गँदला पानी भर कर खाईके बाहर फेंकता हुआ बोला—'मैं पाधा बन गया हूं। करो जर्मनीके बादशाहका तर्पण!' इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासीके बादल फट गये।

लहनासिंहने दूसरी बाल्टी भर कर उसके हाथमें देकर कहा—'अपनी बाड़ीके खरबूजोंमें पानी दो। ऐसा खादका पानी पंजाब भरमें नहीं मिलेगा।'

(१) उधमी

'हां, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाईके बाद सरकारसे दस घुमा (१) ज़मीन यहां मांग लूगा और फलोंके बूटे (२) लगाऊंगा।'

'लाड़ी होरांको भी यहां बुला लोगे? या वही दूध पिलानेवाली फरङ्गी मेम—'

'चुपकर। यहां वालोंको शरम नहीं।'

'देस-देसकी चाल है। आजतक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाखू नहीं पीते। वह सिगरेट देनेमें हठ करती है, ओठोंमें लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूं तो समझती है कि राजा बुरा मान गया, अब मेरे मुलकके लिये लड़ेगा नहीं।'

'अच्छा, अब बोधसिह कैसा है?'

'अच्छा है।'

'जैसे मैं जानता ही न होऊं। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे उढ़ाते हो और आप सिगड़ीके सहारे गुजर करते हो। उसके पहरेपर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ीके तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़में पड़े रहते हो। कहीं तुम न मांदे पड़ जाना। जाड़ा क्या है मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालोंको मुरब्बे (३) नहीं मिला करते।'

'मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेलकी खड्डके किनारे मरूंगा। भाई कीरत-सिहकी गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथके लगाये हुए आंगनके आम-के पेड़की छाया होगी।'

वज़ीरासिहने त्योरी चढ़ाकर कहा—क्या मरने-मरानेकी बात लगाई है?

मेरे जमनी और तुरक! हां भाइयो कैसे—

दिल्ली शहरते पिशौर नु जादिए,
कर लेणा लौंगो दा बपार मड़िये;
कर लेणा नाड़ेदा सौदा अड़िए—
(ओय) लाणा चटका कदुए नु।

---

(१) जमीनकी नाप (२) पेड़। (३) नई नहरोंके पास वर्ग-भूमि।

कद्दू बणाया वे मजेदार गोरिये
हुण लाणा चटका कदुए नु॥ (१)

कौन जानता था कि दाढ़ियोंवाले, घरबारी सिख ऐसा लुच्चोंका गीत गायेंगे, पर सारी खन्दक इस गीतसे गूंज उठी और सिपाही फिर ताजे होगये, मानों चार दिनसे सोते और मौज ही करते रहे हों।

## ३

दोपहर रात गई है। अन्धेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधसिंह खाली बिसकुटोंके तीन टिनोंपर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिंहके दो कम्बल और एक बरानकोट (२) ओढकर सो रहा है। लहनासिंह पहरेपर खड़ा हुआ है। एक आंख खाईके मुख पर है और एक बोधासिंहके दुबले शरीर पर। बोधसिंह कराहा।

'क्यों बोधसिंह भाई, क्या है?'

'पानी पिला दो।'

लहनासिंहने कटोरा उसके मुहसे लगाकर पूछा—'कहो कैसे हो?' पानी पीकर बोधा बोला—'कंपनी (३) छूट रही है। रोम-रोममें तार दौड़ रहे हैं। दांत बज रहे हैं।'

'अच्छा, मेरी जरसी पहनलो?'

'और तुम?'

'मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गर्मी लगती है; पसीना आ रहा है।'

'ना, मैं नहीं पहनता, चार दिनसे तुम मेरे लिए—'हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायतसे मेमें बुन

---

(१) अरी दिल्ली शहरसे पेशावरको जानेवाली, लौंगोंका व्यापार कर और इजारबन्दका सौदा करले। जीभ चटचटाकर कद्दू खाना है। गोरी कद्दू मजेदार बना है। अब चटचटा कर उसे खाना है।

(२) ओवर कोट (३) कपकपी।

बुन कर भेज रही हैं। गुरू उनका भला करे।' यों कह कर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

'सच कहते हो?'

'और नहीं झूठ?' यों कह कर नाही करते बोधाको उसने ज़बरदस्ती जरसी पहना दी और आप ख़ाकी कोट और ज़ीनका कुरता भर पहन कर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेमकी जरसीकी कथा केवल कथा थी।

आधा घण्टा बीता। इतनेमें खाईके मुहसे आवाज़ आई 'सूबेदार हज़ारासिंह!'

'कौन लपटन साहब? हुकुम हुज़ूर' कह कर सूबेदार तनकर फौजी सलाम करके सामने हुआ।'

'देखो, इसी समय धावा करना होगा। मील भरकी दूरी पर पूरबके कोनेमें एक जर्मन खाई है। उसमें पचाससे ज़ियादह जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ोंके नीचे-नीचे दो खेत काट कर रास्ता है। तीन चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूं। तुम यहाँ दस आदमी छोड़कर सबको साथ ले उनसे जा मिलो। खन्दक छीन कर वहीं, जबतक दूसरा हुक्म न मिले, डटे रहो। हम यहाँ रहेगा।'

'जो हुक्म।'

चुपचाप सब तैय्यार हो गये। बोधा भी कम्बल उतार कर चलने लगा। तब लहनासिंहने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ तो बोधाके बाप सूबेदारने उंगलीसे बोधाकी ओर इशारा किया। लहनासिंह समझ कर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहे, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा-बुझाकर सूबेदारने मार्च किया। लपटन साहब लहनाको सिगड़ीके पास मुह फेर कर खड़े हो गये और जेबसे सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट बाद उन्होंने लहनाकी ओर हाथ बढ़ाकर कहा—

'लो तुम भी पियो'

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझ गया। मुहका भाव छिपाकर बोला—'लाओ, साहब।' हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ीके उजालेमें साहबका मुह देखा। बाल देखे। तब उसका माथा ठनका। लपटन साहबके पट्टियोंवाले बाल एक दिनमें कहां उड़ गए और उनकी जगह कैदियोंसे कटे हुए बाल कहांसे आये?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवानेका मौक़ा मिल गया है? लहनासिंहने जाचना चाहा। लपटन साहब पांच वर्षसे उसके रेजिमेंटमें थे।

'क्यों साहब, हमलोग हिन्दुस्तान कब जायँगे?'

'लड़ाई ख़त्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं?'

"नहीं साहब, शिकारके वे मजे यहाँ कहां? याद है, पारसाल नकली लड़ाईके पीछे हम आप जगाधरीके ज़िलेमें शिकार करने गये थे—'हाँ, हाँ'—वहीं जब आप खोते ?) पर सवार थे और आपका ख़ानसामा अब्दुल्ला रास्तेके एक मन्दिरमें जल चढ़ानेको रह गया था? 'बेशक, पाजी कहीं का'—सामनेसे वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कन्धेमें लगी और पुट्ठेमें निकली। ऐसे अफ़सरके साथ शिकार खेलनेमें मजा है। क्यों साहब, शिमलेसे तय्यार होकर उस नीलगायका सिर आ गया था न? आपने कहा था कि रजमण्टकी मैसमें लगायेंगे। 'हां, पर मैंने वह विलायत भेज दिया'—ऐसे बड़े-बड़े सींग। दो दो फुटके तो होंगे?"

"हां, लहनासिंह, दो फुट चार इञ्चके थे। तुमने सिगरेट नहीं पिया?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ"—कह कर लहनासिंह ख़न्दकमें घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिए।

अँधेरेमें किसी सोनेवालेसे वह टकराया।

'कौन? वज़ीरासिंह?'

'हाँ, क्यों लहना? क्या, क़यामत आ गई? जरा तो आँख लगने दी होती?'

'होशमें आओ। क़यामत आई और लपटन साहबकी वर्दी पहन कर आई है।'

'क्यों?'

'लपटन साहब या तो मारे गये या क़ैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहन कर यह कोई जर्मन आया है। सूबेदारने इसका मुह नहीं देखा। मैंने देखा और बातें की हैं। सोहरा (१) साफ़ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू। और मुझे पीनेको सिगरेट दिया है?

'तो अब?'

'अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार होरां कीचड़में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उनपर खुलेमें धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टनके पैरोंके निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत न गये होंगे। सूबेदारसे कहो कि एकदम लौट आवें। खन्दककी बात झूठ है। चले जाओ, खन्दकके पीछेसे निकल जाओ। पत्ता तक न खुड़के। देर मत करो।

'हुकुम तो यह है कि यहीं—'

'ऐसी तैसी हुकुम की! मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफ़सर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहबकी खबर लेता हूँ।' 'पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।'

---

(१) ससुरा (गाली)

'आठ नहीं, दस लाख। एक एक अकालिया सिख सवा लाखके बराबर होता है। चले जाओ।'

लौट कर खाईके मुहाने पर लहनासिंह दीवारसे चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहबने जेबसे बेलके बराबर तीन गोले निकाले। तीनोंको जगह जगह खन्दककी दीवारोंमें घुसेड़ दिया और तीनोंमें एक तार सा बाँध दिया। तारके आगे सूतकी एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ीके पास रखा। बाहरकी तरफ़ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजलीकी तरह दोनों हाथोंसे उल्टी बन्दूकको उठाकर लहनासिंहने साहबकी कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाकेके साथ साहबके हाथसे दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंहने एक कुन्दा साहबकी गर्दन पर मारा और साहब "आंख! (१) मीन गौट्ट" कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंहने तीनों गोले बीन कर खन्दकके बाहर फेंके और साहबको घसीटकर सिगड़ीके पास लिटाया। जेबोंकी तलाशी ली। तीन-चार लिफ़ाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेबके हवाले किया।

साहबकी मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—'क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरीके जिलेमें नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इन्चके सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान खानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं। पर यह तो कहो, ऐसी साफ़ उर्दू कहांसे सीख आये? हमारे लपटन साहब तो बिना 'डैम' के पांच लफ़्ज भी नहीं बोला करते थे।'

लहनाने पतलूनकी जेबोंकी तलाशी नहीं ली थी। साहबने, मानों जाड़ेसे बचानेके लिए, दोनों हाथ जेबोंमें डाले।

लहनासिंह कहता गया—'चालाक तो बड़े हो पर मांझेका लहना इतने बरस लपटन साहबके साथ रहा है। उसे चकमा देनेके लिए चार आंखें चाहिए।

(१) हाय! मेरे राम (जर्मन)

तीन महीने हुए एक तुरकी मौलवी मेरे गांवमें आया था। औरतोंको बच्चे होनेकी तावीज़ बांटता था और बच्चोंको दवाई देता था। चौधरीके बड़के नीचे मजा ( १ ) बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था जर्मनी वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़कर उसमेंसे विमान चलानेकी विद्या जान गये हैं। गौको नहीं मारते। हिन्दुस्तानमें आ जायगे तो गोहत्या बन्द कर देंगे। मण्डीके बनियोंको बहकाता था कि डाकखानेसे रुपये निकाल लो; सरकारका राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्लाजीकी दाढ़ी मूड़ दी थी। और गाँवसे बाहर निकाल कर कहा था कि जो मेरे गांवमें अब पैर रक्खा तो—'

साहबकी जेबमेंसे पिस्तौल चला और लहनाकी जांघमें गोली लगी। इधर लहनाकी हेनरी मार्टिनीके दो फायरोंने साहबकी कपाल-क्रिया कर दी। धड़ाका सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया "क्या है?"

लहनासिहने उसे तो यह कह कर सुला दिया कि 'एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया' और, औरोंसे सब हाल कह दिया। सब बन्दूके लेकर तैयार हो गये। लहनाने साफ़ा फ़ाड़ कर घावके दोनों तरफ पट्टियां कस कर बाँधीं। घाव मांसमें ही था। पट्टियोंके कसनेसे लहू निकलना बन्द हो गया।

इतनेमें सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाईमें घुस पड़े। सिक्खोंके बन्दूकोंकी बाढ़ने पहले धावेको रोका। दूसरेको रोका। पर यहां थे आठ ( लहनासिह तक-तक कर मार रहा था—वह खड़ा था, और, और लेटे हुए थे ) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयोंके शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुसे आते थे। थोड़ेसे मिनिटोंमें वे—

अचानक आवाज़ आई "वाह गुरुजीकी फतह! वाह गुरुजीका ख़ालसा!!" और धड़ाधड़ बन्दूकोंके फ़ायर जर्मनोंकी पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौक़े पर

---

( १ ) खटिया

जर्मन दो चक्कीके पाटोंके बीचमें आ गये। पीछेसे सूबेदार हजारासिंहके जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंहके साथियोंके संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालोंने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया।

एक किलकारी और—"अकाल सिक्खां दी फौज आई! वाह गुरुजी दी फतह! वाह गुरुजी दा खालसा! सत श्री अकालपुरुख!!!" और लड़ाई खतम हो गई। तिरेसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खोंमें पन्द्रहके प्राण गये। सूबेदारके दाहने कन्धेमेंसे गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंहकी पसलीमें एक गोली लगी। उसने घावको खन्दककी गीली मट्टीसे पूर लिया और बाकीका साफा कसकर कमरबन्दकी तरह लपेट लिया। किसीको खबर न हुई कि लहनाको दूसरा घाव—भारी घाव—लगा है।

लड़ाईके समय चांद निकल आया था, ऐसा चांद, जिसके प्रकाशसे संस्कृत-कवियोंका दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है। और हवा ऐसी चल रही थी जैसी कि बाणभट्टकी भाषामें 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन भर फ्रांसकी भूमि मेरे बूटोंसे चिपक रही थी जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदारके पीछे गया था। सूबेदार लहनासिंहसे सारा हाल सुन और कागजात पाकर उसकी तुरत-बुद्धिको सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाईकी आवाज तीन मील दाहनी ओरकी खाईवालोंने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहांसे झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोनेकी गाड़ियां चलीं, जो कोई डेढ़ घण्टेके अन्दर-अन्दर आ पहुंचीं। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहां पहुंच जायंगे, इस लिए मामूली पट्टी बांधकर एक गाड़ीमें घायल लिटाये गये और दूसरीमें लाशें रक्खी गई। सूबेदारने लहनासिंहकी जांघमें पट्टी बंधवानी चाही। प[र] उसने यह कह कर टाल दिया कि थोड़ा घाव है सबेरे देखा जायगा। बोधसि[ंह] ज्वरमें बर्रा रहा था। वह गाड़ीमें लिटाया गया। लहनाको छोड़कर सूबेदा[र] जाते नहीं थे। यह देख लहनाने कहा—

"तुम्हें बोधाकी कसम है और सूबेदारनीजीकी सौगन्द है जो इस गाड़ीमें न चले जाओ।"

"और तुम?"

"मेरे लिए वहाँ पहुंच कर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुर्दोंके लिए भी तो गाड़ियां आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं है। देखते नहीं मैं खड़ा हूं? वज़ीरासिंह मेरे पास है ही।"

"अच्छा पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होरांको चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना। और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उनने कहा था वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियां चल पड़ी थीं। सूबेदारने चढ़ते-चढ़ते लहनाका हाथ पकड़ कर कहा 'तैने मेरे और बोधाके प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनीको तू ही कह देना। उसने क्या कहा था?'

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा वह लिख देना और कह भी देना।"

गाड़ीके जाते ही लहना लेट गया। 'वजीरा पानी पिला दे और मेरा कमरबन्द खोल दे। तर हो रहा है।'

## ५

मृत्युके कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म-भरकी घटनायें एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्योंके रङ्ग साफ होते हैं; समयकी धुन्ध बिलकुल उनपरसे हट जाती है।

लहनासिंह बारह वर्षका है। अमृतसरमें मामाके यहाँ आया हुआ है। दही वालेके यहाँ, सब्जीवालेके यहाँ, हर कहीं, उसे एक आठ वर्षकी लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है तेरी कुड़माई हो गई? तब 'धत्' कहकर

वह भग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा "हां, कल हो गई, देखते नही यह रेशमके फूलोंवाला सालू ?" सुनते ही लहनासिहको दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वज़ीरासिह, पानी पिला दे"

पचीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिह नं० ७७ रैफल्समें जमादार हो गया है। उस आठ वर्षकी कन्याका ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नही। सात दिनकी छुट्टी लेकर जमीनके मुकद्दमेकी पैरवी करने वह अपने घर गया। वहां रेजिमेंटके अफसरकी चिठ्ठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिहकी चिठ्ठी मिली कि मैं और बोधासिह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदारका गांव रास्तेमें पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिह सूबेदारके यहां पहुंचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार बेढ़े (१) मेसे निकल कर आया। बोला—लहना, सूबेदारनी तुमको जानती है। बुलाती है। जा मिल आ। लहनासिह भीतर पहुंचा। सूबेदारनी मुझे जानती है ? कबसे ? रेजिमेंटके क्वार्टरोंमें तो कभी सूबेदारके घरके लोग रहे नही। दरवाजे पर जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिह चुप।

'मुझे पहचाना ?'

'नहीं'।

"तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई—देखते नही रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसरमें—"

भावोंकी टकराहटसे मूर्छा खुली। करवट बदली। पसलीका घाव बह निकला।

---

(१) आंगने

'वज़ीरा, पानी पिला'—'उसने कहा था'।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

स्वप्न चल रहा है। सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरेको आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूं। मेरे तो भाग फूट गये। सरकारने बहादुरीका खिताब दिया है, लायलपुरमें जमीन दी है, आज नमक हलालीका मौक़ा आया है। पर सरकारने हम तीमियों (१) की एक घँघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदारजीके साथ चली जाती? एक बेटा है। फ़ौजमें भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी। "अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग! तुम्हें याद है, एक दिन टांगेवालेका घोड़ा दहीवालेकी दूकानके पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़ेकी लातोंमें चले गये और मुझे उठा कर दूकानके तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनोंको बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आंचर पसारती हूं।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओबरी (२) में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

'वजीरासिंह, पानी पिला,—'उसने कहा था'

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

लहनाका सिर अपनी गोदमें रक्खे वज़ीरासिंह बैठा है। जब मांगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—

'कौन? कीरतसिंह?'

वज़ीराने कुछ समझकर कहा, 'हाँ'।

'भाइया, मुझे और ऊँचा करले। अपने पट्ट (३) पर मेरा सिर रख ले।'

वज़ीराने वैसा ही किया।

'हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस। अबके हाड़ (४) में यह आम

(१) स्त्रियों (२) अन्दरका घर (३) जांघ (४) आषाढ़

खूब फलैगा। चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीनेमें मैने इसे लगाया था।'

बज़ीरासिहके आँसू टप-टप टपक रहे थे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

कुछ दिन पीछे लोगोंने अखबारोंमें पढ़ा—फ्रान्स और बेलजियम—६८वीं सूची—मैदानमें घावोंसे मरा—नं० ७७, सिख राइफल्स जमादार लहनासिह।



## पं० गोविन्दवल्लभ पन्त

जन्मकाल १८९९ ई०  रचनाकाल १९१४ ई०

# जूठा आम

१

माया केवल हँस देती थी। मेरे प्रश्नोंका मुझे सदा यही उत्तर मिलता था।

जब वह मेरे सामनेसे चली जाती थी तो मैं उसके हास्यमें अपने अर्थको टटोलता था। भ्रान्त भिखारी भी उस दिनमें, जो उसके लिए रातके समान है, क्या इसी तरह अपना पथ खोजता होगा?

मैं एक भग्न कुटीरमें रहता था, सामने ही उसकी सुविशाल अट्टालिका थी। उस प्रासादकी सर्वोच्च मंजिलके बरामदेमें चिकें पड़ी हुई थीं। शायद माया अपने दो हाथोंसे कभी-कभी एकाध तीलियाँ तोड़ दिया करती थीं। चिकका एक कोना खुल गया था। उसी कोनेसे, उसीकी लापरवाहीसे एक दिन मैंने उसे देख लिया। वह एक दिन वहाँ पर फिर आई, मैंने फिर देखा। मैं उसे पहचान गया, वह मुझे पहचान गई।

इसके बाद वह वहां पर नित्य कुछ देरके लिए आती थी, मैं बड़ी देर तक प्रतीक्षा करता था, प्रतीक्षा कभी विफल न गई।

मैंने जितनी मर्तबा उसके स्वर्गीय रूपके दर्शन किए उतनी मर्तबा उसमें कुछ-न-कुछ नवीनता जरूर पाई, उसका विश्वविमोहन हास्य मुझे अपने नामकी तरह खूब अच्छी तरह याद है, किन्तु मुझे याद क्या, मालूम भी नहीं उसका कण्ठ कितना करुण और कोमल था।

मैं उसकी वाणीको सुननेके लिए बड़ा ही उत्सुक था, किन्तु वह पाषाण—नहीं, नहीं, सुवर्णकी प्रतिमा—कभी बोली ही नहीं। मैंने बड़े-बड़े उपाय किए पर, उसके अधरोंसे मुस्कान निकली, शब्द नहीं निकले; चित्र देखा, संगीत नहीं सुना, भाव मिला, अर्थ नहीं पाया; मेरे नेत्र कृतकृत्य हुए, कान अतृप्त ही रहे। कभी-कभी मेरे कर्णद्वय मुझसे कानाफूसी कर कहने लगे—"तू बहरा तो नहीं है?"

## २

जो भी हो, लोग कहते हैं—जीवनकी सबसे प्रिय वस्तु, सबसे मनोहर घटना अच्छी तरह याद रहती है पर मुझे वह भयानक सन्ध्या अभी-की-तरह खूब याद है।

आह! वह ग्रीष्मकी सन्ध्या थी, तापतप्त भूमिपर पानी छिड़ककर मैं भोजन बना रहा था। अचानक सूर्योदय हुआ, चिकके पास मुझे माया दिखाई दी। वह आम चूस रही थी। आम मधुर था, उससे हजार गुना माधुर्य मायाकी मुसक्यानमें था। होठोंमें ऐसी माधुरी रखकर भी माया न जानें क्यों आम चूस रही थी?

मायाने आम चूस कर उसके छिलके दूर फेंक दिए। वह जानती थी, यदि उसके जूठे आमका एक भी छिलका मेरी रसोईमें गिर जाय तो वह अपवित्र हो जायगी। मैं समझता था यदि उसका एक भी जूठा छिलका मेरी रसोईमें गिर जाय तो वह पवित्र हो जायगी।

माया गुठली चूस रही थी। अचानक! गुठली उसके मुहसे फिसल गई। मायाको एकाएक यह ध्यान हुआ कि वह गुठली मेरी रसोईमें गिरेगी। वह उसको सम्हालनेको बढ़ी, गुठली गिरी, उसीके साथ माया भी! मायाकी असावधानीसे गुठली गिरी और विश्वकी असावधानीसे माया। ससार! क्या माया अब तेरे किसी कामकी न थी। उस कलिकाका अभी विकाश भी कहां हुआ था मूढ़!

गुठली और माया मेरे समीप कठोर भूमिपर गिर पड़े! मेरे ऊपर वज्र गिर पड़ा। मैंने देखा, माया मूर्छित हो गई थी।

क्षण भरमें ही उसके माता-पिता वहांपर दौड़े आए। पखा करने पर मायाने आंखे खोलीं, सबके प्राणमें प्राण आए। मायाने अधर खोले, मुझे जीवन मिला, अधरोंमें कपन हुआ, मायाने कहा—"गुठली जूठी नहीं थी।" इसके बाद मायाने होंठ बन्द कर लिए, आंखे बन्द कर लीं। फिर माया कुछ न बोली, उसके वह स्वर अन्तिम हुए। माया सदाको चली गई।

चारों ओरसे "गुठली जूठी नहीं थी" यही प्रतिध्वनित हो रहा था। जड़-जीव एक-एक कर मुझसे कहने लगे—"गुठली जूठी नहीं है।" सारा ससार एक स्वरसे कहने लगा—"गुठली जूठी नहीं है।"

माया फिर कहीं नहीं दिखाई दी। बहुत दिन तक उसकी खोजमें इधर-उधर पागलोंकी तरह घूमता रहा, कहीं उसका कोई निशान नहीं मिला।

ससारमें जब मेरे लिए कोई आकर्षण नहीं रहा, तो मैं उसका त्याग-कर निर्जन वनमें रहने लगा। मायाकी वह जूठी गुठली मेरी एक मात्र सगिनी थी। मैंने मायाके पानेकी चेष्टा की, नहीं मिली। शान्ति खोजी, वह भी नहीं मिली।

३

एक दिन श्याम मेघ, आकाशसे वारिसिचन कर रहे थे। मैंने अपना

समस्त मोह त्याग कर वह गुठली जमीनमें बो दी। कुछ दिन बाद अंकुर निकल आया। मैंने अनवरत परिश्रम कर उस अंकुरकी रक्षा की। कुछ दिनमें वह अंकुर एक विशाल वृक्षमें परिणत हो गया।

अचानक एक मधु वसन्तमें उसमें बौर निकल आए। उस समय मैंने देखा, मानों माया अपने हास्यको लेकर आ गई है। कोकिला उसमें विश्राम कर कूकने लगी, मानों वही मायाका स्वर था। प्रत्येक बौरमें आम निकल आए, मानों माया कहने लगी आम जूठा नहीं है।

उसी वृक्षके नीचे अब मेरी कुटी है। उस वृक्षके ऊपर मैंने पक्षियोंको घोसला बनाने, आराम करनेकी आज्ञा, दे रक्खी है। नीचे, छायामें मैं प्रत्येक तापतप्त बटोहीसे कुछ देर आराम करनेका अनुरोध करता हूँ।

हर साल आमकी फसलमें प्रत्येक पथिकको मैं एक-एक आम देता हूँ। जिस समय वे उसे खाते हैं, समझता हूँ आम जूठा नहीं है।

सालमें एक बार आम्रमंजरियोंकी आड़से झांक कर माया मुझे दर्शन देती है। उससे कहता हूं "माया!"

वह लज्जित हो जाती है और पत्तोंके घूंघटको अधिक खींच लेती है। मैं कहता हूँ—"क्यों माया, इतनी लज्जा क्यों?"

वह कहती है—"अब मेरा विवाह हो गया"



# मिलन-मुहूर्त

## १

वासवदत्ताका सौन्दर्य, पूर्ण चन्द्रसे भी अधिक पूर्ण था। उसकी देह कमलसे अधिक कोमल थी। उसकी वाणी वीणाका तिरस्कार करती थी। उसकी लाज भरी आंखे हरिणीको लजा सकती थीं। स्वर्गके सौन्दर्यने अपनी रुचिके अनुसार, अपने ही कोमल हाथोंसे उस सजीव स्वर्ण-प्रतिमाको निर्मित किया था। ऐसी भुवनमोहिनी शोभा—ऐसी रुचिर रूपराशि देकर भी क्या विधाताको उसे वेश्या बनाना उचित था? कीचड़में कमल और कांटोंमें फूल खिलाने वाला ही जाने।

उस दिन बाल वसन्तके सुषमाप्रपूर्ण प्रभातमें जब कोयलके करुण गानको छातीसे लगाए मलय-सुरभि अपने मनसे बह रही थी, एक श्रमण वासवदत्ता-की सुविशाल अट्टालिकाके द्वार पर भिक्षाके लिए आ खड़ा हुआ। अचानक

वासवदत्ताकी दृष्टि उस बौद्ध भिक्षुके ऊपर पड़ी। उसने उसे एक बार देखा; सौ बार देखा—देखती रही।

उसका नाम उपगुप्त था। सांसारिक दृष्टिसे वह भिखारी था किन्तु स्वर्गीय दृष्टिसे वही राजराजेश्वर था। मनसे बढ़कर श्रेष्ठ और सुस्निग्ध राजा कोई नहीं है। उपगुप्तने अपने उसी मनके ऊपर विजय प्राप्त की थी। वह राजराजेश्वर था, समस्त इन्द्रियां उसकी प्रजा थीं।

विश्वकी चञ्चलता और अशांतिका उसे पूरा पता था, उसकी आंखें अचंचल और शांत थीं। स्वर्गीय दिव्य आभासे उसका मुखमंडल भासमान था। काषाय वस्त्र उसे अपूर्व शोभा प्रदान कर रहे थे।

संसारको अपने सौन्दर्य्यसे पराजित करनेवाली वासवदत्ता उस भिक्षुके समीप हार गई, उसके सौन्दर्य्य पर मुग्ध हो गई। उसका कौषेय अंचल खिसक पड़ा, कबरी शिथिल हो गई, उसमें ग्रथित पुष्पराशि मुक्त होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

उसने उपगुप्तके समीप आकर कहा—"भिक्षु, भिक्षा-पात्र आगे बढ़ाओ।"

भिक्षा-पात्र आगे बढाकर हठात् उपगुप्तने आश्चर्यसे कहा—"किन्तु तुम्हारे दोनों हाथ रिक्त हैं, यह मुझे क्या दे सकेंगे?"

वासवदत्ता—"यह तुम्हें वह वस्तु देंगे जो तुम्हें इस संसारमें कहीं नहीं मिली, तथा जो इन हाथोंने आज तक किसी औरको प्रदान नहीं की।"

उपगुप्त—"अर्थात्?"

वासवदत्ता—"ये हाथ रिक्त नहीं हैं।"

उपगुप्त—"मैं इन स्वर्णाभूषणोंसे क्या करूंगा।"

वासवदत्ता—"मैं इन स्वर्णाभूषणोंकी बात नहीं कहती। अबोध युवक! ये हाथ रिक्त नहीं हैं। ये प्रेमके आलिंगनसे परिपूर्ण हैं। मैं वही आलिंगन तुम्हें दूंगी। कल्पना करो भिक्षु! जिस वासवदत्ताकी छाया-स्पर्शके लिए बड़े-बड़े राजराजेश्वर व्याकुल रहते हैं वह तुम्हें प्रेमका आलिंगन देगी।"

उपगुप्तके मुखके भावोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। वासवदत्ताने फिर कहा—"भिक्षा-पात्र आगे बढ़ाओ। मैं तुम्हें भिक्षामें अपना हृदय दूंगी।"

उपगुप्तने पूछा—"इसका अर्थ ?"

वासवदत्ता—"इसका अर्थ यही है, कि यह तुम्हारी सुकुमार देह भिक्षा-वृत्तिके लिए नहीं है। यह अनुपम सौन्दर्य्य-सुमन संसारके स्पर्शसे दूर वनपथ-में मुरझानेके लिए नहीं है। आओ भिक्षु, मेरे सदनमें आओ। मैं विश्वकी स्वामिनी हूं, तुम्हारी दासी बनूंगी।"

उपगुप्तके वासनाके प्रभावसे मुक्त मुख-मंडलमें हँसीकी एक क्षीण रेखा दिखाई दी। वह चुप रहा।

वासवदत्ताने विकल होकर कहा—"उत्तर दो भिक्षु।"

उपगुप्तने उत्तर दिया—"किन्तु कई कारणोंसे अभी समय नहीं है।"

वासवदत्ता—"तो कब।"

उपगुप्त—"फिर कुछ दिन बाद आऊंगा।"

"फिर कुछ दिन बाद आऊंगा," वासवदत्ता मन-ही-मन सोचने लगी—"रमणीके रूपका यह अपमान! एक सामान्य भिक्षु उसके सौन्दर्य्यका तिरस्कार कर सका! देखा जायगा। मैं उस दिनकी प्रतीक्षा करूंगी।"

उपगुप्त द्रुत गतिसे सङ्घकी ओर चला गया। वासवदत्ता सुवर्ण-मूर्तिकी तरह उसे नीरव-निश्चल होकर देखती रही।

२

अपने छोटेसे जीवनकी एक झलक दिखाकर सध्या तीव्र गतिसे चली गई थी। शारदीय शुभ्राकाशकी प्राचीमें उदयोन्मुख चन्द्रमाकी किरणें रूपोज्ज्वल चांदनी बिछा रही थीं!

एक सघन वनके चरणोंको धोती हुई कलकल-रव-रता गंगा बह रही थी। दिनभरके भिक्षा-भारसे युक्त उपगुप्त उस वनसे होकर अपने मठको लौट रहा था।

उस भयंकर हिंस्र पशु, सिंहके ऊपर करुणाके अवतार भगवान बुद्धके उपदेशका कुछ भी असर नहीं हुआ, उसकी राक्षसी प्रवृत्ति परिवर्तित नहीं हुई। उपगुप्तको आते देखकर सिंह बड़े वेगसे उसके ऊपर झपटनेको तैय्यार हुआ। भिक्षुने यह देखकर अपना मस्तक झुका दिया।

एक ओर सिंह उपगुप्तको भक्षण करनेके लिए तैयार है, दूसरी ओर उपगुप्त सिंहके लिए भोजन बनकर खड़ा है।

पास ही एक घनी झाड़ी थी, घनी झाड़ीके हृदयमें एक छिद्र था। वसन्तकी पूर्ण प्रफुल्लतामें यथाशक्ति प्रयास करनेसे भी पत्तियां उसे भर नहीं सकी थीं। उस छिद्रसे एक व्याधने वह भयानक दृश्य देख लिया।

ज्योंही सिंह भिक्षुके ऊपर झपटनेको हुआ त्योंही व्याधने अपने धनुषमें तीर चढ़ा लिया और सामनेको झाड़ीका वक्ष विदीर्ण कर सिंहको धराशायी कर दिया।

उपगुप्तने चकित होकर चारों ओर देखा। अपने कार्य्यकी सफलतापर मुसक्याता हुआ धनुषधारी व्याध उसकी ओर आ रहा था।

भिक्षुने दुःखभरे शब्दोंमें व्याधसे कहा—"हाय! तुमने यह क्या किया? सिंहने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? अकारण निरपराधकी हत्या क्यों की?"

व्याधने मनही मन सोचा—'सिंह और निरपराध!'

अपने दयाहीन कठोर जीवनमें व्याधने पहले-पहल यहीं पर करुणादेवीके दर्शन किए। वह चित्रांकित मूर्त्तिकी तरह कुछ देर खड़ा रहा। उपगुप्तने करुणासे परिप्लावित दृष्टि उसके ऊपर निक्षेप की। आंखोंने देखा, हृदयने हृदयका सन्देश समझ लिया।

व्याधके दोनों हाथ हिले। उसने कंधेसे तूणीर निकाल कर गङ्गाके जलमें फेंक दिया—उसकी निर्दयता गङ्गामें डूब गई। अपने बलिष्ठ हाथोंसे धनुषको दो टूक कर पृथ्वी पर पटक दिया—उसकी कठोरता अन्तिम सांस लेने लगी। इसके बाद व्याधने भिक्षुके चरणोंमें गिर कर कहा—"देव! यही मेरी अन्तिम हत्या है!'

उपगुप्तने प्रसन्न मुखसे आशीर्वाद दिया। व्याध अपने नवीन संसारमें प्रवेश करनेके लिए चला गया। करुणा उसकी पथ-प्रदर्शिका बनी।

दयार्द्र उपगुप्तने भूमिशायी सिंहकी ओर देखा। उसकी छातीमें बुरी तरह-से तीर घुसा हुआ था। भिक्षु उसे बड़ी कठिनतासे गङ्गा-तटकी ओर ले गया और वहाँ जाकर उसका घाव धोने लगा।

गङ्गाके चचल हृदयमें दशो दिशाओंमें गीति-सुधाकी वृष्टि करते हुए एक नाव जा रही थी। शरदकी निमल चांदनी अच्छी तरहसे खिल गई थी। वन-प्रांत और गङ्गाकी लहरोंमें अपूर्व शोभा अङ्कित हो रही थी।

उपगुप्त अपने कार्य्यमें प्रवृत्त हुआ। सिंहके जीवनकी आशा बहुत कम थी, किन्तु भिक्षु दत्तचित्त होकर अपना कार्य्य कर रहा था।

नाव उसी ओर आने लगी। गानके स्वर अब उपगुप्तको स्पष्ट सुनाई देने लगे। उसने देखा, नावमें और कोई नहीं वही मुक्तकुन्तला रूपसी वासवदत्ता शरच्चन्द्रसे आंख लड़ाती हुई गा रही थी।

भिक्षुने सिंहकी छातीका तीर बाहर निकालनेको हाथ बढ़ाया, अचानक गान रुक गया। नाव भिक्षुके समीप आ लगी।

नावमेंसे वासवदत्ता चकित होकर चिल्लाई—"भिक्षु यह क्या करते हो? क्या तुम्हें मालूम नहीं, जीवन लाभ कर यह भयङ्कर हिंस्र पशु अपने जीवन-दाताको नहीं पहचान सकेगा। यह तुम्हारा सर्वनाश कर डालेगा।"

उपगुप्तने कहा—"रमणी, तुम भूल रही हो। यह उन हिंस्र पशुओंसे अधिक भयङ्कर नहीं है, जिनका बाह्य सुन्दर है। यह उस सुन्दर रूपसे अधिक भयङ्कर नहीं है, जिसकी ओटसे मनुष्यका शत्रु, काम उसका वध करनेके लिए कान तक प्रत्यञ्चा खींचे खड़ा है। यह उस सुन्दर मोहसे अधिक भयानक नहीं है, जिसने अपने बंधनसे मनुष्यको बन्दी बना रक्खा है। यह हाथमें स्वर्ण-मुकुट लिये हुए छायाके समान निस्सार लोभ-लालसासे अधिक भीषण नहीं है, जिसके पीछे मनुष्य अपने ध्येय-धर्मको भूलकर अनन्त जन्म और जरातोंमें फिर रहा है।"

वासवदत्ता कुछ न समझ सकी। प्रेमसे अधीर होकर उसने कहा—“भिक्षु, मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती रह गई, तुम नहीं आए? क्या भूल गये थे?”

उपगुप्त—“नहीं भूला नही। मै आऊंगा, कुछ दिन बाद आऊंगा।”

वासवदत्ता—“आजही चलो भिक्षु। इससे अधिक सुन्दर अवसर फिर कब आयेगा? आज चन्द्रमा संसारको आलोकित कर रहा है। तुम मेरे गृहका अन्धकार दूर करो।”

“ठहरो।” कह कर भिक्षु धीरे-धीरे सिंहकी छातीसे तीर निकालने लगा।

वासवदत्ताने कहा—“तुमने अपने सौन्दर्यके तीरसे मुझे आहत किया है। पहले मुझे प्राण-दान दो।”

उपगुप्त—“धीरज रक्खो सुन्दरी! मैं अवश्य आऊंगा”

वासवदत्ता—“कब आओगे? जब तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते मेरे नेत्रोंकी ज्योति चली जायगी? दिन गिनते-गिनते जब समय मुझसे मेरा यौवन छीन लेगा?”

उपगुप्तने उसकी ओर देख कर सोचा—हैं, यह क्या! इतना ज्ञान होने पर भी यह गड्ढेमें गिर रही है?

वासवदत्ताने फिर कहा—“कब आओगे?”

उपगुप्त—“इसी जीवनमें।”

वासवदत्ता—“इसी जीवनमें? यह बहुत बड़ी अवधि है।”

उपगुप्त—“तो फिर।”

वासवदत्ता—“इसी क्षण कहो।”

उपगुप्त—“नहीं।”

वासवदत्ता—“इसी मास?”

उपगुप्त—“इसी वर्ष आऊंगा, इसे सत्य समझो।”

वासवदत्ता—“मैं अपनी अंगुलियों पर दिन और श्वासमें क्षण गिनूंगी।”

वासवदत्ता चली गई। उपगुप्त मृतप्राय सिंहके हृदयसे तीर निकालनेमें मग्न हुआ।

२

शरद गया, शिशिर गया, हेमन्त गया, किन्तु उपगुप्त नहीं आया। वासवदत्ताने कई बार अश्रु-पूर्ण प्रतीक्षा की, किन्तु वह नहीं आया। उसने अनेक बार शृङ्गार किया, सब व्यर्थ हुआ।

सुमन, सुगन्धि और सजीवनीको लेकर अतमें वसन्त ऋतु आई, फिर भी वह न आया। देखते-देखते अवधि भी बीतनेको आई, पर उपगुप्त नहीं आया। वासवदत्ता अतृप्त-अश्रांत आंखोंसे उस कभी-न-आनेवालेकी राह देखती रही। सब आए, जो नहीं आया वह एक उपगुप्त था!

अवधिके बीतनेमें दो महीने रहे—एक महीना रहा। ससारके पाथनिवासमें ठहरा हुआ पथिक, "वर्ष" जानेकी तैयारी करने लगा। उसने शिशिरका कंबल कंधे पर डाल लिया था, हेमन्तका बिस्तर बांध लिया था, वसन्तके पुष्प-वस्त्र सभाल लिये थे; ग्रीष्मका छाता हाथमें, जूता पांवमें ले लिया था, वर्षाका रिक्त लोटा और डोर भी ले लिया था, उसने ज्योंही अपनी अन्तिम वस्तु शरदकी चांदनीको समेटनेके लिए हाथ बढ़ाया त्योंही वासवदत्ताने विकल होकर कहा—"क्या सच मेरा प्रियतम इस साल नहीं आवेगा?"

रात्रिका समय था। समस्त पृथ्वी अन्धकारमें डूबी हुई थी। वासवदत्ताका महल सहस्रों आलोक-मालाओंसे जगमगा रहा था। ज्योतिकी किरण उसके स्वर्णाभूषणोंमें प्रतिफलित होकर उसके विलास-कक्षको अपूर्व शोभा दे रही थी। असख्य दीपक तारिकाओंके समान थे, जिनके बीचमें वासवदत्ताका मुख चन्द्रमा बन कर शोभित था।

उस दिन वासवदत्ताके यहां उत्सव था। वह उत्सव उसके प्रेमी एक लक्षपतिके स्वागतार्थ रचाया गया था। एक ओरसे सगीतकी, दूसरी ओरसे सुराकी धाराएं बह रही थीं। बीचमें अभागा लक्षपति डूबा जा रहा था।

अर्द्ध रात्रिके व्यतीत होनेसे पहले ही लक्षपति सुराके प्रभावसे पूर्ण अचेत हो गया। उसे अपनी-पराई किसीकी सुधि नहीं रही। सगीत बद हुआ।

दासी, परिचारिका आदि सब बिदा हो गए। कक्षमें लक्षपति और वासवदत्ताके सिवा और कोई नहीं रहा। नहो, नहीं, एक और पिशाचिनी बैठी हुई थी। वह कौन थी? वेश्या वासवदत्ताकी परिछाया।

वासवदत्ताने चारों ओर देखकर अपने सिरहानेसे एक कटार निकाली। रात्रिके समय एक वेश्याके हाथमें कटार! यह क्या करना चाहती है? जो मुखचन्द्र संगीत सुधाकी वर्षा करता है, क्या वह वज्र भी गिरा सकता है?

वह उस अचेत लक्षपतिका बध करनेको बढ़ी। उसका कटार-युक्त हाथ आकाशकी ओर उठा, मानों उसने कहा—"सावधान! ऊपर ईश्वर है, उसका भय कर!" पापीयसी उस मूक हाथके संकेतको न समझ सकी। उसने वह कटार लक्षपतिकी छातीमें भोंक दी, लक्षपतिने चीत्कार छोड़ी। उसके अंतिम शब्द थे—"हाय! छलनामयी पिशाचिनी!"

रूपवती राक्षसी—सुकुमार पिशाचिनी—अपनी विजयपर प्रसन्न हुई। इसी समय बाहरसे किसीने करुण कण्ठसे पुकारा—"वासवदत्ता!"

कंपित वासवदत्ताने गवाक्ष-द्वार मुक्त कर कहा—"कौन?" उत्तरकी आवश्यकता नहीं रही। गवाक्ष-द्वारसे कक्षका आलोक उस व्यक्तिके मुखमण्डल पर पड़ा—वह श्रमण उपगुप्त था।

वासवदत्ताने हर्षसे कहा—"भिक्षु, तुम आगए?"

उपगुप्त—"नहीं, किन्तु शीघ्र ही आऊंगा!"

वासवदत्ता—"फिर, इस कुसमयमें आनेका कारण?"

उपगुप्त—"कुछ नहीं, मैं अपने विहारको जा रहा था। यहां पर मुझे तुम्हारी याद आई। मैं यह जाननेको उत्कंठित हुआ कि तुम सो रही हो या जाग रही हो।"

वासवदत्ता—"मैं जाग रही हूं।"

उपगुप्त—"पर तुम्हारी दोनों आंखें बन्द हैं। अच्छा, जाता हूं, आज मुझे बहुत विलम्ब हो गया है।"

वासवदत्ता—"ठहरो, तुम्हें अपनी प्रतिज्ञा याद है?"

उपगुप्त—"हां।"

वासवदत्ता—"तुमने इस वर्षके भीतर ही मुझसे मिलनेका वचन दिया है?"

उपगुप्त—"अभी वर्षमें कितने दिन शेष हैं?"

वासवदत्ता—"केवल एक पक्ष।"

उपगुप्त—"मैं अवश्य उसके भीतर ही आऊंगा।"

वासवदत्ता—"तुम झूठ बोल रहे हो, मुझसे छल कर रहे हो।"

उपगुप्त—"अमिताभका शिष्य झूठ नहीं बोलता, छल-कपट उसका धर्म नहीं है।"

उपगुप्त रजनीके गंभीर अंधकारमें मिलकर अदृश्य हो गया। वासवदत्ता गवाक्ष-द्वार बंद कर छिप गई।

४

वासवदत्ताने धनके लिए लक्षपतिका वध किया था। भेद खुल गया। वह न्यायालयमें विचारके लिए उपस्थित की गई।

उसका धन उसके काम नहीं आया, उसके प्रेमी उसके काम नहीं आए, उसका अनुपम सौन्दर्य भी उसको दंडसे मुक्त नहीं कर सका।

हतभागिनीको न्यायालयसे शूलीका दंड नहीं मिला। प्राणदण्ड उसके अशांत जीवनके लिए शान्ति थी। वह दंड न था आशीर्वाद था।

उसका रूप कुरूप किया गया। उसके चन्द्रवदनकी आंखें निकाल ली गईं, नाक-कान काट दिये गए, उसके मृणाल-कर छिन्न किये गये, उसकी धन-सम्पत्ति सब छीन ली गई।

जिस समय वासवदत्ताको यह भीषण दंड मिला, उस समय उसने बड़े करुण स्वरसे प्रार्थना की—"मैं एक सप्ताहका समय चाहती हूं। मुझे अपने एक प्रेमीसे मिलना है, वह इस सप्ताहके भीतर आजावेगा। उसके बाद मैं अत्यन्त प्रसन्नतासे घातकके हाथ और न्यायकी तलवारको अपनी देह सौंप दूंगी।"

किसीने उसकी विनयको स्वीकार नहीं किया। घातकने वासवदत्ताको कुरूप और कुत्सित कर राजपथमें छोड़ दिया। एक मनुष्य उसके साथ किया गया जो उच्चस्वरसे समस्त प्रजाको उसके पापकी कथा सुनाता था।

कितना भयानक और वीभत्स दृश्य था! उसके क्षतोंसे रक्त और पीप बहता था, जिसमें मक्खियां भनभना रही थीं, हाथोंसे हीन होनेके कारण अभागिनी उनको उड़ा भी नहीं सकती थी। वह करुण शब्दोंसे केवल रुदन कर रही थी।

आजसे पहले जो उसके सौन्दर्यके उपासक थे वे उससे घृणा करने लगे, दूर ही से देखकर भाग जाते थे। सब कोई उसके ऊपर थूक रहे थे। पथका एक भिक्षुक, लूला, लँगड़ा, कुष्ठ रोगी भी उसके स्पर्शसे बचनेका प्रयास कर रहा था।

जब उसके पास विश्वको आकर्षित करनेवाला रूप नहीं रहा, यौवन नहीं रहा, धन नहीं रहा, जब समस्त संसार उससे घृणा कर रहा था, वह जीव-मात्रकी समवेदनासे दूर थी, ऐसे दुर्दिनमें उपगुप्तने आकर उसके मस्तक पर अपना हाथ रक्खा।

वासवदत्ताने चकित होकर पुकारा—"कौन?"

उपगुप्तने उत्तर दिया—"मैं हूँ।"

वासवदत्ता, कण्ठ-स्वर कुछ पहचान गई। अपना भ्रम मिटानेको उसने पूछा—"कौन तुम उपगुप्त हो?"

उपगुप्त—"हाँ मैं उपगुप्त ही हूँ।"

वासवदत्ताने दीर्घ श्वास छोड़ कर कहा—"लौट जाओ, तुम किस लिए आए? क्या तुम मेरा उपहास करने आए हो?"

उपगुप्त—"तुम मुझसे लौट जानेको कहती हो। मैं तुम्हारे ही कहनेके अनुसार तुम्हारे पास आया हूँ। मेरे आनेमें विलम्ब नहीं हुआ है, अभी तो मिलन होनेमें दो दिन शेष हैं।"

वासवदत्ताने निराशाके स्वरमें कहा—"हाय! जब मेरी देह वसन्तकी

सुरभिसे सौरभवती थी, तब तुम न आये। जब मेरी शोभाका चन्द्रमा पृथ्वीके ऊपर सुधाकी वृष्टि कर रहा था, तब तुम न आए। जब घातक मेरे यौवनका अन्त करनेके लिए प्रस्तर-खण्ड पर अपना शस्त्र तेज़ कर रहा था, तब भी तुम न आए। भिक्षु, क्या तुम इतने अबोध हो! मेरे सौन्दर्यका दीपक बुझ गया है, मेरी शोभाका सूर्य अस्त हो गया है! ऐसे समय तुम किस लिए आए?"

उपगुप्त—"भगिनी! मैं इन्द्रिय-सुख अथवा और किसी स्वार्थसे प्रेरित होकर तुम्हारे पास नहीं आया हूं। शारीरिक सौन्दर्य्य व्यर्थ है, तुम्हारा यह शरीर इसकी साक्षी देगा। धन भी निस्सार है, तुम्हारा अतुल ऐश्वर्य इसका उत्तर देगा। मै तुम्हारे पास आया हूं। कहो, तुम्हे क्या कहना है?"

वासवदत्ताकी आंखें खुल गईं। उसने कहा—"मैं क्या कहूं भिक्षु! तुम्हारे इस प्रश्नने मेरे उत्तरको छीन लिया है। मुझे ज्ञात हो रहा है, जैसे मैं एक स्वप्न, एक छाया और एक मरीचिकाके पीछे दौड़ रही थी। मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम मेरे समीप कुछ देर खड़े रहो। तुम्हारे स्पर्शसे मेरी यातना कम हो रही है, तुम्हारे वचनोंसे मेरा सन्ताप दूर हो रहा है। भिक्षु-श्रेष्ठ, तुम ही कुछ कहो।"

उपगुप्त—"संसारके दुःखोंकी जड़ तृष्णा है, तुम इसी तृष्णाकी दासी होकर भटकती रही। तुमने कामके हाथ अपना धर्म बेच दिया, तुमने धनके लिए अपने प्रेमी लक्षपतिकी हत्या की। आज इस दुःखके समय तुम्हारे काम कोई नहीं आया।"

वासवदत्ता—"हाय! भिक्षु, तुमने इससे पहले आकर मुझे ठोकर खानेसे क्यों नहीं बचाया? तुम आए, किन्तु बड़ी देरमें आए।"

उपगुप्त—"कुछ विलम्ब नहीं हुआ है, अभी बहुत समय है। तुम इस समय बाह्य नेत्रोंसे हीन हो, किन्तु तुम्हारे अन्तर नेत्र खुल गये हैं। उठो, भगवान बोधिसत्वका हाथ पकड़ो। वे तुम्हारे दुःख दूर करेंगे। तुम्हे मुक्त करेंगे।"

वासवदत्ताके मरु-संसारमें आकाशमार्गसे सुधाविन्दु बरस गया। उसकी सात्विक प्रवृत्ति जाग उठी, उसे संसारकी क्षण-भंगुरताका बोध हुआ, बोध ही नहीं, अनुभव भी हुआ। उसने भिक्षुके चरणोंमें अपना मस्तक रख कर कहा—"मै प्रस्तुत हूं। मुझे ले जाओ, मेरा अंचल पकड़ कर मुझे शान्तिके राज्यमें ले जाओ।"

भिक्षुने अपने पवित्र करोंसे उसका स्पर्श किया। दोनों संघकी ओर चले। पाप-तापसे विदग्धा वासवदत्ताने प्रायश्चित्तकी सुरसरिमें स्नान किया। प्रव्रज्या ग्रहण कर अपने शेष जीवनमें शान्ति पाई।



## श्री प्रेमचन्द

जन्मकाल १९३७ वि०

रचनाकाल १९१६ ई०

मजूरी -



श्री प्रेमचन्द

# अग्नि-समाधि

१९

साधु-सन्तोंके सत्सङ्गसे बुरे भी अच्छे हो जाते हैं किन्तु पयागका दुर्भाग्य था कि उस पर उलटा ही असर हुआ। उसे गाँजे, चरस और भङ्गका चस्का पड़ गया, जिसका फल यह हुआ कि एक मेहनती, उद्यमशील युवक आलस्यका उपासक बन बैठा। जीवन-संग्राममें यह आनन्द कहां। किसी वट-वृक्षके नीचे धूंई जल रही है, एक जटाधारी महात्मा विराज रहे हैं, भक्त-जन उन्हे घेरे बैठे हुए हैं और तिल-तिल पर चरसके दम लग रहे हैं। बीच-बीचमें भजन भी हो जाते हैं। मजूरी-धतूरीमें यह स्वर्ग-सुख कहां। चिलम भरना पयागका काम था। भक्तोंको परलोकमें पुण्य-फलकी आशा थी, पयागको तत्काल फल मिलता था—चिलमों पर पहला हक उसीका होता

था। महात्माओंके श्रीमुखसे भगवत्-चर्चा सुनते हुए वह आनन्दसे विह्वल हो उठता था, उस पर आत्मविस्मृति-सी छा जाती थी, वह सौरभ, संगीत और प्रकाशसे भरे हुए एक दूसरे ही संसारमें पहुंच जाता था। इस-लिए जब उसकी स्त्री रुक्मिन रातके दस ग्यारह बज जाने पर उसे बुलाने आती तो पयागको प्रत्यक्षका क्रूर अनुभव होता, संसार उसे कांटोंसे भरा हुआ जङ्गल सा दीखता, विशेषतः जब घर आने पर उसे मालूम होता कि अभी चूल्हा नहीं जला और चने-चबैनेकी कुछ फ़िक्र करनी है। वह जातिका भर था, गांवकी चौकीदारी उसकी मीरास थी, दो रुपये और कुछ आने वेतन मिलता था, वरदी और साफा मुफ्त। काम था सप्ताहमें एक दिन थाने जाना, वहां अफसरोंके द्वार पर झाड़ू लगाना, अस्तबल साफ करना, लकड़ी चीरना। पयाग रक्तके घूट पी-पीकर ये काम करता, क्योंकि अवज्ञा शारीरिक और आर्थिक दोनों ही दृष्टिसे महगी पड़ती थी। आँसू यों पुछते थे कि चौकीदारी यदि कोई काम था तो इतना ही और महीनेमें चार दिनके लिए दो रुपये और कुछ आने कम न थे। फिर गांवमें भी अगर बड़े आदमियों पर नहीं तो नीचों पर रोब था। वेतन पेंशन थी और जबसे महात्माओंका सम्पर्क हुआ वह पयागके जेबखर्चके मदमे आ गई। अतएव जीविकाका प्रश्न दिन-दिन चिन्तोत्पादक रूप धारण करने लगा। इन सत्सगोंके पहले यह दम्पति गांवमें मजूरी करता था। रुक्मिन लकड़ियां तोड़कर बाज़ार ले जाती, पयाग कभी आरा चलाता, कभी हल जोतता, कभी पुर हाँकता। जो काम सामने आ जाय उसमें जुट जाता था। हँस-मुख, श्रमशील, विनोदी, निर्द्वन्द्व आदमी था और ऐसा आदमी कभी भूखों नहीं मरता। उस पर नम्र इतना कि किसी कामके लिए नही न करता। किसीने कुछ कहा और वह अच्छा भैया कह कर दौड़ा। इस लिए गांवमें उसका मान था। इसकी बदौलत निरुद्यम हो जाने पर भी दो-तीन साल तक उसे अधिक कष्ट न हुआ। दोनों जूनकी तो बात ही क्या। जब महतोंको यह ऋद्धि न प्राप्त थी, जिनके द्वार पर बैलोंकी तीन-तीन जोड़ियां बन्धी थीं, तो पयाग किस गिनतीमें था। हां

जूनकी दाल रोटीमें सन्देह न था। परन्तु अब यह समस्या दिन-दिन विषम-तर होती जाती थी। उस पर विपत्ति यह थी कि लक्ष्मिन भी अब किसी कारणसे उतनी पति-परायणा, उतनी सेवाशील, उतनी तत्पर न थी। नहीं, उसकी प्रगल्भता और वाचालतामें आश्चर्य-जनक विकास होता जाता था। अतएव पयागको किसी ऐसी सिद्धिकी आवश्यकता थी जो उसे जीविकाकी चिन्तासे मुक्त कर दे और वह निश्चिन्त होकर भगवत-भजन और साधु-सेवामें प्रवृत्त हो जाय।

एक दिन लक्ष्मिन बाजारसे लकड़ियां बेचकर लौटी तो पयागने कहा—ला कुछ पैसे मुझे दे दे, दम लगा आऊं।

लक्ष्मिनने मुंह फेर कर कहा—दम लगानेकी ऐसी चाट है तो काम क्यों नहीं करते? क्या आजकल कोई बाबा नहीं है, जाकर चिलम भरो।

पयागने त्योरी चढ़ाकर कहा—भला चाहती है तो पैसे दे दे, नहीं इस तरह तङ्ग करेगी तो एक दिन कहीं निकल जाऊंगा, तब रोवेगी।

लक्ष्मिन अंगूठा दिखाकर बोली—रोए मेरी बला। तुम रहते ही हो तो कौन सोनेका कौर खिला देते हो। अब भी छाती फाड़ती हूं, तब भी छाती फाड़ूंगी।

"तो अब यही फैसला है?"

"हां, हां, कह तो दिया मेरे पास पैसे नहीं हैं।"

"गहने बनवानेके लिये पैसे हैं और मैं चार पैसे मांगता हूं तो यह जवाब देती है।"

लक्ष्मिन तिनककर बोली—"गहने बनवाती हूं तो तुम्हारी छाती क्यों फटती है। तुमने तो पीतलका छल्ला भी नहीं बनवाया, क्या इतना भी नहीं देखा जाता।"

पयाग उस दिन घर नहीं आया। रातको नौ बज गये तब लक्ष्मिनने किवाड़ बन्द कर लिये। समझी गांवमें कहीं छिपा बैठा होगा, समझता होगा मुझे मनाने आवेगी, मेरी बला जाती है।

जब दूसरे दिन भी पयाग न आया तो रुक्मिनको चिन्ता हुई। गांव भर छान आई। चिड़िया किसी अड्डे पर न मिली। उस दिन उसने रसोई नहीं बनाई। रातको लेटी भी तो बहुत देरतक आँख न लगी। शङ्का हो रही थी, पयाग सचमुच तो विरक्त नहीं हो गया। उसने सोचा प्रातःकाल पत्ता-पत्ता छान डालूगी, किसी साधु-सन्तके साथ होगा। जाकर थानेमें रपट कर दूंगी।

अभी तड़का ही था कि रुक्मिन थाने चलनेको तैयार हो गई। किवाड़ बन्द करके निकली ही थी कि पयाग आता हुआ दिखाई दिया। पर वह अकेला न था उसके पीछे-पीछे एक स्त्री भी थी। उसकी छींटकी साड़ी, रंगी हुई चादर, लम्बा घूंघट और शर्मीली चाल देखकर रुक्मिनका कलेजा धकसे हो गया। वह एक क्षण हतबुद्धि-सी खड़ी रही, तब बढ़कर नई सौतको दोनों हाथोंके बीचमें ले लिया और उसे इस भांति धीरे-धीरे घरके अन्दर ले चली जैसे कोई रोगी जीवनसे निराश होकर विष-पान कर रहा हो।

जब पड़ोसिनोंकी भीड़ छँट गई तो रुक्मिनने पयागसे पूछा—इसे कहांसे लाये?

पयागने हँसकर कहा—घरसे भागी जाती थी, मुझे रस्तेमें मिल गई। घरका काम-धन्धा करेगी, पड़ी रहेगी।

"मालूम होता है मुझसे तुम्हारा जी भर गया।"

पयागने तिरछी चितवनोंसे देखकर कहा—दुत् पगली, इसे तेरी सेवा-टहल करनेको लाया हूं।

"नईके आगे पुरानीको कौन पूछता है।"

"चल, मन जिससे मिले वही नई है, मन जिससे न मिले वही पुरानी है। ला कुछ पैसे हों तो दे-दे, तीन दिनसे दम नहीं लगाया, पैर सीधे नहीं पड़ते। हां, देख दो-चार दिन इस बिचारीको खिला-पिला दे, फिर तो आप ही काम करने लगेगी।"

रुक्मिनने पूरा रुपया लाकर पयागके हाथ पर रख दिया। दूसरी बार कहनेकी जरूरत ही नहीं पड़ी।

२

पयागमें और चाहे कोई गुण हो या न हो, यह मानना पड़ेगा कि वह शासनके मूल सिद्धान्तोंसे परिचित था। उसने भेद नीतिको अपना लक्ष्य बना लिया था।

एक मास तक किसी प्रकारकी विघ्न-बाधा न पड़ी। रुक्मिन अपनी सारी चौकड़ियां भूल गई थी। बड़े तड़के उठती, कभी लकड़ियां तोड़कर, कभी चारा काटकर, कभी उपले पाथकर बाजार ले जाती। वहां जो कुछ मिलता उसका आधा तो पयागके हत्थे चढ़ता और आधेमें घरका काम चलाता। वह सौतको कोई काम न करने देती। पड़ोसिनोंसे कहती, बहन सौत है तो क्या, है तो अभी कलकी बहुरिया। दो-चार महीने भी आरामसे न रहेगी तो क्या याद करेगी। मैं तो काम करनेको हूं ही।

गांव भरमें रुक्मिनके शील-स्वभावका बखान होता था, पर सत्सङ्गी घाघ पयाग सब कुछ समझता था और अपनी नीतिकी सफलतापर प्रसन्न होता था।

एक दिन बहूने कहा—दीदी, अब तो घरमें बैठे-बैठे जी ऊबता है। मुझे भी कोई काम दिला दो।

रुक्मिनने स्नेह-सिंचित स्वरमें कहा—क्या मेरे मुखमें कालिख पुतवाने पर लगी हुई है। भीतरका काम किये जा, बाहरके लिये तो मै हूं ही।

बहूका नाम कौशिल्या था जो बिगड़कर सिलिया हो गया था। इस वक्त तो सिलियाने कुछ जवाब न दिया। लेकिन यह लौंडियोंकी दशा अब उसके लिये असह्य हो गई थी। वह दिन भर घरका काम करते-करते मरे, कोई नहीं पूछता। रुक्मिन बाहरसे चार पैसे लाती है तो घरकी मालकिन बनी हुई है। अब सिलिया भी मजूरी करेगी और मालकिनका घमण्ड तोड़ देगी। पयाग पैसोंका यार है, यह बात उससे अब छिपी न थी। जब रुक्मिन चारा लेकर बाजार चली गई तो उसने घरकी टट्टी लगाई और गांवका रङ्ग-ढङ्ग

देखनेके लिये निकल पड़ी। गांवमें ब्राह्मण, ठाकुर, कायस्थ धनिए सभी थे। सिलियाने शील और सकोचका कुछ ऐसा स्वांग रचा कि सभी स्त्रियाँ उस पर मुग्ध हो गईं। किसीने चावल दिया, किसीने दाल, किसीने कुछ। नई बहूकी आवभगत कौन नहीं करता? पहले ही दौरेमें सिलियाको मालूम हो गया कि गांवमें पिसनहारीका स्थान खाली है और वह इस कमीको पूरा कर सकती है। वह गांवसे घर लौटी तो उसके सिर पर गेहूंसे भरी हुई एक टोकरी थी।

रुक्मिनने पहर रात ही से चक्कीकी आवाज सुनी तो रुक्मिनसे पूछा—'आज तो सिलिया अभीसे पीसने लगी।'

रुक्मिन बाजारसे आटा लाया करती थी। अनाज और आटेके भावमें विशेष अन्तर न था। उसे आश्चर्य हुआ कि सिलिया इतने सवेरे क्या पीस रही है। उठकर चक्कीवाली कोठरीमें गई तो देखा सिलिया अन्धेरेमें बैठी कुछ पीस रही है। उसने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और टोकरीको उठाकर बोली—"तुमसे किसने पीसनेको कहा है? किसका अनाज पीस रही है?"

सिलियाने निश्शक होकर कहा—तुम जाकर आरामसे सोतीं क्यों नहीं मैं पीसती हूं तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है। चक्कीकी घुमुर-घुमुर भी नहीं सही जाती? लाओ टोकरी दे-दो। बैठे-बैठे कब तक खाऊंगी, दो महीने तो हो गए।

"मैंने तो तुमसे कुछ नहीं कहा।"

"तुम कहो चाहे न कहो, अपना धरम भी तो कुछ है।"

"तू अभी यहांके आदमियोंको नहीं जानती। आटा पिसाते तो सबको अच्छा लगता है। पैसे देते रोते हैं। किसका गेहूं है? मैं सवेरे उसके सिर पटक आऊंगी।'

सिलियाने रुक्मिनके हाथसे टोकरी छीन ली और बोली—पैसे क्यों देंगे। कुछ बेगार करती हूं।

"तू न मानेगी?"

"तुम्हारी लौंडी बन कर न रहूंगी।"

यह तकरार सुनकर पयाग भी आ पहुंचा और रुक्मिनसे बोला—काम करती है तो करने क्यों नहीं देती। अब क्या जनम भर बहुरिया ही बनी रहेगी। हो तो गए दो महीने।

"तुम क्या जानो नाक तो मेरी न कटेगी।"

सिलिया बोल उठी—तो क्या कोई बैठे खिलाता है। चौका-बरतन, झाड़ू-बहारू, रोटी-पानी, पीसना-कूटना, यह कौन करता है। पानी खींचते-खींचते मेरे हाथोंमें घट्टे पड़ गये। मुझसे अब यह सारा काम न होगा।

पयागने कहा—तो तूही बाजार जाया कर। घरका काम रहने दे। रुक्मिन कर लेगी। रुक्मिनने आपत्ति की—ऐसी बात मुंहसे निकालते लाज नहीं आती। तीन दिनकी बहुरिया बाजारमें घूमेगी तो संसार क्या कहेगा?

सिलियाने आग्रह करके कहा—संसार क्या कहेगा, क्या कोई पाप करने जाती हूं।

सिलियाकी डिग्री हो गई। आधिपत्य रुक्मिनके हाथोंसे निकल गया। सिलियाकी अमलदारी हो गई। जवान औरत थी। गेहूं पीसकर उठी तो औरोंके साथ घास छीलने चली गई और इतनी घास छीली कि सब दंग रह गए। गट्ठा उठाए न उठता था। जिन पुरुषोंको घास छीलनेका बड़ा अभ्यास था उनसे भी इसने बाजी मार ली! यह गट्ठा बारह आनेको बिका। सिलियाने आटा, चावल, दाल, तेल, नमक, तरकारी, मसाला सब कुछ लिया, और चार आने बचा लिये। रुक्मिनने समझ रक्खा था कि सिलिया बाजारसे दो-चार आने पैसे लेकर लौटेगी तो उसे डांटूंगी और दूसरे दिनसे फिर बाजार जाने लगूंगी। फिर मेरा राज्य हो जायगा। पर यह सामान देखे तो आंखें खुल गईं। पयाग खाने बैठा तो मसालेदार तरकारीका बखान करने लगा। महीनोंसे ऐसी स्वादिष्ट वस्तु मयस्सर न हुई थी। बहुत प्रसन्न हुआ। भोजन करके वह बाहर जाने लगा तो सिलिया परौठेमें खड़ी मिल गई। बोला—आज कितने पैसे मिले?

"बारह आने मिले थे।"

"सब खर्च कर डाले ? कुछ बचे हों तो मुझे दे-दो।"

सिलियाने बचे हुए चार आने पैसे दे-दिये। पयाग पैसे खन-खनाता हुआ बोला—तूने तो आज माल-माल कर दिया। रुक्मिन तो दो-चार पैसों हीमें टाल देती थी।

"मुझे गाड़ कर रखना थोड़े ही है। पैसा खाने-पीनेके लिए है कि गाड़नेके लिए।"

## २

रुक्मिन और सिलियामें संग्राम छिड़ गया। सिलिया पयागपर अपना आधिपत्य जमाये रखनेके लिए जान तोड़कर परिश्रम करती। पहर रात हीसे उसकी चक्कीकी आवाज कानोंमें आने लगती, दिन निकलते ही घास लाने चली जाती और जरा देर सुस्ताकर फिर बाजारकी राह लेती। वहांसे लौट कर भी वह बेकार न बैठती, कभी सन कातती, कभी लकड़ियाँ तोड़ती। रुक्मिन उसके प्रबन्धमें बराबर ऐब निकालती और जब अवसर मिलता तो गोबर बटोर कर उपले पाथती और गांवमें बेचती। पयागके दोनों हाथोंमें लड्डू थे। दोनों स्त्रियां उसे अधिकसे अधिक पैसे देने और उसके स्नेहका अधिकांश अपने अधिकारमें लानेका प्रयत्न करती रहती, पर सिलियाने कुछ ऐसी दृढ़तासे आसन जमा लिया था कि किसी तरह हिलाए न हिलती थी। यहां तक कि एक दिन दोनों प्रतियोगियोंमें खुल्लम-खुल्ला ठन गई। एक दिन सिलिया घास लेकर लौटी तो पसीनेमें तर थी। फागुनका महीना था, धूप तेज थी, उसने सोचा नहा कर तब बाजार जाऊं। घास द्वारपर ही रखकर वह तालाब नहाने चली गई। रुक्मिनने थोड़ी-सी घास निकालकर पड़ोसिनके घर छिपा दी और गट्ठेको ढीला करके बराबर कर दिया। सिलिया नहाकर लौटी तो घास कम मालूम हुई। रुक्मिनसे पूछा। उसने कहा—मैं नहीं जानती। सिलियाने गालियां देनी शुरू कीं—जिसने मेरी घास छुई हो उसकी

देहमें कीड़े पड़ें, उसके बाप और भाई मर जाय, आंखे फूट जायँ। रुक्मिन कुछ देर तक तो जब्त किये बैठी रही, आखिर खूनमें उबाल आ ही गया। झल्लाकर उठी और सिलियाके दो-तीन तमाचे लगा दिये। सिलिया छाती पीट-पीटकर रोने लगी। सारा महल्ला जमा हो गया। सिलियाकी सुबुद्धि और कार्य्यशीलता सभीकी आँखोंमें खटकती थी—वह सबसे अधिक घास क्यों छीलती है, सबसे ज्यादा लकड़ियां क्यों लाती है, इतने सबेरे क्यों उठती है, इतने पैसे क्यों लाती है, इन कारणोंने उसे पड़ोसियोंकी सहानुभूतिसे वंचित कर दिया था। सब उसीको बुरा-भला कहने लगीं। मुट्ठी भर घासके लिए इतना उधम मचा डाला, इतनी घास तो आदमी झाड़ कर फेंक देता है, घास न हुई सोना हुआ। तुझे तो सोचना चाहिए था कि अगर किसीने ले ही लिया तो है तो गाँव-घर ही का। बाहरका कोई चोर तो आया नहीं। तूने इतनी गालियां दीं तो किसको दी? पड़ोसियों ही को तो।

संयोगसे उस दिन पयाग थाने गया हुआ था। शामको थका-मांदा लौटा तो सिलियासे बोला—ला कुछ पैसे दे-दे तो दम लगा आऊँ। थक कर चूर हो गया हूं।

सिलिया उसे देखते ही हाय-हाय करके रोने लगी। पयागने घबरा कर पूछा—क्या हुआ क्या? क्यों रोती है? कहीं गमी तो नहीं हो गई? नैहरसे कोई आदमी तो नहीं आया?

"अब इस घरमें मेरा रहना न होगा। अपने घर जाऊँगी।"

"अरे कुछ मुंहसे तो बोल, क्या हुआ? गांवमें किसीने गाली दी है, किसने गाली दी है? घर फूंक दूं उसका, चालान करवा दूं।"

सिलियाने रो-रो कर सारी कथा कह सुनाई। पयाग पर आज थानेमें खूब मार पड़ी थी। झल्लाया हुआ था। यह कथा सुनी तो देहमें आग लग गई। रुक्मिन पानी भरने गई थी। वह अभी घड़ा भी न रखने पाई थी कि पयाग उस पर टूट पड़ा और मारते-मारते बेदम कर दिया। वह मारका जवाब गालियोंसे देती थी और पयाग हर एक गालीपर और भी झल्ला-झल्लाकर

मारता था। यहां तक कि रुक्मिनके घुटने फूट गए, चूड़ियां टूट गईं। सिलिया बीच-बीचमें कहती जाती थी—वाह रे तेरा दीदा, वाह रे तेरी जुबान। ऐसी तो औरत ही नहीं देखी। औरत काहेको डाइन है, जरा भी मुंहमें लगाम नहीं। किन्तु रुक्मिन उसकी बातोंको मानो सुनती ही न थी। उसकी सारी शक्ति पयागको कोसनेमें लगी हुई थी। पयाग मारते-मारते थक गया पर रुक्मिनकी जबान न थकी। बस, यही रट लगी हुई थी—तू मर जा, तेरी मिट्टी निकले, तुझे भवानी खाय, तुझे मिरगी आवे। पयाग रह-रह कर क्रोधसे तिलमिला उठता और आकर दो-चार लातें जमा देता। पर रुक्मिनको अब शायद चोट ही न लगती थी। वह जगहसे हिलती भी न थी। सिरके बाल खोले, जमीन-पर बैठी इन्हीं मन्त्रोंका पाठ कर रही थी। उसके स्वरमें अब क्रोध न था, केवल एक उन्मादमय प्रवाह था। उसकी समस्त आत्मा हिंसा-कामनाकी अग्निसे प्रज्वलित हो रही थी।

अंधेरा हुआ तो रुक्मिन एक ओर निकल गई, जैसे आंखोंसे आंसूकी धार निकल जाती है। सिलिया भोजन बना रही थी। उसने उसे जाते देखा भी, पर कुछ पूछा नहीं। द्वार पर पयाग बैठा चिलम पी रहा था। उसने भी कुछ न कहा।

## ४

जब फ़सल पकने लगती थी तो डेढ़-दो महीने तक पयागको हारकी देख-भाल करनी पड़ती थी। उसे किसानोंसे दोनों फसलों पर हल पीछे कुछ अनाज बंधा हुआ था। माघ हीमें वह हारके बीचमें थोड़ी-सी जमीन साफ करके एक मड़ैया डाल लेता था और रातको खा-पीकर आग, चिलम, तम्बाखू, चरस लिये हुए इसी मड़ैयामें पड़ रहता था। चैतके अन्त तक उसका यही नियम रहता था। आजकल वही दिन थे। फसल पकी हुई तैयार खड़ी थी। दो-चार दिनमें कटाई शुरू होनेवाली थी। पयागने दस बजे रात तक रुक्मिनकी राह देखी। फिर यह समझकर कि शायद किसी पड़ोसिनके

घर सो रही होगी, उसने खा-पीकर अपनी लाठी उठाई और सिलियासे बोला—किवाड़ बन्द कर ले, अगर रुक्मिन आवे तो खोल देना और मना-मुना कर थोड़ा-बहुत खिला देना। तेरे पीछे आज इतना तूफ़ान हो गया। मुझे न जाने इतना गुस्सा कैसे आ गया। मैंने उसे कभी फूलकी छड़ीसे भी न छुआ था। कहीं डूब-धंस न मरी हो, तो कल आफ़त आ जाय।

सिलिया बोली—न जाने वह आवेगी कि नहीं। मैं अकेली कैसे रहूंगी। मुझे डर लगता है।

"तो घरमें कौन रहेगा। सूना घर पाकर कोई लोटा-थाली उठा ले जाय तो? डर किस बातका है? फिर रुक्मिन तो आती ही होगी।"

सिलियाने अन्दरसे टट्टी बन्द कर ली। पयाग हारकी ओर चला। तरङ्गमें यह भजन गाता जाता था—

ठगिनी क्या नना झलकावे।
कद्दू काट मृदङ्ग बनाए, नीबू काट मजीरा।
पांच तरोई मङ्गल गावें, नाचे बालम खीरा॥
रूपा पहिरके रूप दिखावे, सोना पहिर रिझावे।
गले डाल तुलसीकी माला, तीन लोक भरमावे॥
ठगिनी० ॥

सहसा सिवाने पर पहुंचते ही उसने देखा कि सामने हारमें किसीने आग जलाई। एक क्षणमें एक ज्वाला-सी दहक उठी। उसने चिल्लाकर पुकारा—कौन है वहां? अरे यह कौन आग जलाता है?

ऊपर उठती हुई ज्वालाओंने अपनी आग्नेय जिह्वासे उत्तर दिया।

अब पयागको मालूम हुआ कि उसकी मॅंड़ैयामें आग लगी हुई है। उसकी छाती धड़कने लगी। इस मॅंड़ैयामें आग लगाना रूईके ढेरमें आग लगाना था। हवा चल रही थी। मॅंड़ैयाकी चारों ओर एक हाथ हट कर पकी हुई फसलकी चादरें-सी बिछी हुई थी। रातमें भी उनका सुनहला रङ्ग झलक रहा था। आगकी एक लपट, केवल जरा-सी एक चिनगारी सारे हारको

भस्म कर देगी। सारा गांव तबाह हो जायगा। इसी हारमें मिले हुए दूसरे गांवोंके हार भी थे। वे भी जल उठेंगे। ओह! लपटें बढ़ती जा रही हैं! अब विलम्ब करनेका समय न था। पयागने अपना उपला और चिलम वहीं पटक दिया और कन्धे पर लोहबन्द लाठी रखकर बेतहाशा मड़ैयाकी तरफ दौड़ा। मेड़ोंसे जानेमें चक्कर था, इस लिए वह खेतोंमेंसे होकर भागा जा रहा था। प्रति क्षण ज्वाला प्रचण्डतर होती जाती थी और पयागके पांव और भी तेजीसे उठ रहे थे। कोई तेज घोड़ा भी इस वक्त उसे पा न सकता। अपनी तेजी पर उसे स्वयं आश्चर्य हो रहा था। जान पड़ता था पांव भूमि-पर पड़ते ही नहीं। उसकी आंखें मड़ैया पर लगी थीं—दाहिने-बायें उसे और कुछ न सूझता था। इसी एकाग्रताने उसके परोंमें पर लगा दिये थे। न दम फूलता था न पांव थकते थे। तीन-चार फरलांग उसने दो मिनटमें तय कर लिये और मड़ैयाके पास जा पहुंचा।

मड़ैयाके आस-पास कोई न था। किसने यह कर्म किया है यह सोचनेका मौका न था। उसे खोजनेकी तो बात ही और थी। पयागका सन्देह रुक्मिन-पर हुआ। पर यह क्रोधका समय न था। ज्वालाएँ कुचाली बालकोंकी भांति ठट्ठा मारतीं, धक्कम-धक्का करतीं, कभी दाहनी ओर लपकतीं, और कभी बाईं तरफ। बस, ऐसा मालूम होता था कि लपट अब खेत तक पहुंची, अब पहुंची, मानों ज्वालाएं आग्रह पूर्वक क्यारियोंकी ओर बढ़तीं और असफल होकर दूसरी बार फिर दूने वेगसे लपकतीं थी। आग कैसे बुझे! लाठीसे पीट कर बुझानेका गौ था। वह तो निरी मूर्खता थी। पर क्या हो! फसल जल गई तो! फिर वह किसीको मुंह न दिखा सकेगा। आह! गांवमें कोहराम मच जायगा सर्वनाश हो जायगा! उसने ज्यादा नहीं सोचा। गंवारोंको सोचना नहीं आता। पयागने लाठी सम्भाली, जोरसे एक छलांग मारकर आगके अन्दर मँड़ैयाके द्वारपर जा पहुंचा, जलती हुई मड़ैयाको अपनी लाठीपर उठाया और उसे सिरपर लिये हुए सबसे चौड़ी मेड़ पर गाँवकी तरफ भागा। ऐसा जान पड़ा मानों कोई अग्नियान हवामें उड़ता चला जा रहा है। फूसकी जलती हुई

धज्जियां उसके ऊपर गिर रहीं थीं, पर उसे इसका ज्ञान तक न होता था। एक बार एक मूढ़ा अलग होकर उसके हाथ पर गिर पड़ा। सारा हाथ भुन गया। पर उसके पांव पल भर भी न रुके, हाथोंमें जरा भी हिचक न हुई। हाथोंका हिलना खेतीका तबाह होना था। पयागकी ओरसे अब कोई शङ्का न थी। अगर भय था तो यही कि मड़ैयाका वह केन्द्र-भाग, जहां लाठीका कुन्दा डालकर पयागने उसे उठाया था, न जल जाय; क्योंकि छेदके फैलते ही मड़ैया उसके ऊपर आ-गिरेगी और उसे अग्नि-समाधिमें मग्न कर देगी। पयाग यह जानता था और हवाकी चालसे उड़ा जाता था। चार फरलाँगकी दौड़ है। मृत्यु अग्निका रूप धारण किये हुए पयागके सिर पर खेल रही है और गांवकी फसल पर। उसकी दौड़में इतना वेग है कि ज्वालाओंका मुंह पीछेको फिर गया है और उनकी दाहक शक्तिका अधिकांश वायुसे लड़नेमें लग रहा है, नहीं तो अब तक बीचमें आग पहुंच गई होती और हाहा-कार मच गया होता। एक फरलांग तो निकल गया पयागकी हिम्मतने हार नहीं मानी। वह दूसरा फरलांग भी पूरा हो गया। देखना पयाग दो फर-लांगकी और कसर है। पांव जरा भी सुस्त न हों। ज्वाला लाठीके कुन्देपर पहुंची और तुम्हारे जीवनका अन्त है। मरनेके बाद भी तुम्हें गालियां मिलेंगी, तुम अन्तकाल तक आहोंकी आगमें जलते रहोगे। बस, एक मिनट और! अब केवल दो खेत और रह गए हैं। सर्वनाश! लाठीका कुन्दा ऊपर निकल गया। मड़ैया नीचे खिसक रही है—अब कोई आशा नहीं। पयाग प्राण छोड़ कर दौड़ रहा है वह किनारेका खेत आ पहुंचा। अब केवल दो सेकेण्डका और मामला है। विजयका द्वार सामने बीस हाथ पर खड़ा स्वागत कर रहा है। उधर स्वर्ग है इधर नरक.....मगर वह मड़ैया खिसकती हुई पयागके सिर पर आ पहुंची। वह अब भी उसे फेंककर जान बचा सकता है। पर उसे प्राणोंका मोह नहीं। वह उस जलती हुइ आगको सिर पर लिये भागा जा रहा है। वह उसके पांव लड़खड़ाए! हाय! अब यह क्रूर अग्नि-लीला नहीं देखी जाती।

एकाएक एक स्त्री सामनेके वृक्षके नीचेसे दौड़ती हुई पयागके पास पहुंची। वह रुक्मिन थी। उसने तुरत पयागके सामने आकर गरदन झुकाई और जलती हुई मड़ैयाके नीचे पहुंच कर उसे दोनों हाथों पर ले लिया। उसी दम पयाग मूर्छित होकर गिर गया। उसका सारा मुंह झुलस गया था।

रुक्मिन उस बालकको लिये हुए एक सेकेण्डमें खेतके डांडे पर आ पहुंची, मगर इतनी दूरमें उसके हाथ जल गये, मुंह जल गया और कपड़ोंमें आग लग गई। उसे अब इतनी सुधि न थी कि मड़ैयाके बाहर निकल आवे। वह बालकको लिये हुए गिर पड़ी। इसके बाद कुछ देर तक मड़ैया हिलती रही। रुक्मिन हाथ-पांव फेंकती रही फिर अग्निने उसे निगल लिया! रुक्मिन-ने अग्नि-समाधि ले-ली।

कुछ देरके बाद पयागको होश आया। सारी देह जल रही थी। उसने देखा वृक्षके नीचे फूसकी लाल आग चमक रही है। उठ कर दौड़ा और पैरसे आगको हटा दिया—नीचे रुक्मिनकी अधजली लाश पड़ी हुई थी। उसने बैठ कर दोनों हाथोंसे मुंह ढांप लिया और रोने लगा।

प्रातःकाल गांवके लोग पयागको उठाकर उसके घर ले गये। एक सप्ताह तक उसका इलाज होता रहा, पर बचा नहीं। कुछ तो आगने जलाया था। जो कसर थी वह शोकाग्निने पूरी कर दी।



श्रीरायकृष्ण दास

जन्मकाल १९४९ वि०　　　　रचनाकाल १९१७ ई०



श्री रायकृष्णदासजी

# गहूला

१

उत्तरी भारतके हूण अधिपति तोमारलके राज्यमें मन्दसोर एक प्रधान प्रान्त था। हेमनाभ वहांका क्षत्रप था। वह सालमें दो बार अधिपतिकी सेवामें कर देने उपस्थित होता। हूण साम्राज्यकी राजधानी उस समय मथुरा थी।

हेमनाभ वहाँ एक महीना बिताकर घर लौटता। मन्दसोरमें मथुरा जैसी चहल-पहल थोड़े ही थी। फिर वहांके बाजारमें देश-देशान्तरकी चीज़ें आतीं—चीनके कौशेय, सिंहलके छपे कपड़े और मोती, पारसके घोड़े, यवन-दासियाँ—जो चाहे एक ही स्थान पर ले लो। मथुरा उन दिनोंकी कलकत्ता, बम्बई समझिये। क्षत्रप अपने लिए, मित्रोंके लिए और व्यवसायके लिए

हजारोंका माल लेते। उस समयके हजारका मोल आजकलके लाखके बराबर है।

राजधानीके सभी उच्चपदस्थ अधिकारियोंसे उसका खूब मेल-जोल था। कुछ पदके कारण नहीं, अपने स्वभावके कारण भी। वह बड़ा ही मिलनसार था। अकसर अपने इन मित्रोंके सङ्ग वह आपानकों, गोष्ठियों और यात्राओंके सुख लूटता। किन्तु कदम्ब और तमालके झुरमुटोंमें जब शराबका बाजार गर्म हो उठता तब न जाने क्यों उसका हृदय उदास हो उठता। नशेसे उत्तेजित मस्तिष्क उसके सामने उन कुञ्जोंमें कृष्णलीलाके दृश्य उपस्थित करता और साथ ही उसकी नशीली मनोवृत्ति उसे थपेड़े लगाने लगती कि आज उन्हीं कुञ्जोंमें ये हूण आनन्द कर रहे हैं और तुम,—चन्द्रवंशकी सन्तान,—भी उन्हींके पीछे लगे-लगे मुर्देकी तरह यह दशा देख रहे हो।

फिर मन्दिरोंकी चहल-पहल; हीनयान, महायान, आदि अनेक सम्प्रदाय के बौद्ध और हिन्दू दोनों ही धर्मोंके मन्दिरोंमें उसे भिन्न-भिन्न दृश्य दिखलाई पड़ते। जैन मन्दिरोंका वायुमण्डल इन दोनोंसे भिन्न था। देवकुलों-की चहल-पहल कुछ निराली ही थी। अजातशत्रुसे लेकर उस समय तकके सम्राटोंकी प्रतिकृतियोंको देख-देखकर उसके हृदयमें विलक्षण-विलक्षण भाव जाग्रत होते।

मठों और विहारोंमें जाना भी वह न भूलता। और फिर एकान्तमें बैठ कर वह सद्धर्मसे लेकर आजके महायान और उसके अवान्तर यानों तक क्रम विकास पर विचार करता। भगवान् तथा धर्मका यह नया उग्र रूप उसे जचता। स्थविरोंकी करतूतोंसे उसे बौद्धधर्मके ह्रासका निश्चय था। फिर वह यह भी देखता कि किस प्रकार एक ओर इन उत्कट सिद्धान्तोंको हिन्दू कौल अपना रहे हैं, दूसरी ओर सद्धर्मकी सभी अच्छी बातें छट छँट कर भागवत धर्ममें विलीन हो रही हैं।

प्रबन्धके झंझटोंसे सालमें दो बार अलग होकर, इन सब बातोंके निरी-क्षण और समझनेमें उसे बड़ा आनन्द मिलता। उसकी कुण्ठित वृत्तियां

पुनः जीवित हो उठतीं और अपनी नगरीमें लौटकर वह नये उत्साहसे का-भार वहन करता।

इन सबसे बढ़कर उस राजधानीमें एक और आकर्षण था—राजकुमारी बहुला जिसके आग्रहसे हेमनाभको राजधानीमें रुकने कहती।

एकोनविंशति वर्षीया राजकन्या अक्सर उसे अपने उपवनमें बुलाती और साग्रह उसे अपने सामने बिठा कर समुद्रपारके बारेमें अनेक बातें पूछती—

"सुनती हूं वहां सौन्दर्यकी खान है। पान्थ, तुम एक बार तो मुझे वहांकी सुन्दरियोंसे मिलाओ, मैं उनसे मैत्री करूंगी। राजकन्या जैसा बर्ताव न करूंगी। बोलो, मुझे कब वहांकी यात्रा कराओगे?"

"देवि, जब आपकी आज्ञा हो" प्रतिबार हेमनाभका यही उत्तर होता। और, राजकुमारी कभी कोई समय नियत न करती। साथ ही उसे उक्त बात कहना भी न भूलती। अकसर इसके साथ उलहना भी सम्मिलित होता—

"उस बार तो खूब ले गये। देखना है, इस बार ले चलते हो कि नहीं। क्या तुम्हें वहांकी सुन्दरता पर इतना ममत्व है कि संसारको उससे वंचित रखना चाहते हो? मुझे तो इसीका अचरज है कि जब उसपर तुम्हें इतना मोह है तब भी तुम क्वांरे क्यों बने हो?"

"भवति, मोहसे क्या, प्रेम जो चाहिये।" इस उत्तरके संग उसके मुंहसे एक ठण्डी सांस भी निकल पड़ती।

घड़ियों बातें होतीं। मोतिया और फरासके पेड़ मर्मर किया करते और राजकुमारी अपने एकटक धवल नयनोंसे हेमनाभको सोचती हुई उसकी बातें सुना करती। अपने हाथों स्फटिक पात्रमें द्राक्षासव ढालकर रत्न चषकसे उसे पिलाती और उसकी आंखोंमें राग दौड़ते देखती।

कभी उसे अपने मयूरोंका नृत्य भी दिखलाती और पूछती कि कहीं ऐसे सुन्दर मयूर तुमने देखे हैं?

"श्रीमती, चाहे आप मेरा विश्वास करें या नहीं, ब्रज जैसी सुन्दरता मैंने कहीं नहीं देखी। एक मयूरों पर ही क्या ?"

"किन्तु एक बात तुम भूलते हो। एक मुझे छोड़कर !!" राजकुमारीकी बड़ी-बड़ी आंखें हेमनाभका मन टटोलने लगती और बिना उसके मुहसे कुछ कहलाए हुए भी अभिलषित, साथ ही सच्चा उत्तर पाकर तब कल पातीं। इस बीच हेमनाभ सिर नीचा ही किये रहता। जब राजकुमारीके नेत्र हट जाते तब एक ही निमेषमें, आंख भरके, उसका मुह देखकर वह राजकुमारीसे आज्ञा लेता।

क्या जाने क्यों पीठ फेरते ही उसके मुहसे एक दीर्घ निश्वास निकल जाती। इसीके संग उसे किसी औरके निश्वासकी आहट मिलती।

जब बिदाका समय आता, गहूला उसे अपना लीला-कमल देती और कहजती—"देखो अपने कार्यमें प्रमत्त न होना" हेमनाभ उस कमल तथा आदेशको सिर चढ़ाकर विदा होता। किन्तु, एकान्त पाते ही उस कमलको छातीसे लगाता। सम्भवतः इसके साथ ही वह आदेश भी उसके हृदय पर अङ्कित हो जाता रहा हो।

उस लीला-कमलको वह फेंक न देता। एक सुगन्धित रेशमी टुकड़ेमें लपेट कर उसे सौवर्ण सूत्रसे बांधकर एक सुन्दर मंजूषामें रखता जाता। प्रत्येक पर स्वर्णकी एक मुद्रा भी बनवा कर ग्रथित कर देता। इन मुद्राओं पर पानेकी तिथि और संवत् अङ्कित होते। अकसर उन्हें देखकर वह अतीतके स्वप्न देखता।

२

एक साल मन्दसोरमें वर्षा न हुई। भयानक काल उपस्थित हुआ। उस समय रेल न थी कि अन्न कहीं बाहर जाता। पर वहां तो अन्न जानेका कोई प्रश्न ही न था। एक दाना भी तो न उपजा था। चारों ओर हाहाकार मच गया। लोग देश छोड़-छोड़ कर भागने लगे। हेमनाभने पीड़ितोंको सहा-

यताके लिये कई सागर आदि बनवाना आरम्भ किया पर यह सब ताड़में तिल बराबर था।

राजस्व वसूल होनेकी कोई सम्भावना न थी। हेमनाभके लाख सिर मारने पर भी कोई फल न हुआ। जब कर लेकर मथुरामें उपस्थित होनेका समय बीत गया तब उसने सब हाल सम्राट तोमारलके पास लिख भेजा, और अपने प्रान्तको उस वर्षके लिए कर-मुक्त करनेकी सम्मति दी। किन्तु हूण-शासन विचार-मूलक न था। उसका मूलमन्त्र था तलवारका जोर, भयङ्कर रक्तपात, प्रलयङ्कर उत्पात, निर्दयताकी पराकाष्ठा।

आदेश हुआ, तलवारसे कर वसूल करो। जो गांव भूखे मर रहे हों उन्हें जला दो। ऐसोंके मरनेमें ही उन्हें और साम्राज्य दोनोंको सुख है। सहायताका काम बन्द कर दो, रिक्त राज्यकोषको और रिक्त न करो। नगरमें मुनादी करा दो कि तीन दिनमें लोग प्रान्त भरके लिए कर चुका दें नहीं तो तलवारके जोरसे कर वसूल करो। महीपतिकी आज्ञा शिरोधाय न करने वालोंके रक्तसे उत्तप्त महीको सींचो।

हेमनाभ कांप उठा। इससे जघन्य और क्या आज्ञा हो सकती थी। वह अपने पद और अपनेको कोसने लगा। किन्तु राजाज्ञा माननीय थी। क्या इसी दिनके लिए गहूला उसे प्रति बार अपने कार्यसे प्रमत्त न होनेके लिए चिताया करती ?" गहूला! राजकुमारी! क्या वास्तवमें तुम हूण-रमणी हो ?

चाहे आज हम लोगोंको इस बातका आश्चर्य हो कि एक आदमीका, जिसके किसी पूर्वजने अपने बाहुबलसे राज्य स्थापना की हो, लोग क्योंकर मन्त्र मुग्ध सर्पकी भांति—बीसवीं सदीके यन्त्रोंकी भांति—बिना कुछ कहे-सुने, आदेश, चाहे वह कैसा ही क्यों न हो, पालन कर सकते थे। लेकिन जिस ज़मानेमें बुद्धिकी परतन्त्रता थी और आज भी जहां बुद्धिकी परतन्त्रता है, वहांके लोगोंको अपनी इस हीनताका ज्ञान नहीं रहता। बुद्धि, तुझे परतन्त्र बनानेमें जन्म ही से धर्म-शिक्षाका कितना हाथ है, इसका उत्तर तू ही दे।

हेमनाभके लिए कोई मार्ग न था। उसने स्वयं राजनगरमें जाकर सब

पाते तै क्यों न की। सम्भव था कि वह मन्दसोरको इस कठोर आज्ञासे बचा लेता। वह अपनेको धिक्कारने लगा। अब आज्ञा परिवर्त्तन असम्भव था। भला हूण-राज्यके मुहसे जो बात निकल गई वह बदली जा सकती है? सेनासे भी वह आज्ञा-पालन मात्रके लिए—विवेक और दया पूर्वक आज्ञापालनको नही कह सकता। क्योंकि हूणोंने अपना राज्य स्थिर रखनेके लिए और अपनी नीति न बदली जानेके लिए, सेना विभाग नीचेसे ऊपर तक, अपनी ही जातिके हाथोंमें रखा था।

लाचार होकर उसने अपने प्रान्तके सेनापति, देहधारी नरक, खरूतुनको सम्राटकी आज्ञा सुना दी। फिर क्या था। मानों बहुत दिनोंकी बंधी नदीका बांध तोड़ दिया गया हो। उस नरराक्षसके आनन्दकी सीमा न रही। गांव-गांव अश्वारोही हूणोंके घोड़ोंकी टापोंसे, खाली घड़ेकी तरह, प्रतिध्वनित होने लगे। अनेक दीन जनोंको कवलित करके क्रूर अपने दोनों अर्थोंको साथ करने लगा। आकाश-मण्डल चिरांहन महकसे भर उठा।

इधर मन्दसोर नगरमें पटह घोषणा होने लगी—

"सुनो नागरिको, मन्दसोरके आबाल वृद्ध वनिता नागरिको, परम भट्टारक परमेश्वर, सर्वशत्रुविजयी, सर्व समर्थ, श्रीमान् महाराजाधिराज, दिगन्त व्यापमान कीर्त्ति-सितात पत्र-रवितेज-अहर्निशि प्रकाशित त्रैलोक्य, हरि सदृश, श्री सेवित पादपद्म, अखण्ड चक्रवर्ती हूणेश्वर तोमारल देवका आदेश सुनो—इस घड़ीसे तीन दिनके भीतर अपने प्रान्तकी कर मुद्रा, यदि राज कोषमें नहीं पहुंचा दोगे तो शस्त्रबलसे सेनापतिजी राजस्व इकट्ठा करेंगे और सदैवको तुम्हारा कलङ्कित नाम राजद्रोहियोंमें गिना जायगा।

काश्यप इमनाभकी आज्ञासे यह राज-आदेश घोषित किया जाता है।"

घोषणासे नगरमें बड़ी अव्यवस्था फैल उठी। कितनों ही ने दुख सहकर मरनेसे एक बार ही तलवारसे कट जाना अच्छा समझा। कितनोंने प्रतिष्ठाके विचारसे विष खा लिया। कितने डरके मारे, मरनेसे दुःसह कष्ट भोगने लगे। कामुक अपने इन्द्रिय सुख और कृपण अपने धनसे विलग होनेके

शोचसे विकल हुए जाते हैं। माता अपने पुत्रोंके लिए और पत्नियाँ पतियोंकी चिन्तासे मरी जाती हैं। कुछ धूर्तोंने नगरसे भागकर जान बचानेकी सोची। पर हूण मूर्ख न थे। नगर चारों ओरसे घिरा हुआ था।

तीन दिन बीतने पर हैं पर कोषमें करका षष्टांश भी नहीं पहुंचा। आज "नव-पत्रिका" का उत्सव-दिन है। जहाँ नगर पर आनन्दकी घटा छाई रहती, आज वहीं आपत्तिके काल मेघ घिर आए हैं। ऐसे समयमें कुछ जिन्दा दिल लोगोंने विचार किया कि जब मरना ही है तब उत्सव भूमिमें एकत्र होकर उसीका स्मरण करते-करते प्राण देंगे। अशोक-वनिकामें भीड़ होने लगी। धीरे-धीरे बहुतसे लोग जुट गए। तीन दिन पूरे हुए। विपत्ति मेघ, जनता पर खड्गकी बिजली गिराने लगे।

स्वयं, खरुतुनने वनिका घेरली। ज्यों ही वह शस्त्रपातकी आज्ञा देनेको था कि हेमनाभ घोड़ा फेंकता हुआ आ पहुंचा। उसने जोरसे पुकार कर कहा—"सुनो खरुतुन, मैंने सेवक-धर्मका पालन कर दिया। अब नागरिक-धर्मका पालन करने आया हूँ। तुम सम्हल जाओ।

सारी भीड़ और सेना एक बार निस्तब्ध हो गई। हेमनाभने भीड़को उत्तेजित करनेके लिए दो ही चार वाक्य कहे, किन्तु उनका असर मन्त्र जैसा हुआ। उसका यही कहना था कि जब मृत्यु सन्मुख ही है, तब प्रेत-लोक क्यों जाते हो? वीरगतिसे स्वर्ग लाभ करो।

भीड़में क्या जाने कहांकी शक्ति आ गई। हेमनाभ खरुतुनपर टूट पड़ा, और भीड़ सैनिकोंसे गुथ उठी। जिनके पास शस्त्र न थे, उन्हे भी सैनिकोंसे—हूण सैनिकोंसे—शस्त्र छीननेका बल आ गया।

खरुतुन मन्द पड़ता जाता था। किन्तु ज्यों ही हेमनाभ उस पर अन्तिम वार करे पीछेसे एक हूणने उछलकर उसकी गरदन उतार ली। फिर क्या होना था। जिस लकड़ीके सहारे उस समूहका जर्जरित गात खड़ा था, जब वही टूट गयी तब वह कैसे सम्हलता? थोड़ी देरमें यज्ञमें मारे गए पशुकी भाँति, जिसके मुंहसे शब्द तक नहीं निकलने दिया जाता, वह भीड़ वहीं ढेर हो

गई। कोई भी वनिकाके बाहर न जाने पाया। रक्ता-शोक रक्तसे तर हो उठे। हूणोंकी तलवार जो वरसोंसे प्यासी थीं और मारे क्रोधके आप ही अपने-को—जग लगाकर—खाए जाती थीं, आज निरीहोंका रक्त आकण्ठ पान करके तृप्त हुईं। किसी बड़े भारी यज्ञके लिए इतनी बलियां चढ़ गईं।

३

विशाल पट मण्डपमें उपहारकी सभी वस्तुएं एकत्र हैं। सेनापति खरू-तुन मन्दसोरसे जो लूटका माल लाया है, उसे सजाकर रखवा रहा है। हूण सम्राटके आनेकी देर है। बड़े गर्वसे वह अपनी भोंड़ी मूछोंको ओठोंसे चबाता हुआ, अपनी चौड़ी और चिपटी तलवारके सहारे खड़ा है।

भारतीय प्रथासे, बन्दी-गणोंने हूणेशके आगमनकी सूचना दी। दर्शकों पर उसका विलक्षण प्रभाव पड़ा। भीषण विजयके घोषमें भयानक हूण शरीर सज्जित भद्रासनके सहारे टिक रहा। वह रुधिर-दिग्ध उपहारोंको लोलुप दृष्टिसे देखने लगा। खरुतुनने अपनी नृशंसताकी वर्णना बड़े आतङ्कसे की और हूण सम्राटने अपना मुड़ा सिर हिलाकर उस कुकाण्डका समर्थन किया यह भयानक प्रसन्नता हूणोंकी विलास वस्तु है—वे फिर आनन्दसे चीत्कार कर उठे। इसी समय युवती राजकुमारी गहूला मन्द गतिसे उस मण्डपमें पहुंची पुनर्वार चीत्कार हुआ, यह उसका स्वागत था। संस्कृत कवियोंने सम्भवतः उसे ही देखकर कहा है—"हूण-रमणी चिबुक प्रति स्पर्धिनारंगकम्।"

यही स्वाभाविक लाली उपहारोंको देखकर हँसनेमें और भी बढ़ी जाती थी। उसने स्नेह दिखाते हुए पिताकी बांह पकड़ ली और बगलके मंच पर बैठ गई। उन वस्तुओंसे भारतीय कलाका एक उच्च आदर्श, सुन्दर सोनेके पुष्पोंसे सजी, चन्दनकी एक मञ्जूषा जिसमें रत्न भी लगे हुए थे निकालकर खरुतुन, गहूलाके सामने ले गया। राजकन्याके लिए ऐसा ही सुन्दर उपहार उपयुक्त था। सम्राट भी प्रसन्न हुए। गहूलाने सम्राटपर कृतज्ञताकी दृष्टि डाली, किन्तु खरुतुन उससे पुलकित हो उठा।

उपहार-वितरण अभी बाकी था। तोमारल और सामन्तगण उसीमें लग गए। गहूलाने धीरे-धीरे वह मंजूषा खोली। देखा—कई सूखे हुए कमल स्वर्ण-मुद्रा-ग्रथित रेशमी कपड़ेमें लिपटे हैं। उसने मुद्राओं परके लेख पढ़े। एक क्षणमें अतीतके अनेक दृश्य उसके नेत्रोंके आगे घूम गये। वह पीली पड़ गई, मचके सहारे टिक गई। उसके हुण रक्तने ही उसे मूर्छित होनेसे बचा दिया।

तोमारलने अकारण उस ओर देखा। किसी जादू-टोनेका ध्यान करके उसका उपचार होने लगा। क्षण भरमें बड़े-बड़े हूण गुणी आ जुड़े। उपहार वितरणकी सभा वहीं भङ्ग हुई।

४

गहूलाकी आंखोंका वह रस न जाने कहां चला गया। उसका मुख निष्प्रभ हो उठा है। उसके हृदयमें उच्छ्वास लेनेकी शक्ति नहीं रह गई है। अब उसका हाथ लीला-कमल बिना सूना रहता है।

आज वह स्फटिक आसव पात्र टूटा पड़ा है। उसके आसव घट कबके सूख गये हैं और उसका रत्न-चषक यमुनामें डुबा दिया गया है, उसका माधवी कुज अब उजड़ा पड़ा है और उसके मयूर ताल पर नाचना भूल गए हैं।

—:❀:—

# कल्पना

## १

मैं कल्पना करने लगा—

कोई डेढ़ सौ वर्ष पहिले एक झझनाता इक्का शिवपुरके आगेवाले तालाब पर रुका। मेरे वर्तमान जन्मसे चार जन्म पहिलेकी बात है—उस पर एक मित्रके संग मैं सवार था। उस समय शिवपुर एक गांव था। आजकल जैसी चहल-पहलकी, कहीं पर, परछांई भी नसीब न थी। तो भी वह कोई जङ्गल न था। गांवके चारों ओर दूर दूर तक अमराइयां फैली हुई थीं। कई पक्के तालाब भी थे। पर काशीके लोगोंको यही तालाब बहुत प्रिय था। हम दोनों वहां हवा खाने गए थे, और भी कितने ही इक्के खुले हुए थे।

सड़कसे कोई सौ कदम पर वह सुन्दर पक्का तालाब था, जिसको प्रेतात्माके

दर्शन आज भी आप वहां कर सकते हैं। उसके चारों ओर सौ दो सौ कदम तक मैदान था। वहां गायें चरा करतीं। बाद टीलों पर सुन्दर अमराइयाँ थीं। तालाबके पूर्व किनारे पर, जहांसे सीढ़ियोंकी लम्बी दौड़ पानीकी ओर चलती थी, एक सुन्दर शिव मन्दिर था। यह अब भूमिसात् होकर अपना अस्तित्व पृथ्वीके आंचलमें चढ़ा रहा है। और इसपरका वह सुन्दर वटवृक्ष, जिसकी शोभा देखनेमें मैं घण्टों बिता देता था, और जो उस मन्दिरके मुकुटपर नीलात पत्रका काम देता था, आज सिरपर हाथ रक्खे रोते हुए बूढ़े जैसा दीख रहा है।

पास ही एक कुआ था। अब वह मॅडार हो गया है। कालके विकराल दाढ़ोंके अनेक चिन्ह उस पर लगे हुए हैं। वही हम लोगोंकी भग बुटने लगी। निवृत्त होकर हमलोग तालाबके किनारे पहुंचे। वहां अच्छा जमघट था। कोई नहा रहा था, कोई वस्त्रोंको पछाड़ता हुआ बार बार उठा कर उसकी सफाई देख रहा था, कोई-कोई स्नानादिसे निश्चिन्त होकर बैठे थे। किसीकी स्नानकी तैयारी थी, पर चुप कोई न था। सब गप्पाष्टक कर रहे थे। प्रधान चर्चा अन्नकी गिरानीकी थी। काशीमें पहिली बार ५७ सेरका गेहूं बिका था। भावमें एकदम १२ सेरकी कमी कोई साधारण बात न थी। इसी प्रसङ्गमें अनेक कथा, उपकथा, क्षेपक, परिशिष्ट लग रहे थे। उन दिनों साह नवल-दास काशीके नगर-सेठ और परम दाता थे। बीच बीचमें उनकी उदारताकी प्रशंसा और किसी किसीके मुहसे निन्दा भी सुनी जाती थी। काशीका यह बुढ़िया-पुराण समयके बदल जाने पर भी, आज भी, ज्यों का त्यों बना है, बल्कि कुछ विकसित ही हुआ है।

हम लोगोंका उस मण्डलीने आनन्द पूर्वक स्वागत किया। सभी जान-पहचानके थे। तालाबका पन्ने जैसा पानी अपने तटस्थ वटकी हरियालीसे होड़ कर रहा था। हृदयमें आनन्दसे होनेवाली गुदगुदीकी तरह उसमें मन्द लहरियां उठ रही थीं।

हम लोग अपनी धोतियों पर 'साफा' देने लगे। सन्ध्याके प्रवेशके साथ

पानीकी नीलिमा बढ़ने लगी। सामनेके गऊघाट पर पानी पीनेको उसरती गायोंके खुरोंकी खट-खटसे तालाब प्रतिध्वनित होने लगा। किन्तु जब तक सन्ध्याकी उदासी फैले-फैले तब तक पूर्वसे निशानाथ निकल आए। शारदीय पूर्णिमा थी। आजकी चन्द्र-श्री अपूर्व होती है।

थोड़ी देरमें, तालावमें चाँदी लहराने लगी। हम लोगोंकी धोती सूख चली थी। अब नहानेकी बारी आई। मैं पासके खुले बुर्जसे धड़ामसे पानीमें कूद पड़ा। मेरे मित्र सीढियोंसे उतरते थे, वे भी तैरकर मेरे पास आ गए। हम दोनों देर तक जल-क्रीड़ा करते रहे, फिर बाहर निकलनेकी तैयारी हुई। मैं पानीमेंकी एक सीढ़ी पर चढ़ा था कि मेरे बाए पैरकी नलीमें ज़ोरसे ठोकर लगी; सीढ़ी पर कोई चीज पड़ी थी। वहाँ कन्धे तक पानी था, ठोकर जोरकी लगी थी, क्योंकि मैं तेजीसे ऊपर आ रहा था। मैंने कहा—"अरे! यहां बड़े बड़े 'साफेबाज' (१) आते हैं; किन्तु कोई यह ठोकर नहीं हटाता, क्या अहदी लोग हैं!"

अपने मित्रसे मैंने ठोकरका हाल बतलाया।

घाट पर एक साहब बोल उठे—"का साहेब, साफाबाजनमें तू नाहीं हौ? काहे अउरनके बदनाम करथौ।"

"बदनाम ए वस्ते करी थै कि सब एके निकसतें काहे नाहीं। आज एके निकासना है।"

मैंने पैरसे टटोलकर देखा कि वह एक पत्थरका चिकना ढोका था।

तब मैंने उपस्थित मण्डलीसे कहा—"जरा आप लोग मदत करो तो एके निकासा जाय। बड़ा चिकना पत्थर है, पुट देवे काबिल है। तीन चार-ठो रस्सी मिलायके एमें बाँधी जाय तो सहजमें ऊपर खिंच आवे।"

---

(१) धोती या अगौंछेको किसी साफ चिकने पत्थर पर, सफाईके लिए देर तक पछाड़नेको बनारसमें साफा देना या 'पुट लगाना' कहते हैं। जो ऐसा करे वह पुट या साफेबाज़।

उस पत्थरको 'पुट देवे काबिल' जान सब अपने अपने लोटोंकी रस्सियां जुटाने लगे। वे एकमें बटी गईं और मैंने गोता लगा कर उस काम चलाऊ रस्सेको पत्थरमें बांधा। कई जन ऊपरसे उसे खींचने लगे और हम दोनों डुबकी लगाकर उसे ठेलने। पांच मिनटके भीतर ही वह कमर भर पानीमें आ गया। तब हम दोनों सहज ही में उसे उठाकर ऊपर लाए। उस समय नगरमें बहुत ही कम लोग ऐसे थे जो कसरत-कुश्ती न करते रहे हों। बाहर देखने पर मालूम हुआ कि वह शिला कोई मुर्ति है जो पानीमें उल्टी पड़ी थी। हम लोगोंने उसे सीधा रखकर धोना आरम्भ किया।

थोड़ी देरमें उसका मिट्टी-कीचड़ साफ हो गया और जब पानीसे धुली हुई और तर मुर्तिके मुख पर चन्द्र ज्योत्स्ना खेलने लगी तब उसकी शोभा देखकर सारी मण्डली अवाक् रह गई।

शारदाकी क्या दिव्य मुर्ति थी। सब मुग्ध हो गये। कईने कहा कि उसे ''टके नीचे रख देना चाहिये।

मैंने कहा पागल तो नहीं हो गये हो। भला उन खण्डित मूर्तियों और टूटे-फूटे पत्थरोंमें माताकी जगह है। आज शरदके दिन शारदाजीने स्वय दर्शन दिया है, उस मौलसरीके नीचे इनकी प्रतिष्ठा होगी।

तालावके पश्चिमी घाटपर बकुलके जोड़े लगे थे।

मन्दिर बन गया और प्रतिष्ठा भी हो गई। मेरा वहाँ रोज तीसरे पहर जाना भी होने लगा। घरके लोग भी वहां प्रति पूर्णिमा जाया करते। श्रद्धासे पूजा होती। जबसे यह मन्दिर बना था, मेरी सब प्रकार उन्नति थी।

मेरी पत्नी सुभद्रा, घन्टोंतक भगवतीका मुहँ निहारा करतीं और बार बार यही उलहना देती कि उन्हें घर क्यों न पधराया।

मैं अपने बारामदेमें आरामकुर्सी पर लेटा था। मेरे सामने ही खम्भोंके सहारे वह मूर्ति धरी थी। अभी कल ही वह मुझे प्राप्त हुई थी—

कल मेरे मित्र......पहुंचे और कहने लगे—चलो ज़रा आज गहरे-बाजी-

का (१) मजा तो देख लो। उनके अनुरोधसे मैं रबरटायरवाले लक-दक किरायेके एक्केपर सवार हुआ। काशी निवासी होते हुए भी यह मेरे लिये नया अनुभव था। अतः मैं बड़े कुतूहलसे उस तेज़ घोड़ेकी चाल देखता हुआ शिवपुर पहुंचा। एक पुराने कुएपर दरी बिछ गई—ठन्डई बनने लगी और मैं यों‍ही इधर-उधर टहलने लगा। हरी हरी बरसाती दूब अङ्कुरित हो रही थी। सूर्यास्तका समय था, आकाशमें रंगीन बादलोंका जमघट देखते-देखते मेरा पैर ठुकराया—देखता हूं, एक शिला खण्ड, अरे! वह तो एक प्राचीन मूर्त्ति थी। मैंने अपने मित्रको आवाज़ दी। उन्होंने आकर हंसते-हंसते कहा, लो, भगवान्‌ने यहां भी तुम्हारे खब्तका मसाला जुटा दिया। मूर्ति जमा करनेकी हालतमें कई बार वे मेरे सहायक हो चुके हैं। आज भी उनकी मददसे मैंने उसे सीधा किया। वाह क्या सुन्दर चीज थी। खुशी-खुशी मैं उसे घर ले आया। गुलदाऊदीके फूल उसे चारो ओरसे घेरे हुए थे। मैं बिना रुके हुए कहता गया—

"अब डेढ़ सौ वर्ष बाद मैंने उस मन्दिरको खँड़हर पाया। तुमने फि पृथ्वीमें अपना मुह छिपा लिया था, हरी घास तुम्हारे लिए चादर बनी हु थी। मैंने एक बार फिर तुम्हारा उद्धार किया। इस बार मेरी पत्नीको घरसे दूर रखनेका उलहना न देना पड़ेगा। उस बार तुमने मन्दिरमें बैठकर मेरा कल्याण किया था, इस बार इन सुन्दर फूलोंके तलेसे........"

मैंने एक बार साभिलाष नयनसे उस मुखकी ओर देखा। हृदय हरा हो उठा। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उस मूर्तिका सहज सस्मित मुख और भी मुसकरा रहा है। उससे एक दिव्य प्रभा आलोकित हो रही है। और यद्यपि उसने मुख नहीं खोला था, तो भी वह मुझसे कह रही थी—

"यह सब तुम्हारी कल्पना नहीं सच्ची बात है। किन्तु तुम इस दो बारके पहिले एक बार और मुझे रक्षित कर चुके हो। यही नहीं; तुम्हीं तो मेरे निर्माता भी थे। क्या यह सब भी तुम्हें याद नहीं?"

(१) होड़में दौड़े हुए इक्कोंकी दौड़को बनारसमें गहरेबाज़ी करना कहते हैं।

## पं० बालकृष्ण शर्मा नवीन

जन्मकाल १८९७ ई०

रचनाकाल १९१८ ई०



पं० बालकृष्णशर्मा नवीन

# गोई जीजी

"अपने छोटेसे जीवनमें मैं न जाने कहाँ कहाँ घूमा हूं। न जाने कितने सान्ध्य प्रकाशमें मैंने मानसिक परिस्थितियोंका विश्लेषण किया है; किन्तु......"

मेरे मित्र गोपाल कृष्ण कहते कहते रुक गये। शनिवारकी रात, कालेजके होस्टलोंमें आनन्द-रात्रि ( Golden Night ) के नामसे पुकारी जाती है। रातके कोई आठ बज चुके होंगे। हम सब लोग ब्यालू कर चुके थे। आजकी रात आनन्द-रात्रि थी। मैंने सोचा, चलो, आज गप्पें उड़ावें। इसी ख्यालमें मै अपने मित्रके कमरेमें आया। गोपाल कृष्ण हम सभोंके प्यारे है। वे विचारशील हैं, हँसमुख हैं, क्लासके अच्छे विद्यार्थियोंमेंसे हैं। मेरी और गोपालकी ज्यादा पटती है। कमरेमें घुसते ही मैंने देखा कि वे खिन्नमना बैठे हुए कुछ सोच रहे हैं। मैंने अपने स्वभाव-चापल्यके वशीभूत होकर पूछा—

"क्या सोच रहे हो स्यां ?" उत्तरमें उपयुक्त वाक्य उन्होंने बड़ी गम्भीरतासे कहे। मैंने देखा कि मामला कुछ बेढब है। मैं चुपचाप उनके पास बैठ गया। बिजलीकी बत्तीसे कमरा खब आलोकित हो रहा था। गोपाल "किन्तु" कह-कर रुक गये। मैंने धीरेसे कहा।

"किन्तु, किन्तु क्या गोपाल ?"

"कुछ नहीं हरि, जाने दो।"

"आखिर कुछ कहो भी तो।"

"क्या करोगे सुनकर ?"

"नहीं, जरूर कहो।"

"हरिशरण, सुनोगे ?"

"जरूर सुनूगा।"

"देखो, सोच लो।"

"सोचनेका इसमें क्या है भाई, तुम कहो मैं सुनूगा।"

"हरि, एक कथा है, खैर, सुनो।"

मैंने अपनी आँखोंसे जता दिया कि सुनाओ। गोपाल बोले "तो पहले कमरेका दरवाजा बन्द कर लो।" मैंने चटकनी लगा दी। गोपालने कुर्सीके हत्ते पर अपने बांयें हाथकी कोहनी रखकर अपने सिरको अपनी हथेली पर रख लिया। फिर वे धीरेसे कहने लगे—"हरि, मसूरी पहाड़से मैंने सूर्यास्तका दृश्य देखा, समुद्रके तट पर खड़े खड़े मैंने अंशुमालीको समुद्रमें डुबकी लगाते देखा, और भी न जाने कहां कहांकी सन्ध्याओंको आँख भर कर देखा। किन्तु वह मना नहीं। वह सूर्यास्त मैंने फिर कभी नहीं देखा, जो मैंने अपने बाल्यकालीन क्रीड़ा-स्थलसे देखा था। हमलोग पहले एक गांवमें रहा करते थे। एक दिनकी घटना मेरे अन्तरतम पटल पर अंकित है।

"सूर्य दल चला था। मेरी फूसकी टपरिया खूब साफ-सुथरी थी। आंगन लिपा-पुता नहीं था। किन्तु पानी बरस जानेसे साफ हो गया था। सावनका महीना था। मेरी माँ, सूपमें कुछ अन्न—याद नहीं आता कौनसा—लिये

हुए फटक रही थीं। मैं उसके पास ही खेल रहा था। मैं उस समय कोई छः सात वर्षका था। मेरे सब कपड़े—केवल एक अगरखी—धूलमें सनी हुई थी। हाथ पैर सूखे हुए कीचड़से लथपथ थे। माँ मुझे "भैया" कहकर बुलाया करती थीं। मेरे एक गाय थी—उसका नाम लक्ष्मी था; किन्तु हम लोग उसे लच्छी कहकर पुकारा करते थे। मैं लच्छीका दूध पीता था; माँ का केवल मुझ ही में केन्द्रित पुत्र-स्नेह पीता था। खूब पुष्ट शरीर था। गाँवके पास एक आमका बगीचा था। गाय जब जङ्गलसे आती तो वहीं उस बगीचेमें खड़ी खड़ी रँभाया करती थी—"ओ म्हा म्हा!" जब तक माँ न बुलाती तब तक वह वहाँसे रँभाया करती थी। माँ घरसे चिल्लाकर कहती थी—"लच्छी आजा, आ बेटी" तब गाय दौड़ती हुई घर आ जाया करती थी। हरि, बड़ा सुख था। बड़ी सुखद सन्ध्या थी।

"आकाशमें बादलके टुकड़े दौड़ रहे थे। तब तक मैंने जन्ममें कभी नाव या जहाजकी तसवीरें नहीं देखी थीं। बादल जब तरह तरहकी शक्लें बनाकर इधर उधर दौड़ रहे थे तब मैं किलक किलक कर माँ से कहता था—'माँ, देख वह एक बड़ा सा बैल बन गया। अब देख री माँ, लच्छीकी सूरत बन गई। माँ! जो ये बादल भी लच्छीका सा दूध बरसायें तो?'

"माँने कहा—'और जो पत्थर बरसायें तो?' 'तो फिर हमारा घर टूट जाय।' मेरी बात सुनकर माँ हँस पड़ी।

"गाँवमें सावनके महीनेमें बड़ा सुहावना लगता है। हरि, हमारा छोटासा गांव मानो आनन्दसे नहा रहा था। दूर दूर तक हरियाली दिखाई पड़ती थी। घासके बिछौने पर बीरबहूटियाँ चलती थीं और घरोंमें बहिने मेंहदी लगाये घूमती थीं। नीम और आमके झाड़ों पर गाँवमें जगह-जगह झूले बँधे हुए थे। गाँवकी लड़कियाँ झूलोंमें झूलती थीं। झूल झूल कर मधुर गीत गाती थीं :—

'अरे रामा हरी हरी चुरियाँ बाँह गहे पहिरावत गिरिधारी।' क्या अच्छा समय था। वर्षा खासी हुई थी। अकालका भय नाम मात्रको न था। गाँवके

वृद्ध लोग लड़कियोंका गाना सुनकर मग्न हो रहे थे। उनकी वृद्ध सतेज आँखोंमें निर्म्मलता थी और हृदयमें प्यारके पुनीत भाव। इस लोकोत्तर आनन्दके लिए वे एक अज्ञेय तथा अज्ञात शक्तिके कृतज्ञ नहीं थे। कभी कभी वे मौन होकर, शान्त, स्थिर नेत्रोंको, कृपाके भारसे दबी हुई पलकोंसे, मूँद कर ऊपरकी ओर बादलोंको देखकर चुप रह जाते थे। मैं तब इन बातोंको कुछ समझ नहीं सकता था।

"हाँ, तो माँने कहा—'भैया, अब राखी आई। तेरी गोई जीजी आयेगी।'

"मेरी बड़ी बहिनका नाम गोदावरी था। मैं उसे गोई जीजी कहा करता था। जीजी आयेगी,—यह सुनकर मैं बड़ा खुश था। माँको बहुत सी कथाएं याद थीं। मुझे कथा सुनना बहुत आता था। माँ बोली—

"भैया, राखीकी कथा सुनेगा ?"

"मैंने चाव भरी आंखोंसे देखते हुए गर्दन हिला दी। पिताजी घर पर नहीं थे। वे जीजीको लेने उसकी ससुराल गये थे।

"माँने कहना शुरू किया—'सुन, कृष्ण थे'

"मैं झटसे बोल उठा—'अच्छा !! फिर ?'

"माँ बोली—'उनके एक बहिन थी जिसका नाम सुभद्रा था'

"मैंने फिर बात काट दी। चटसे पूछा 'माँ क्या वे अपनी बहिनको मलाई देते थे ?' बात यह थी कि मैं बड़ा पेटू था। मैं लच्छीके दूधकी मलाई जीजीको नहीं लेने देता था , लड़ झगड़ कर मैं ही सब खा जाता था। माँने कहा 'दुत् पगल, नहीं तो क्या तेरे ऐसे खाऊ सभी होते हैं ? वे दोनों बहिन—भाई आपसमें बाँट कर खाते थे।'

"इतना कह कर माँ घरमें अन्न रखने चली गई। माँ आकर फिर बैठ गई। मैं उसकी गोदमें लेट गया। प्यारसे माँके स्तनको हिलाकर बोला—'हाँ फिर ?'

"इतनेमें ही एक बैल गाड़ी आती हुई दिखाई दी। पिताजीकी सफेद

पगड़ीको माँने दूर ही से पहचान कर कहा—'गोदावरी आ गई।' सुनते ही मैं उठकर खड़ा हो गया। मैं बड़ा प्रसन्न था। जीजी आई। कुछ बाल-हृदयोंमें एक प्रकारका संकोचका भाव होता है। कभी कभी अपनोंके प्रति भी यह भाव प्रस्फुटित हो जाता है। इसी लिए जब दीदी आई, तब मैं दूर खड़ा रहा। उसने मुझे दौड़कर उठा लिया। मैंने कहा—'गोई जीजी'—शब्दोंमें आह्लाद-मिश्रित एक अद्‌भुत तरल-किलक थी।

"बहिन बोली—'भैया मेरा'—शब्दोंमें थरांवट थी! वत्सलताके आवेगने कण्ठ-रन्ध्रको भर दिया था।

"हरि, अब भी याद है;—वही मुख, अहा! वत्सलता आंखोंसे टपक पड़ती है। अब भी याद है चूड़ियोंसे भरी हुई लम्बी-लम्बी बाहें अब भी फैलकर बुलाती हैं—'आ!' हरिशरण! अब भी अपने कमरेको बन्द कर रात्रिकी निस्तब्धतामें बुलाता हूं—'गोई जीजी!' मेरी वह पुकार शून्य हृदयाकाशमें विलीन हो जाती है। हे आनन्दके क्षण, हे अमिट स्मृति, दीदी-के मांगके सेन्दुरकी हे पवित्र सुगन्धि, मेरे कपोलोंको सिक्त करनेवाले हे वत्सलताश्रु, तुम सब न जाने किस वायुके झकोरेके साथ आ जाते हो?

"याद—किसी क्षणकी क्यों न हो, चाहे दुःखोंके क्षणकी हो अथवा सुखोंके—किन्तु इसके बिना जीवन उजाड़ हो जाता है।

"हां, तो हरि, सुनो, दीदीकी कथा सुनो। वर्षों गुजर गये, हम सब लोग शहरमें आकर बसे। बहिनकी ससुराल पास ही के गांवमें थी। पिताने मेरे शिक्षा-क्रमको ठीक किया। दीदीके दर्शन अब भी हो जाया करते थे। ससु-रालसे समय-समय पर आ जाती थीं—मुझे खिलाती थीं, मेरा दुलार करती थीं। कायर जीजा आलस्यकी मूर्त्ति था। जीजी ही उसका और अपना पेट पालती थी। मजदूरी करके लाती थी। खेतोंमें जाकर काम करती थीं। सावन-भादोंके दिन। पानी कहता था आज ही बरस लूंगा। खेतोंमें घुटनों तक जल भर जाता था। तो भी पेटकी ज्वाला न बुझती थी। इतना पानी, तो भी आग धधका करती थी। इसको बुझानेके लिए जीजी अपने वेदना-जन्य

आंसु, कठोर परिश्रम-जनित स्वेदकी बूंदें, और बचा-खुचा हृदयका लहू देती थीं, तब कहीं जाकर भूखकी लपकती हुई लपटें बुझती थीं। दुष्ट जीजा खा-पीकर अथाईमें जा बैठता था। जब तक वह वहां पड़ा-पड़ा सोया करता था तब तक दीदी हंसिया लेकर कींचड़ गूधा करती थीं। गांवके लोग देखते थे; कहते थे—'गोदावरी सती है।' कुछ वृद्ध लोग जीजासे कहते थे—'भले मानुष, जरा तो शरम खा। उस बिचारीका खून क्यों चूस रहा है?'

"पुरुषार्थ-हीन प्राणियोंमें मनुष्यताका अभाव होता है। कभी-कभी आरम्भ शूरता आ जाती है, किन्तु टिकती नहीं। भर्त्सना सुनते-सुनते जीजा निर्लज्ज हो गया था। स्वाभाविक आलस्यने और निर्लज्जतापूर्ण बेपर्वाही तथा मस्तीने जीजाके मानके चित्तसे दयार्द्र भाव नाश कर दिया था;—जीजीके कठोर-श्रम तथा उसकी हृदय-विदारक स्थितिकी ओरसे जीजाकी सहानुभूति बिलकुल जाती रही थी।

"जीजीके शरीर पर एक ही साड़ी थी। नहाते समय उसीको पहने नहा लेती थीं। पादको आड़में छिपकर आधी साड़ी सुखाकर उसे पहिन लेती थीं; फिर वह भींगी आधी साड़ी सुखा पाती थी। माता-पिता यह सब सुनते थे। कलेजा मसोस कर रह जाते थे। क्या करते? फिर भी यथा-सामर्थ्य सहायता करते ही थे, लेकिन कहां तक करते?

"इसी लिए कहता हूं हरि, संसारमें अधिकतर, मनुष्य नहीं शैतान बसते हैं।" गोपालकी यह कथा सुन कर मेरी आंखें छलछला आईं। गोपाल बोले —

"हरियाणा, रोते हो? रोओ—मैं न रोकूंगा। न जाने क्या हुआ—मेरी आंखोंका पानी सूख गया है।'

मैं अपनेको न सम्हाल सका। मैंने कुर्सी परसे उठते हुए कहा—"गोपाल! अब तुम अपनी इस करुण कथाको बस करो। मैं नहीं सुन सकता।"

गोपालचन्द्रका चेहरा तमतमा उठा। उसकी यह उत्तेजना देखकर मैं

बांध और भी टूट गया। बेचारा गोपाल—गोपाल, तुमने इस उत्तेजनाका क्या मूल्य दिया है—जानते हो ?

यह उत्तेजना क्या थी ? आन्तरिक यन्त्रणाने निर्दयतापूर्वक तारोंको बजा दिया। स्वर नहीं निकले ;—एक विकृत-तान उठी ; वही यह उत्तेजना थी। गोपालने उत्तेजित होकर कहा—"हरि ! तुम्हें सुनना होगा।"

मैंने हृदयपर पत्थर रख कर कहा—"कहो।"

गोपाल टूटे हुए स्वरमें कहने लगा—"आपत्ति सहन करते-करते जीजी क्षीण हो चली। एक दिन, रातको नौ बजे हम लोगोंको खबर लगी कि जीजी बहुत बीमार हैं। उसी समय हम चल खड़े हुए। रातके एक बजे गाँवमें पहुंच गए। जङ्गलमें सियार बोल उठे और गांवमें कुत्ते। जीजीको सन्निपात हो गया था। हम सब किंकर्तव्य विमूढ़ थे। प्रकृतिका सौरभ, आकाशकी निर्मलता तथा गांवकी अभग्न शान्ति ये सब चिन्ता और विषादकी ज्वालाको न बुझा सके। दीपकका तेज कुछ अवशिष्ट था। अन्त होनेमें कोई विलम्ब नहीं था।

"हम सबके देखते-देखते जीजी अपनी माँ, अपने 'काकाजी,' और सबसे अधिक अपने इस भैयाको छोड़कर चल दी। हरि ! हृदय फट जायगा—हरि हृदय न जाने, क्यों नहीं फटता !"

इतना कहकर गोपाल पागलोंके ऐसा, दौड़कर सन्दूकके पास गया। उसमेंसे कुछ निकाल कर ले आया। देखा कि एक सादे कपड़ेमें सूतका डोरा लिपटा हुआ रखा है। और उसमें एक दुअन्नी रखी है। गोपाल भर्राई हुई आवाज़से कहने लगा—

"हरिशरण, ये ही दो स्मरणकी चीज़ें रह गई हैं। उसका तैल चित्र नहीं है। उससे सतत बरसने वाले आशीर्वाद और उसकी निर्मल सदिच्छाकी चिन्ह-स्वरूपा यह राखी है, और यह एक दुअन्नी है। पेट काटकर—न जाने कितना खून देकर—उसने अपने भैयाकी मिठाईके लिए यह दुअन्नी बचाई थी, यही वह दुअन्नी है। हरि ! मेरी गोई जीजी—मेरी प्रति जननी, गोई

जीजीकी यही कहानी है। जिसकी उत्सङ्गमें पला, जिससे इतना लड़ा, जिससे मलाई छीन कर खाई, जिससे सदा सर्वदा 'गोई-जीजी' कहता रहा, हंसियां और खुर्पी थामनेसे ठाठ पड़े हुए जिसके पुनीत हाथोंके फटनेमें अवहेलित, अवहेलिता, सम्माननीय वात्सल्य दानका रस चखा, उस सतत स्मरणीया, आपत्ति-प्रताड़िता गोई जीजीकी यही स्मृति है। श्मशानका, उस रात्रिका और उस प्रातःकालका अन्तिम दृश्य मेरे सामने आ जाता है। एक बार फिर एकान्तमें उस स्थानके दर्शन करनेकी उत्कण्ठा होती है। वह स्थान मेरे लिये भयङ्कर है। रोमांचकारी है। दुःखकी स्मृतियोंको जाग्रत करने वाला है, पर पवित्र है!! हरि, मेरा मृतक शरीर भी उसी स्थान पर अग्निको समर्पण किया जाय और रात्रिसे प्रातःकाल तक जलता रहे—ऐसी भावना मुझको अनेकों बार हो चुकी है!!!"

इतना कह कर गोपालकृष्णका व्यथित हृदय न जाने किस वेदनाके रसास्वादनमें लवलीन हो गया। मैंने देखा कि उनके मुखपर एक अमिट विषाद-रेखा खिची हुई है!

घड़ीने बारह बजा दिये। इस पुनीत गाथाको सोचता हुआ मैं अपने कमरेमें चला गया।



## श्री चण्डीप्रसाद 'हृदयेश'

जन्मकाल १९५६ वि०

रचनाकाल १९१९ ई०

# उन्मादिनी

## १

संसार स्वार्थकी रङ्गभूमि है और इसी स्वार्थके वशीभूत होकर पण्डित रविशङ्करने अपनी अनाथिनी भानजीका विवाह एक ऐसे नर-पिशाचके साथ कर दिया था, जिसने उसका जीवन अग्निमय बना दिया। इतने पर भी सारे गांवने एक स्वरसे पण्डित रविशङ्करकी उदारता और मृत-भगिनीके प्रति उनके असीम स्नेहकी परम प्रशंसा की थी। पण्डित रविशङ्करने अपनी मातृ-पितृ-हीना भानजी सौदामिनीके लिए जो पति निश्चित किया था, वह लखनऊके एक कारखानेमें ३०) मासिक पाता था। पर, उन्होंने इस बात पर रत्तीभर भी ध्यान नहीं दिया कि, जिसके साथ सौदामिनीको अपना समस्त जीवन व्यतीत करना है, उसका आचरण कैसा है? उसका स्वभाव, उसका शील

एवं उसका व्यवहार ऐसा तो नहीं है जिससे सौदामिनीको क्लेश और दुःख पहुंचे। इन बातोंकी ओर पण्डित रविशङ्करका ध्यान नहीं था, वे तो यह चाहते थे कि, कम-से-कम धनमें कन्यादानका महाफल प्राप्त करलें। इसी लिए उन्होंने सस्ता वर ढूढ़ कर सौदामिनीको उसके हाथोंमें सौंप दिया। गांववालोंने जब सुना कि, सौदामिनीका पति ३०) मासिक उपार्जन करता है, तब तो वे सौदामिनीके भाग्यको सराहने लगे और राजराजेश्वर जैसे वरके साथ सौदामिनीका विवाह करनेके लिए पण्डित रविशङ्करकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

सौदामिनी भी मन ही मन प्रसन्न हुई। बाल्यकाल ही में वह माता-पिताके मधुर वात्सल्यसे वंचित हो गई थी और यद्यपि लोक-लाजके कारण मामा रविशङ्करने उसे अपने घरमें आश्रय दिया था। पर, मामी और मामाका व्यवहार उसके प्रति इतना कठोर था कि, वह उस आश्रयको छोड़कर दूसरे आश्रयमें जानेके लिए रत्तीभर भी दुखी नहीं हुई; प्रत्युत उसे कुछ न कुछ प्रसन्नता ही हुई। अनाथिनी होनेके कारण सौदामिनीका विवाह कुछ अधिक वयसमें हुआ था; अर्थात् उस समय सौदामिनीने अपने १६ वे वसन्तमें पदार्पण किया था, इसी लिए वह विवाहके रहस्य और अर्थको कुछ-कुछ जान गई थी। यद्यपि विदाके समय विलाप करते हुए मामा और हाहाकार करती हुई मामीके गलोंसे मिल कर उसने भी अजस्र अश्रु-वर्षा की थी; परन्तु वारवार यह सोचकर कि, अब वह दासीके पदको छोड़कर स्वामिनीके पदको अधिकृत करने जा रही है, उसका हृदय उल्लासमय हो उठता था और उस अविरल विलापके बीचमें भी उसका शरीर पुलकित हो जाता था। सौदामिनीके अन्तरमें बार-बार यही विचार उठते थे कि, अब वह मामा और मामीके दुर्व्यवहारोंसे छूटकर अपने देवताका पूजन करेगी और उनके हृदय पर अपना शिर रख कर इसी स्थूल संसारमें स्वर्गके सुखोंका अनुभव करेगी। उस समय स्वभावतः उसके मनमें एक प्रकारका गौरवका भाव उदय हो गया था और उसके सुन्दर मुख-मण्डल पर आनन्दकी

उज्ज्वल आभा क्रीड़ा कर रही थी। जिस प्रकार पण्डित रविशङ्कर सस्तेमें कन्या-दानका महाफल पाकर मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे, उसी प्रकार सौदामिनी भी उस बन्दीगृहसे छूटने पर अन्दर ही अन्दर उल्लासमयी हो रही थी। दोनों अपनी अपनी प्रसन्नताको विलाप और आंसुओंके आवरणमें छिपाये हुए थे। यदि परम्परासे यह न चला आया होता कि, विदाके समय कन्या और उसके संरक्षक विलाप करें तो उस दिन न तो सौदामिनी ही अश्रु वर्षा करती और न पण्डित रविशङ्कर और उनकी स्थूलकाया धर्मपत्नी ही हाहाकारसे समस्त घरको मुखरित करतीं। तीनों ही आनन्दमें हंसते रहते। प० रवि-शङ्कर और उनकी धर्मपत्नी सौदामिनीको उसके पतिके हाथोंमें सौंप कर आनन्द-पूर्वक घर बैठ रहते और सौदामिनी मुसकुराती हुई अपने परमेश्वरके साथ चली जाती; सम्भवतः फिर एक बार भी पीछे फिर कर न देखती। पर, बलिहारी है परम्पराकी! इसकी प्रतिष्ठाके लिए एक नहीं, अनेक बार कपट तथा आडम्बरका अभिनय करना पड़ता है। और फिर भी हम परम्पराकी पूजाके लिए कितने प्रयत्नशील हैं?

विश्व-वनमें प्रस्फुटित होनेवाले पुष्पके कोषमें हलाहलका अंश अधिक है अथवा सुधाका—यह जानना सीमाबद्ध बुद्धिके लिए एकान्त कठिन है।

## २

सौदामिनीके पतिका नाम था कालीशङ्कर। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, वह लखनऊके एक कारखानेमें ३०) मासिकपर काम करता था। गाँव वालोंकी दृष्टिमें ३०) रु० मासिककी वृत्तिका मूल्य बहुत हो सकता है। परन्तु जो बड़े-बड़े नगरोंमें रहते हैं, वे जानते हैं कि, ३०) में अच्छी तरह भोजन और लाज ढकनेको वस्त्र मिलना भी दुष्कर होता है। पर, कालीशङ्करके लिए यह बात नहीं थी, कारण वह एकाकी था। न उसके माता थी न पिता, न भाई न बहन, न कुटुम्ब न परिवार। एक गन्दे और बुरे मोहल्लेमें उसने एक टूटा-फूटा मकान ले रखा था। उसीमें आकर सौदामिनीने अपने दाम्पत्य-जीवनका

श्रीगणेश किया। सौदामिनी सदासे परिश्रमशील थी, आते ही आते उसने घरको परिष्कृत किया। जो कुछ थोड़ा बहुत सामान घरमें था, उसे यथा रीति स्थापन किया और जो कुछ दहेजमें आया था, उसे भी उसने यथास्थान स्थापित किया। थोड़े ही दिनों पहले जो घर नरकका एक कक्ष-सा प्रतीत होता था, अब वह स्वर्गकी एक परिष्कृत कुटी-सा प्रतीत होने लगा। परन्तु जिस देवताको पूजाके लिए उसने गृह-मन्दिरको परिष्कृत एवं सुसज्जित किया था, वह उसकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखता था। जिस हृदयेश-के लिए उसने समस्त गृहको एक अपूर्व माधुरीसे मण्डित किया था, वह उसके अतुल निर्मल प्रेमकी उपेक्षा ही करता रहा!

कालीशङ्करकी शिक्षा केवल नाम लिख लेने तक ही परिमित थी। हाथ-का कारीगर होनेके कारण यद्यपि उसे ३०) मिलते थे, परन्तु इन रुपयोंका अधिकांश भाग दुर्व्यसनोंकी बलिवेदी पर स्वाहा हो जाता था। विवाहके उपरान्त कुछ दिनों तक तो वह रातको घरमें रहा भी; परन्तु, फिर तो वह कई-कई दिनों तक घर ही न आता। केवल सायङ्कालको कारखानेसे लौटता और भोजन करके चला जाता। इस बीचमें सौदामिनी नित्य उसके काले कपड़ोंको धो रखती, उसके लिए स्वादिष्ट भोजन बनाती, उसके लिए सब प्रकारसे सुख पहुंचाने वाली सामग्रीकी आयोजना करती। परन्तु, वह स्नेहमयी सौदामिनीकी इस प्रेममयी परिचर्याकी ओर रत्तीभर भी ध्यान न देता और दो-दो तीन-तीन दिनों तक घरसे अनुपस्थित रहता!

इतना ही नहीं, धीरे-धीरे उसने सौदामिनीके आभूषणोंको भी लेकर दुर्व्यसनोंकी अग्निमें भस्म कर दिया। होते-होते यहाँ तक स्थिति बिगड़ गई कि, घरके बर्तन भी बिकने लगे और अन्तमें यह गति हुई कि, सौदा-मिनीके आने पर जो घर भरा-पूरा दिखाई देने लगा था, वह एक बार ही खाली हो गया। केवल मात्र २-४ आवश्यकीय चीज़ें रह गईं। पर, इतने पर भी कालीशङ्करकी मति ठीक नहीं हुई। वह दुर्व्यसनके पङ्कमें आकर निमग्न हो गया!

सौदामिनीने यह सब सहा; मौन होकर, मन ही मन अशेष यातनाका अनुभव करके, उसने पतिके इन सब अत्याचारोंको सहन किया। परन्तु, जब कालीशङ्करने छोटी-से-छोटी बातपर उसे और दुःख देना प्रारम्भ किया, जब तीन-तीन दिनों तक उसके मुखमें अन्नका एक दाना तक नहीं पड़ा और जब लज्जा-निवारणके लिए भी उसे वस्त्र मिलना कठिन होगया, तब सौदामिनीकी सहन-शक्ति भी समाप्त हो गई। वह भी अब उत्तर-प्रत्युत्तर देने लगी और उसका परिणाम यह हुआ कि, अब उसके ऊपर आघातोंकी निरन्तर आवृत्ति होने लगी। सौदामिनी बड़ी तेजस्विनी प्रकृतिकी रमणी थी। वह बहुत कुछ सह सकती थी, पर जब उसका हृदय पतिके निरन्तर अत्याचारसे एक बार व्यथित एवं व्याकुल हो गया, तब उसकी वह तेजस्विता सहसा प्रचण्ड रूपसे प्रगट हो गई। वह स्पष्ट शब्दोंमें कालीशङ्करकी उसके कुगुणों और दुर्व्यसनोंके लिए भर्त्सना करने लगी।

कालीशङ्करने जहाँ मकान ले रक्खा था, वहां पर एक भी भले आदमीकी बस्ती नहीं थी। चारों ओर गुण्डे और बदमाशोंके मकान थे और उनके बीचमें ही रात्रिको सौदामिनी एकाकी अपने शून्य-गृहमें पड़ी रहती थी। इस लिए उसे बहुत ही भय लगता था। एक दिनकी बात है। कालीशङ्कर कारखानेसे आ चुका था; भोजन इत्यादि करके वह बाहर जानेको समुद्यत था। उसी समय सौदामिनीने धीरे-धीरे कहा—"यह घर अच्छा नहीं है! कोई दूसरी जगह अच्छा घर क्यों नही ले लेते हो!"

कालीशङ्कर—"मामाजीके घरसे बड़ी सम्पत्ति लेकर आई हो, जिससे इस टूटे घरमें रहना अच्छा नहीं लगता।"

सौदामिनी—"सो बात नहीं है। यहां पर चारों ओर बदमाश रहते हैं, जब तुम नहीं होते हो, तब मुझे बड़ा भय लगता है।"

कालीशङ्कर—"क्यों? क्या किसीसे आंख लड़ गई है। बदमाश हैं तो क्या? तुम्हारे घरमें तो नहीं घुसते है!"

सौदामिनी—"घरमें तो नहीं घुसते हैं; पर तुम रात-रात भर बाहर रहते हो, तब यदि वे घरमें भी घुसें, तो मुझे कौन बचावेगा ?"

कालीशङ्कर—"तब मैं क्या तुम्हारा नौकर हूं, जो तुम्हारे पैरोंके पास रात-दिन बैठा रहूं। चलो हटो! मैं यह कुछ नहीं जानता। जो अच्छी स्त्रियां हैं, उनका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

इतना कहकर कालीशङ्कर जल्दीसे बाहर चला गया। सौदामिनी उसी स्थान पर खड़ी रोती रही। थोड़ी देरके उपरान्त उसने ठण्ढी सांस ली और बाहरका द्वार बन्द करके अपनी शून्य-शय्या पर पड़ रही। उस समय उसके कोमल हृदयमें किस प्रकारके विचार उठ रहे थे यह सहृदय पाठक-पाठिकायें स्वयं जान सकती हैं।

इस विश्वमें कोई-कोई प्राणी ऐसे भी हैं, जिन्हें आजन्म दुःखकी अग्निमें जलना होता है। वे सुखकी प्राप्तिके लिए जितनी ही चेष्टा करते हैं, उतना ही वह उनसे दूर होता जाता है।

तीन दिन तक कालीशङ्कर नहीं लौटा।

दूसरे दिन सौदामिनी पास ही के नलसे पानी लेकर अपने घरकी ओर चली ही थी कि, सामनेसे एक युवक आता हुआ दिखाई दिया। सौदामिनी और उसकी आंखें चार हुईं। लज्जासे सौदामिनीने तो अपनी आंखें नीची करलीं; पर, वह निर्लज्ज युवक बराबर उसकी ओर देखता रहा। इतनेमें ही सौदामिनी अपने द्वार पर आ पहुंची और उसी समय उस युवकने उर्दूकी शृङ्गारमयी कविताएँ पढ़नी आरम्भ कीं। सौदामिनी अपने घरमें चली गई। परन्तु, उसी दिनसे उसका मन और भी खिन्न रहने लगा। रात-रात भर वह निद्राविहीन पड़ी रहती। इधर यह गति हो गई कि, वह भ्रष्ट युवक दिन और रातमें दस-बीस बार उसके द्वार पर आकर उर्दूकी कविताएं पढ़ता; उसको लक्ष्य करके व्यङ्ग वचन कहता और रात होते ही अपने पास ही के मकानसे उसीको उद्देश्य करके, अश्लील गाने गाया करता।

सौदामिनी सब कुछ सहती। सहनेके अतिरिक्त और उसके पास उपाय ही क्या था? पर, उसी दिनसे, उसी घटनाके समयसे, उसे अपने पतिके प्रति घोर घृणा हो गई। एक दिन वह जिसकी पूजा करनेके लिए आकुल हो उठी थी, जिसकी प्रसन्नता और प्रेमको प्राप्त करनेके लिए उसने समस्त मानव-साध्य प्रयत्न किए थे और मूक भावसे जिस हृदयहीनके प्रहार और अत्याचार सहन करके भी जिसकी मानसिक प्रतिमाकी आराधना की थी, आज उसी पतिके प्रति उसे ऐसी घृणा उत्पन्न हो गई कि, मानो वह एक भ्रष्ट अपदार्थ हो। उसकी सारी श्रद्धा विलीन हो गई और उसका हृदय कालीशङ्करके प्रति रोष और जुगुप्सासे परिपूर्ण हो गया। उसने मन ही मन कहा—जो पुरुष अपनी स्त्रीको छोड़ कर इस प्रकार दुर्व्यसनोंमें निमग्न हो, जिसने असहाया भार्य्याको ऐसे भ्रष्ट एवं निकृष्ट स्थानमें लाकर रख दिया हो और आप निश्चिन्त होकर, आनन्दसे भ्रष्ट स्त्रियोंके साथ विहार करता फिरता हो, उस पुरुषकी आराधना करना, उसके प्रति श्रद्धा रखना एवं उसे अपने प्रेमका पवित्र पात्र मानना पाप है। ऐसे भ्रष्ट अपदार्थको सौदामिनी अपना हृदयेश बनाकर उसकी पूजा नहीं कर सकती। सौदामिनी पतिके प्रति तीव्र आक्रोशको हृदयमें धारण करके किसी न किसी भांति जीवन व्यतीत करने लगी।

मानव-प्रकृति, शास्त्रोंके शुष्क उपदेशोंसे विशेष बलवती है। इस लिए जब प्रवृत्ति और आर्ष वाक्योंमें परस्पर विद्रोह उत्पन्न हो जाता है, तब सदा ही विजय होती है प्रवृत्ति की। विश्वका वर्तमान तथा अतीत इतिहास इस बातका साक्षी है।

## ३

इस प्रकार लगभग तीन वर्ष व्यतीत हो गये। इन्हीं तीनों वर्षोंमें सौदामिनी एक निर्बल पुत्रकी जननी भी हो गई। पिताने व्यभिचार और वारुणीकी बलि वेदीपर अपने परम दुर्लभ स्वास्थ्यका बलिदान कर दिया

था, उसका परिणाम भोगना पड़ा उस निर्बल, निर्बोध शिशुको ! थोड़ी-सी ठण्डसे, थोड़ी सी असावधानीसे सौदामिनीका हृदय-लाल बीमार पड़ जाता। परन्तु सौदामिनी माताकी समस्त ममतासे उसकी परिचर्य्या करती, अब वही उसके जीवनका लक्ष्य हो गया था और सौदामिनी अपने हृदयहीन पतिके उस पुत्रको ही लेकर अपने असार एव सन्तप्त जीवनको सान्त्वना देती थी। वह रात-दिन अपने उसी ककाल-शेष निर्बल शिशुको लिए हुए बैठी रहती। एक तो जन्मका निर्बल, तिसपर घोर दारिद्र्यने उसे अपने अत्याचार-यन्त्रमें और भी पीस डालनेका यत्न किया। जो सौदामिनी हृष्ट-पुष्ट शरीर लेकर कालीशङ्करके आश्रयमें आई थी, वही सौदामिनी आज अस्थि-पञ्जर मात्र लेकर अपने प्यारे पुत्रकी परिचर्य्यामें प्रवृत्त रहती है। इसी लिए दुर्बल सौदामिनीके चर्म-शेष स्तनोंमें उस पवित्र दूधकी कलकलमयी धारा प्रवाहित नहीं होती थी, जिसे पान करके विश्वके समस्त बालक बलिष्ठ और परिपुष्ट होते हैं। जो कुछ दो-चार बूंद दूध निकलता भी था उससे उस क्षुधातुर बालकको बुभुक्षा शान्त नहीं होती थी। सौदामिनीके पास स्वय इतना पैसा नहीं था, जो वह उसके लिए गायके दूधका प्रबन्ध करती और उस हृदयहीन पिताका इस ओर कणमात्र ध्यान नहीं था। पुत्र मरता है या जीता, पत्नी बुभुक्षिता है अथवा तृषित—इन सब बातोंकी ओर दुर्व्यसनी कालीशङ्करको ध्यान देनेका अवकाश नही था। वह आता, लड़ता, सौदामिनीको मारता और चला जाता। यदि कभी वह कुछ अन्नादिक ले आता, तो उसीसे काम चलता और नहीं तो सौदामिनीको सौभाग्यवती होते हुए भी नित्य एकादशीका निराहार व्रत पालन करना पड़ता था। उधर उसका जीवन-सर्वस्व उसका एकमात्र आधार, उचित भोजनके अभावमें धीरे-धीरे मृत्यु-देवीकी ओर अग्रसर होता जाता था, और सौदामिनी असहाया, अबला, अभागिनी सौदामिनी—रो-रोकर अपने दिन और रात कष्ट और क्लेशके साथ व्यतीत करती थी !!

इधर वह भ्रष्ट युवक नित्य सौदामिनीके द्वारपर दस-पाँच बार आकर

अश्लील कविताओंका गान करता था; मानो सौदामिनीको अपनी अङ्कशायिनी बनानेका उसने पापमय प्रण कर लिया था। नित्य प्रति वह आता, गाता और अश्लील व्यङ्ग करता। यद्यपि प्रथम दर्शनके उपरान्त कई बार सौदामिनी और उसका साक्षात् हुआ था; पर, सौदामिनीकी तेजस्विता, उसके विशाल लोचनोंमें लीला करनेवाली रोष-रक्तिमा और उसके अधर-देशपर नृत्य करनेवाली घृणाको देखकर उसके सामने कुछ कहनेका उसे साहस नहीं होता था। अपरोक्ष रूपसे उसने उसे धन और आभूषणोंका प्रलोभन दिया; पर, सौदामिनीने उसकी प्रार्थनाको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखा, सदा उसके प्रति क्रोध ही प्रदर्शित किया। भूख और प्यासके प्रहार उसने सहे। अभाव और अत्याचारके आघातोंको सहन किया। पर, उसने उस भ्रष्ट युवककी ओर एक बार भी सद्भावसे नहीं देखा। जब-जब वह उसके दृष्टिपथपर आया, तब-तब उसने उसकी ओर उसी कराल, क्रूर दृष्टिसे देखा, जिसके कारण उस युवकका आगे बढ़ने तकको साहस नहीं हुआ।

सन्ध्याकी शोभा रात्रिके क्रमशः प्रगाढ़ होते हुए अन्धकारमें विलीन हो गई है। विशाल गगन-मण्डलमें धीरे-धीरे तारकाओंका उदय होने लगा है और दिवसका विकल कोलाहल रात्रिकी नीरव-शान्तिमें धीरे-धीरे विलुप्त होता जा रहा है। दिन भरके तीव्र ज्वरके उपरान्त अभी थोड़ी देर हुई सौदामिनीका पुत्र निद्रा-देवीकी गोदमें विश्राम करने लगा था। उसे शय्यापर छोड़ कर सौदामिनी दीपक जलानेके लिए उसके कक्षसे बाहर आई। एक दीपक जलाकर उसने रोगी शिशुके कमरेमें रख दिया और दूसरा लेकर वह आंगन में रखने जा रही थी। उसी समय मदसे उन्मत्त कालीगङ्करने घरमें प्रवेश किया। सौदामिनीके लिए यह नया दृश्य नहीं था; एक नहीं, अनेक बार उसके मदोन्मत्त क्रोधकी अग्निको वह सहन कर चुकी थी। उदासीन भावसे दीपकको उसने एक ओर आलेमें रख दिया। कालीगङ्करने उन्मत्त भावसे कहा—"भोजन तैयार है?"

सौदामिनीने उपेक्षाके स्वरमें उत्तर दिया—"भोजन!—भोजन क्या

दीवारकी मिट्टीका बनाया जाता है ? भोजन तो अन्न ही से बनता है। सो अन्नके नाम घरमें आज दो दिनसे एक दाना भी नहीं है।"

कालीशङ्कर यह सुनकर रोषसे अग्नि-शर्मा बन गया। उसने कहा—"इतना लाता हूँ, पर जब देखो तब घरमें अन्न नहीं है। कौन-सा तेरा यार उसे खा जाता है ?"

सौदामिनीने घृणाके साथ कहा—"यार तो जब खा जायगा जब मेरा पेट भरा होगा। आज तुम कितने दिनके उपरान्त घर आए हो। कितना लाए थे, थोड़ा सोचो तो ! और तो क्या, आज दो दिनसे मेरे मुखमें तो अन्नका एक दाना भी नहीं गया है। तुमको क्या ; तुम्हें तो बाहर भोजन मिल ही जाता है, घरमें कोई भूखों मरता है या नहीं—इससे तुम्हें क्या ?"

एक तो कालीशङ्कर वैसे ही क्रोधी प्रकृतिका था, उस पर उस समय वह सुराके प्रभावसे लगभग उन्मत्त-सा हो रहा था। पत्नीकी स्पष्ट बाते (और वह भी इतने निर्भीक भावसे कही हुई) सुनकर वह क्रोधसे अधीर हो गया। तीव्र स्वरमें उसने कहा—"हाँ री ! देखता हूँ अब तेरा बहुत साहस हो गया है। मैं नहीं खिलाता हूँ तो कौन खिलाता है ? ऐसा कौन-सा तेरा यार है जो तुझे रोज दे जाता है।"

अबकी बार सौदामिनीने भी क्रोधके साथ कहा—"चुप रहो ! इतनी ज़ोरसे मत बोलो, बच्चा अभी सोया है। तुम्हें यह सब कहते लज्जा भी नहीं आती। जानते हो, तुम्हारा पुत्र दूधके लिए रात-दिन तड़पता है ; तुम्हारी स्त्री भूखकी ज्वालासे विकल रहती है और तुम बाहर वेश्याओंके जूते चाटा करते हो। धिक् !"

इतना सुनते ही कालीशङ्करके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा, उसने चिल्लाकर कहा—"तब क्यों नहीं अपने मामाके घर चली जाती है हरामज़ादी ! क्यों यहां भूख और प्याससे मर रही है।"

सौदामिनीने भी तीव्र स्वरमें कहा—"क्यों चली जाऊँ ? तुम किस साहस पर चार आदमियोंके सामने मुझे विवाह करके लाए थे ? आज मैं

ही हूँ जो इतना दुख, इतना क्लेश उठाकर भी तुम्हारे घरमें दीपक जलाती हूँ नहीं तो, नहीं तो...।"

आगे कहते-कहते सौदामिनीका गला भर आया। क्रोध और क्षोभसे उसकी अग्निमयी आंखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी! कालीशङ्करने व्यङ्ग पूर्वक कहा—"नहीं तो क्या? नहीं तो किसी यारके साथ निकल जाती! क्यों यही न?"

सौदामिनी—"हां, यही समझ लो। तुम बाहर आनन्दसे वेश्याओंके साथ विहार करते फिरो और मैं घरमें भूखी-प्यासी पड़ी रहूं; मेरा बच्चा भूख और प्याससे तड़फड़ाता रहे। इतना अत्याचार! इतना पाप!"

कालीशङ्करने मुह बनाकर कहा—"क्यों सहती हो इतना अत्याचार! क्यों नहीं अपने किसी यारके साथ निकल जाती हो? बड़े आनन्दसे रक्खेगा! बड़े प्यारसे घरकी मालकिन बना देगा! कब यात्रा करोगी?"

इतना कह कर कालीशङ्कर ठहाका मार कर हँस पड़ा—सौदामिनीके सारे शरीरमें आग लग गई। कालीशङ्करके परिहासमें जो अविश्वास था, उसने सौदामिनीके हृदयको एक ही आघातमें टुकड़े-टुकड़े कर दिया। सौदामिनीने एक बार आंचलसे आँसू पोंछे—अपने रोषमय लोचनोंको स्थिर भावसे कालीशङ्करके मुख पर प्रस्थापित करके उसने तीव्र स्वरमें कहा—"ओफ! मैं नही जानती थी कि, तुम इतने निर्लज्ज हो, इतने भयङ्कर पिशाच हो। तुम क्या जानते हो मूर्ख मनुष्य! मैंने तुम्हारे जैसे अपदार्थके लिए कितने प्रलोभनोंको लात मार दिया है? पर, नहीं! मेरी भूल थी—तुम मेरी श्रद्धा-भक्तिके एकान्त अयोग्य हो। तुम—तुम जो अपनी स्त्रीको अकेले गुण्डों और बदमाशोंके बीचमें निस्सहाय छोड़े देते हो, तुम जो अपनी स्त्री और बच्चेका भरण-पोषण भी नहीं कर सकते, तुम जो अपनी परिणीता भार्य्याके नामपर कलङ्क लगाते रत्ती भर भी लज्जा बोध नहीं करते, तुम, तुम क्या मेरी भक्तिके पात्र हो सकते हो? नहीं! मैंने बड़ी भारी मूर्खता की, जो अब तक इतना सहा! अत्याचारी पुरुष! अब मैं

स्पष्ट कहे देता हूं कि, अब मैं उसी पथकी पथिक बनूंगी, जिसकी ओर तुमने संकेत किया है। अपने पेटकी ज्वालाके लिए नहीं, अपनी लज्जा-निवारण करनेके लिए नहीं, किन्तु, अपने इस मरते हुए पुत्रकी रक्षाके लिए मै पाप भी करूंगी, आकण्ठ व्यभिचारमें भी निमग्न हो जाऊँगी और आवश्यकता होने पर वेश्या बनकर कोठों पर बैठूंगी जहाँ तुम नित्य जाकर अपने इस कलुषित शरीरको और भी परिभ्रष्ट करते हो।"

इतना सुनते ही कालीशङ्कर क्रोधसे अधीर हो उठा और सामने ही पड़े हुए डण्डेको उठा कर सौदामिनीको मारने चला। आज सौदामिनीकी क्रोधमयी प्रवृत्ति भी अपनी सीमाको अतिक्रान्त कर चुकी थी, इस लिए आज वह भी विकराल स्वरमें चिल्ला उठी—"सावधान! एक भी पैर आगे मत बढ़ाना" और इतना कह कर उसने पास ही पड़ी छुरीको हाथमें ले लिया। दृढ़ मुष्टिसे उसे हाथमें पकड़ कर उसने कहा—"बस! बहुत हो चुका! अब, यदि तुमने आगे पैर बढाया तो आज इसी स्थल पर रक्त-धारा बह चलेगी।"

सौदामिनीका ऐसा विकराल वेष देखकर कालीशङ्करका हृदय कांप उठा। वह अपने स्थान पर जड़वत् खड़ा रहा। थोड़ी देरके लिए उसका सारा मद दूर हो गया और उसने अच्छी तरहसे जान लिया कि, उसके अशेष अत्याचारोंसे व्यथित होकर आज सौदामिनीने प्रचण्ड वेष धारण किया है। उसे आगे बढ़नेका साहस नहीं हुआ। सौदामिनी भी उसी तीव्र दृष्टिसे उसकी ओर देखती रही। उसी समय सौदामिनीका बच्चा रो उठा—सौदामिनी शीघ्रतासे उधर चली गई।

कालीशङ्कर स्त्रीके द्वारा अपमानित और लांछित होकर कुछ देर तक वहीं खड़ा रहा। पर, थोड़ी ही देरमें उसके अधरपर उन्मत्त-हास्यका आविर्भाव हुआ। वह शीघ्रतासे बाहर चला गया और बाहर जाकर उसने द्वार बन्द करके उसमें ताला लगा दिया। अपनी इस शैतानी कृति पर अट्टहास करता हुआ कालीशङ्कर चला गया। सौदामिनी आज बन्दिनी हो गई!!

अतिशय अत्याचार दुर्बलके हृदयमें भी एक ऐसी विकराल ज्वाला

उत्पन्न कर देता है, जिसको विमल शान्तिकी शीतल धारा भी प्रशमित नहीं कर सकती। वह तो तप्त शोणितसे ही शान्त होती है।

## ४

जिस दिन सौदामिनी और उस भ्रष्ट युवकका साक्षात् हुआ था, उसी दिनसे सौदामिनी प्रभातके समय जल लेने न जाकर गम्भीर रात्रिके अन्धकारमें जल ले आती थी। इसमें सन्देह नहीं कि, रात्रिके नीरव अन्धकारमें भयकी अधिक सम्भावना थी। परन्तु, सौदामिनी उसके लिए सदा प्रस्तुत रहती थी। सौदामिनीकी कञ्चुकीमें सदा तीव्र छुरी छिपी रहती थी और वह उसी पर भरोसा करके दामिनीकी तिमिर-राशिमें धीरे-धीरे निःशब्द गतिसे, नलके पास जाती और दो-घड़ा पानी लेकर घरको चली आती। आज भी नित्यकी भांति, जब आधी रात व्यतीत हो गई और समस्त संसार नीरव शान्तिकी गोदमें विश्राम करने लगा, तब ज्वरके सन्तापसे मूर्च्छित शिशुको शून्य कक्षमें छोड़ कर सौदामिनी पानी भरनेके लिए चली। पर, द्वार पर आते ही उसका हृदय प्रकम्पित हो उठा—उसने देखा द्वार बाहरसे बन्द है। और उस द्वारकी खुली हुई रेखासे उसने देखा कि, द्वारमें बाहरसे ताला भी लटक रहा है। हृदयहीन पतिकी सारी निठुर कार्यवाही उसकी कल्पनाके सामने जगमगा उठी और उसका हृदय एक विकराल भयसे उद्विग्न और आकुल हो उठा। घरमें एक बूंद पानी नहीं है; जो था उसे उसने स्वच्छ जल लानेके लिए पृथ्वीपर फेंक दिया! अब क्या होगा? किस प्रकार रात कटेगी? वह सहसा दौड़ी—उसने मनमें सोचा कि, अब भी कुछ पानी पृथ्वी पर होगा तो वह उसे अचलसे भिगो कर पात्रमें भर लेगी। उसे अपनी चिन्ता नहीं थी; आज दूसरी रात्रि व्यतीत हो रही है और उसके मुखमें एक अन्नका दाना भी नहीं गया है! घरमें एक मुट्ठी चावल थे उन्हे भी उसने पुत्रके लिए रख दिया था! आज दोपहरसे तो केवल जल और दो-चार बूंद उस दूधके सिवाय जो क्षुधित माताके चर्म-शेष स्तनोंसे

बहुत कुछ प्रयत्न करने पर प्राप्त हो सका था, कुछ भी उस ज्वर-सन्तप्त बालकके मुखमें नहीं गया था। आज सायङ्कालसे ज्वरका प्रकोप और भी बढ़ गया था और बार-बार बालकका मुख सूखा जाता था, जिसमें दो-दो बूंद जलकी समय-समय पर सौदामिनी डाल देती थी। हाय! अब वह भी नहीं है; क्या करें! किस प्रकार बालक रात भर बिना पानीके रह सकेगा? सौदामिनी उन्मादिनी-सी हो गई!

एक-दो-बार उसने द्वार पर तीव्र आघात किया। पर उस दुर्बल बुभुक्षित नारीमें इतना बल कहाँ कि, वह उसे भङ्ग करनेमें समथ होती। देर तक वह द्वारके पास खड़ी होकर खुली भिरीमेंसे बाहर देखती रही कि, कोई निकले तो वह उसे आवाज देकर द्वार खोलनेकी प्रार्थना करे। आज लाज और सङ्कोच कहाँ? पुत्र तृषातुर होकर मृत्यु-शय्या पर छटपटा रहा है; तब माताको आज और सकोचके लिए अवसर कहाँ है? जब बहुत देर तक कोई नहीं आया तब उसने तीव्र स्वरमें पुकारना आरम्भ किया। परन्तु, किसीने भी उस अभागिनीकी ध्वनिका प्रत्युत्तर नहीं दिया। देता भी कौन? उस समय वहां था ही कौन? सब अपने-अपने गृहोंमें आनन्द-पूर्वक विश्राम कर रहे थे। केवल एक सौदामिनी ही अपने सन्तप्त, तृषार्त पुत्रकी मृत्यु-शय्याके पास बैठ कर करुण किन्तु, नीरव-रुदन कर रही थी। नीरव! हां नीरव जिससे बालककी मूर्च्छा भङ्ग न हो जाय। हाय! आज वह जी भर कर रो भी नहीं सकती थी!!

उस समय उसका हृदय विकल विचारोंकी विहार स्थली-सा हो रहा था। बार-बार उसके मन-मन्दिरमें अतुल भावोंका तुमुल नाद हो उठता था और उस तुमुल नादके बीचमें उसका मातृत्व हाहाकार करके रो उठता था। हाय! दूध एक ओर रहा, औषध एक ओर रही, आज वह अपने एक मात्र पुत्रके मुखमें एक बूंद जल भी नहीं दे सकती! विधिका कैसा भयङ्कर विधान है? मातृत्वकी कैसी विकल वेदना है? मूर्च्छामें पड़ा हुआ बालक बार-बार मुंह खोल-खोल कर पानी मांगता है, बोलनेकी—साधारण-सा

जल शब्द कहनेकी भी—उसमें सामर्थ नहीं है, कभी-कभी तृषासे अत्यन्त व्याकुल होकर वह अपनी ज्वरके सन्तापसे जलती हुई कोमल आंखें खोलकर क्षण भरके लिए माताके वेदना-व्यथित मुखकी ओर देखता था। उस समय सौदामिनीकी जो गति होती थी, उसे महाकविकी लेखनी भी चित्रित नहीं कर सकती थी। वह चित्रका विषय है ही नहीं; वह तो हृदयकी उस वेदनाकी पराकाष्ठा है, जो एक वार परम शान्तिमय योगीश्वरको भी उन्मत्त वना देती है। सौदामिनी वार-वार घरकी छत पर जाकर दूर-दूर तक दृष्टि डालती। पर, उस शून्य अन्धकारमें उसे कोई आता हुआ दिखाई नहीं पड़ता। सौदामिनी उन्मादिनीकी भांति कभी छतपर, कभी द्वारपर, और कभी सन्तप्त पुत्रकी रोग-शय्याके पार्श्व-देशमें जाकर खड़ी हो जाती। उसकी आंखोंसे जो अजस्र अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी, वह भी धीरे-धीरे वन्द हो गई। उसके उन विशाल कमल लोचनोंमें अब उन्मादका स्पष्ट लक्षण प्रतिलक्षित होने लगा और उसे अब अपनी सुध-बुध भी जाती रही। समय तो अपनी गतिसे चला ही जा रहा था; परन्तु, सौदामिनीको वह यामिनी, प्रलयकी कभी समाप्त न होनेवाली काल-रात्रिके समान प्रतीत हो रही थी। उधर तृषाके कारण वालककी भी बुरी गति थी, धीरे-धीरे मृत्युकी कालिमा उसके मुखको आवृत्त कर रही थी; उसी समय एक ओरसे घड़ीने चार वजनेकी सूचना दी। सौदामिनी एक वार दौड़कर फिर छतपर गई और मानों उस अन्धकारको भेद कर वह अपनी दृष्टि दूर तक—स्वर्ग और पृथ्वीके मिलन-छोर तक, पहुंचानेका प्रयत्न करने लगी। अवकी वार उसका प्रयत्न सफल हुआ और उसने द्वारपर एक व्यक्तिको आते देखा। सौदामिनी उत्कण्ठित हृदयसे उस व्यक्तिके निकट आगमनकी प्रतीक्षा करने लगी। उसी समय उसे वही चिर-परिचित गानकी ध्वनि सुनाई दी। वही गान, वही कविता, जो वह भ्रष्ट युवक नित्य उसके द्वार-देश पर समय-कुसमय गाया करता था। इस समय भी उस गानका वही विषय था; इस समय भी उस गानके द्वारा उससे प्रणयकी प्रार्थना की जा रही थी, इस समय भी उस

संगीतमें उससे पर्य्यङ्क-शायिनी बननेकी विनय की जा रही थी। नित्य जिस गानको सुनकर उसके समस्त शरीरमें अग्नि लग जाती थी, नित्य जिस कविताके प्रथम स्वरके साथ उसके हृदयमें तीव्र क्रोधका प्रादुर्भाव होता था और नित्य जिस अश्लील व्यङ्ग-संगीतको सुनकर उसका मन-मन्दिर घृणासे ओत-प्रोत हो जाता था, आज वही संगीत उसे अमृतकी धारके समान प्रतीत हुआ, आज वही स्वर उसे कृष्णकी बांसुरीके मधुर रागके समान मीठा लगा; और आज वही अश्लील शृङ्गारमयी पदावली उसे वांछित पदार्थकी प्राप्तिके समान सुखमयी मालूम हुई। युवक इतनेमें कुछ निकट आ गया था। ऊपरसे आकुल स्वरमें सौदामिनीने पुकारा—"पूरनमल! पूरनमल!!"

पूरनमल चकित दृष्टिसे ऊपरकी ओर देखने लगा। यद्यपि इस समय इतना प्रकाश नहीं था कि, वह सौदामिनीके मुखको भली-भांति देख सकता, परन्तु, कई वार पति-पत्नीके कलह-संग्रामके समय उसने सौदामिनीके कण्ठ-स्वरको सुना था अतएव उसे पहिचाननेमें उसे विशेष समय नहीं लगा। परन्तु वह उसके लिए आश्चर्यका विषय था। जिस सौदामिनीने उसकी प्रणय-याचनाको सदा तिरस्कारमयी दृष्टिसे देखा, जिस सुन्दरीने उसकी आकुल दृष्टिकी ओरसे सदा घृणा पूर्वक मुख फिरा लिया और जिस रमणीने उसके अश्लील रागोंको सुनकर भी उसकी ओर भूल कर भी एक कटाक्ष नहीं किया, आज वही रमणी, ब्रह्म-मुहूर्तके क्षीण प्रकाशमें, अपनी छत पर खड़ी उसे इतने आकुल आग्रहसे बुला रही है—यह उसके लिए एक परम विस्मय-सा प्रतीत हुआ। एक वार उसे यह स्वप्नके समान विदित हुआ; एक वार वह विस्मय-विमुग्ध होकर ऊपरकी ओर वाणी-विहीन होकर उसे देखने लगा। उसी समय सौदामिनीने फिर आकुल भावसे कहा—"क्या देखते हो? बाहर ताला पड़ा है, उसे तोड़ डालो। सच मानो, आज जो कुछ तुम कहोगे, सो ही मैं करूँगी। देर मत करो। जल्दी करो, मेरा विश्वास करो; पूरन, मैं तुम्हारी इच्छाके अनुसार ही काम करूंगी।"

पूरनको विश्वास हो गया कि, वह सब स्वप्न नहीं, स्थूल-सत्य है। पूरन-

मलको ताला तोड़नेमें विशेष समय नहीं लगा, बड़ी शीघ्रतासे उसे तोड़ कर वह भीतर आया। अन्दर आते ही सौदामिनीने उसका हाथ पकड़ कर कहा—"पूरन ! पीछे कुछ और कहूंगी। पहिले पानी ले आओ ! यह कह कर उसने एक पात्र पूरनके हाथमें दे दिया और आप द्वार पर खड़ी होकर उसके आनेकी प्रतीक्षा करने लगी। दो ही मिनटके भीतर वह पानी ले आया—जैसे कोई उन्मत्त किसीके हाथसे कोई पदार्थ छीनता है, उसी प्रकार पूरनके हाथसे पात्र छीन कर सौदामिनी उसी कोठरीकी ओर दौड़ी, जहां पर उसका तृषार्त पुत्र धीरे-धीरे मृत्युकी कन्दरामें पतित हो रहा था। पूरनने भी धीरे-धीरे उस कोठरीमें प्रवेश किया। पानी पाकर बालकके मुख पर एक प्रकारकी शान्ति-सी विराज गई। उसी समय सौदामिनीने पूरनकी ओर देखा, उसने कहा—"पूरन ! मैं सब कुछ करनेको उद्यत हूं। इस बच्चेको बचाओ ! मैं आजन्म तुम्हारी दासी बन कर रहूंगी। तुम्हारे चरणोंमें अपना समस्त यौवन, अपना समस्त सौन्दर्य और अपना समस्त पतिव्रत अर्पण कर दूंगी।" यह कर कह सौदामिनीने आकुल भावसे पूरनकी ओर देखा।

यद्यपि पूरनका चरित्र एकान्त भ्रष्ट था ; पर, फिर भी उसका हृदय आकुल था। सङ्ग-दोषसे उसका आचरण पतित हो गया था ; परन्तु, फिर भी उसके हृदयके एक निभृतकोणमें भावनाकी पुण्य-मूर्त्ति कभी-कभी नृत्य कर उठती थी। उसने शीघ्र ही परिस्थितिके रहस्यको जान लिया। उसने जान लिया कि, आज जो सौदामिनी अपने पवित्र पातिव्रत्यको परित्याग करके उसकी पर्य्यंङ्क-शायिनी बननेको प्रस्तुत है, उसका कारण वह व्यभिचारशील लालसा नहीं है, जो पर-पुरुषके चुम्बन और आलिङ्गनसे, केलि और आमोदसे परिपुष्ट होती है। पर, वास्तवमें उसका कारण है वह विकल उन्मत्त मातृत्व जो अपने हृदयके एक मात्र आधारको मृत्युके मुखसे बचानेके लिए आज अपने अमूल्य पातिव्रत्य-रत्नको भी विसर्जन कर देनेके लिए उद्यत है। उन्मत्त मातृत्वकी इस पुनीत महिमाको देख कर, पूरनका हृदय श्रद्धासे ओत-प्रोत हो गया। उसने एक बार आंखें उठा कर सौदामिनीकी उस

उन्मादिनी मुख-श्रीको देखा—उसने देखा कि, उस गम्भीर व्यथा और प्रबल उन्मादकी सङ्गम-भूमि पर मातृत्व अपनी महा महिमाके साथ विराजमान है। उसने देखा कि, उसके सामने ममतामयी माताकी उन्मादिनी मूर्त्ति खड़ी है, उसने देखा कि, सर्वस्व त्यागिनी जननीकी वेदना व्यथित प्रतिमा उसके सामने खड़ी होकर उससे अपने पुत्रकी जीवन-रक्षाकी याचना कर रही है। पूरनका हृदय भक्ति और श्रद्धासे ओत-प्रोत हो गया; उसके भावोंमें एक बार ही परिवर्तन हो गया। आज तीन वर्षसे जो चरित्रहीन, भ्रष्ट-कामुक युवक, जिस सुन्दरीके रूप-यौवनको अपनी काम-प्रवृत्तिकी अग्नि शान्तिका साधन बनाना चाहता था, वही युवक उसी सुन्दरीमें मातृत्वकी महिमामयी शोभाका विलास देख कर, भक्ति और श्रद्धासे उसकी ओर देखने लगा। व्यभिचारका भाव उस पुण्य मातृत्वकी उन्मत्त धारामें विलीन हो गया। पूरनने उसके चरणोंमें घुटने टेक कर गद्गद् कण्ठसे कहा—"क्षमा करो, मैंने वास्तवमें बड़ी भूल की थी। मैंने आज तक अपने मनोमन्दिरमें कैसे भयङ्कर पापका परिपालन किया था ?

सौदामिनीने विकृत स्वरमें कहा—"नहीं नहीं, पूरन ! इस अभिनयकी आवश्यकता नहीं है। मैं सच कहती हूं, अब इस शरीरपर तुम्हारा अधिकार है। जो इच्छा हो, सो करना। चुम्बन करना, आलिङ्गन करना और अपने हृदयकी साध पूरी करना। पर, बचाओ, मेरे इस मरते हुए बच्चेको बचाओ ! विश्वेश्वर साक्षी है, मैं तुम्हारी दासी बनकर जीवन व्यतीत करूँगी।"

पूरनने आंखोंमें आंसू भर कर कहा—"ऐसा न कहो मेरी माता ! तुम्हारे इन शब्दोंको सुनने ही से मेरा हृदय फटा जाता है। माँ ! तुम्हारा एक पुत्र इस रोग-शय्या पर पड़ा है और एक तुम्हारे सामने उपस्थित है। अब ऐसे वचन मुखसे मत निकालना, नहीं तो पृथ्वी एक भयंकर भूकम्पसे उथल-पुथल हो जायगी और धर्म्म और पुण्य सदाके लिए नष्ट हो जायंगे। अच्छा ! डाक्टरको बुलाने जाता हूं।"

पूरनने जल्दीसे सौदामिनीके पैर छुए और वह कमरेसे बाहर हो गया।

उस समय प्राची दिशासे सूर्य्यदेवकी प्रथम किरण उतर कर आंगनमें रक्खे पात्रपर क्रीड़ा कर रही थी।

माताकी ममतामयी मूर्तिकी मुख-श्री पर लीला करने वाली पुण्य-ज्योति पापके गम्भीर तिमिरको क्षण भरमें विनष्ट कर देती है।

५

पूरनके चले जानेके उपरान्त सौदामिनीका उन्मत्त भाव कुछ शान्त हुआ। परन्तु, गत घटनापर स्वस्थ चित्त होकर विचार करनेकी शक्ति अभी तक उसे प्राप्त नहीं हुई थी। वह ज्वर-मूर्च्छित शिशुके शय्याके पार्श्व-देशमें बैठी-बैठी एकटक उसकी ओर देख रही थी। बालक तीव्र ज्वरके सन्तापसे व्याकुल था। वह बड़ी जल्दी-जल्दी साँस ले रहा था और बार-बार जलके लिए मुख फैला-फैला देता था। सौदामिनी उसके मुखमें दो-दो बूँद जल देती जाती थी। जल पीकर कुछ क्षणके लिए बालक शान्त हो जाता था।

पूरन गायका ताजा दूध तथा डाक्टरको साथ लेकर लगभग दो घण्टेके उपरान्त लौटा। डाक्टरने बड़े ध्यानसे बच्चेको देखा। यद्यपि उन्होंने स्पष्ट रूपसे तो कुछ नहीं कहा ; पर उनके भाव और इङ्गितोंसे यही प्रतीत होता था कि, रोग साधारण नहीं है। पूरनने एक बार कहा भी—"डाक्टर साहब! औषधके मूल्य आदिकी चिन्ता न कीजिएगा। किसी भी प्रकार मेरे इस भाईको बचाइये। मै और मेरी मां आजन्म आपके ऋणी रहेंगे।" डाक्टरने कहा—"पूरन बाबू! मनुष्यकी जहां तक शक्ति है, वहां तक मैं चेष्टा करूंगा। पर, आप व्याकुल न हों, भगवान रक्षा करेंगे, वे करुणामय हैं।"

डाक्टरके अन्तिम वाक्योंने सौदामिनीको कुछ-कुछ ढाढ़स बँधाया। डाक्टरने औषधका निर्णय किया। पूरन औषध लाया और दिन भर बिना खाए-पिए रोगी शिशुकी शय्याके पास बैठ कर वह उसकी परिचर्य्या करता रहा। यथा समय उसे औषध देता, समय-समय पर ब्राण्डी-मिश्रित दूधका एकाध चम्मच उसे पिलाता। इस प्रकार दिन भरकी अजस्र सेवाके उपरान्त

लगभग ५ बजेके समय रोगीकी दशामें कुछ-कुछ परिवर्त्तन प्रतीत हुआ। रोगीने एकाध बार आखें भी खोलीं, ज्वरका भी प्रकोप कुछ कम हुआ। उसी समय सौदामिनीने कहा—"पूरन! आज तुमने मेरे साथ जो उपकार किया है, उससे मैं जन्म-जन्मान्तरमें उऋण नहीं हो सकती। तुमने माताका धन उसे लौटा दिया है।"

पूरन—"माँ! सब जगदीश्वरीकी कृपाका फल है। तुच्छ मनुष्यका क्या साध्य है? सच पूछो तो आज तुमने मेरे जीवनमें एक पुण्य-परिवर्तन कर दिया है। आशीर्वाद दो माँ! मेरी बुद्धि ऐसी ही निर्मल बनी रहे, मेरा हृदय इसी भाँति व्यथितके लिए रोता रहे।"

सौदामिनी—"अन्तरसे आशीर्वाद देती हूँ कि, तुम इसी प्रकार परोपकारमें रत रहो। अच्छा, अब जाओ! कुछ भोजन इत्यादि कर आओ।"

पूरन—"और तुम, माँ।"

विकल हो उठी। देखते-देखते आध घण्टेके भीतर ही रात्रिके अन्धकारमें विलीन होती हुई सान्ध्य-श्रीके साथ, उस शिशुका प्राणवायु भी शून्य वायु-मण्डलमें विलीन हो गया !

उन्मत्त भावसे सौदामिनी हाहाकार करने लगी। उसके करुण मर्म-भेदी विलापसे सारा घर मुखरित हो उठा। लगभग पौन घण्टेके उपरान्त ज्योंही पूरनने घरमें प्रवेश किया, त्योंही सौदामिनीकी विलाप-ध्वनि उसके कानोंमें पड़ी। कारण जाननेमें उसे अधिक समय नहीं लगा। उस समय धीरे-धीरे सन्ध्याका अन्धकार प्रगाढ़ हो रहा था और उस अन्धकारमय कक्षमें मृत शिशुको छातीसे लगाए हुए सौदामिनी विलाप कर रही थी। आते ही पूरनने दीपक जलाया और उसके क्षीण प्रकाशमें उसने जो करुण, मर्म-भेदी दृश्य देखा, उससे उसका हृदय अत्यन्त विक्षुब्ध और कातर हो उठा। उसने देखा कि, सौदामिनीके बाल खुले हुए हैं और धूलसे धूसर हो रहे है ; उसका वस्त्र हट गया है और उसके अङ्ग इस समय अनावृत-प्राय हो रहे हैं। पर, इस ओर उसका ध्यान नहीं है। वह तो बार-बार उस शिशु-शवको हृदयसे लगाकर हाहाकार कर रही है। पूरनने रुँधे हुए कण्ठसे पुकारा—"माँ !"

सौदामिनीने उसकी ओर देखा। रोते हुए वह कहने लगी—"चला गया, रूठ कर चला गया ! हाय ! मेरा बच्चा ! पूरन ! इसी बच्चेके लिए मैं सब कुछ परित्याग करनेको तैयार थी ! इसके लिए मैं स्त्रीका गौरव, पत्नीका पतिव्रत, सब कुछ विसर्जन करनेको प्रस्तुत थी। पर हाय ! रूठ कर चला गया। क्यों न रूठ कर चला जाता ! दूध देना तो एक ओर, माँ होकर भी मैं रात भर इसके सूखते हुए मुखमें एक बूँद जल भी न दे सकी ! मेरा बच्चा मुझसे अभिमान करके, मुझे छोड़ कर चला गया। ओफ !"

सौदामिनी हाहाकार कर उठी। पूरन भी रोने लगा। उसी समय, द्वार-देश पर, मदसे उन्मत्त कालीशङ्कर उपस्थित हुआ। उसे देखते ही सौदा-मिनी तीव्र स्वरमें चिल्ला उठी—"इसी हृदय-हीन शैतानके कारण मेरा बच्चा मुझसे रूठ कर चला गया। हाय ! यदि यह पापी, पिशाच रातको मुझे बन्द

न कर जाता, तो मेरा बच्चा इस प्रकार प्याससे विकल होकर न मरता। अब क्या चाहते हो निष्ठुर शैतान? अब क्या इस बच्चेके शवको भी भक्षण करोगे? सो नहीं होगा! मैं नहीं दूँगी! मेरे जीते जी कौन मेरे बच्चेको खा सकता है? नहीं दूँगी! नहीं दूँगी! नहीं दूँगी!!"

सौदामिनी फिर उन्मादके प्रभावसे प्रलाप करने लगी। उसने शिशुके शवको अपने हृदयसे बड़े ज़ोरसे लगा लिया। बार-बार—"नहीं दूँगी! नहीं दूँगी!" कह कर वह विकराल भावसे कालीशङ्करकी ओर देखने लगी। कालीशङ्कर विस्मय-विमुग्ध होकर द्वार-देश पर खड़ा था। एक तो सुराका तीव्र मद, उस पर दृश्यकी विकराल विचित्रता। कालीशङ्कर जड़ भावसे सौदामिनीकी ओर देखता रहा। सौदामिनी उसी समय सहसा अपनी कञ्चुकीमें छिपी हुई छुरी निकाल कर चिल्ला उठी—"हट जाओ शैतान रास्तेमें से! नहीं तो अभी यह छुरी हृदयमें घुसेड़ दूँगी! मैं जाऊँगी! मैं अपने लालको लेकर जाऊँगी! तुझे नहीं दूँगी! नहीं दूँगी! नहीं दूँगी!"

इतना कह कर सौदामिनी एक हाथसे छुरी घुमाती हुई और दूसरेसे मृत-शिशुका शव हृदयसे लगाए हुए आगे बढ़ी। कालीशङ्कर भयसे एक ओर हट गया। पूरन भी आश्चर्य-चकित होकर सौदामिनीके उस उन्मत्त वेष और व्यवहारको देखता रहा। सौदामिनी आंगनमें आ गई—"नहीं दूँगी! नहीं दूँगी! नहीं दूँगी!!" कहती हुई वह वेगसे बाहर चली गई! पूरन और कालीशङ्कर दोनों आश्चर्य्य-चकित होकर, क्रिया-हीन होकर, देखते रहे। सौदामिनी रात्रिके अन्धकारमें उसी प्रकार विलीन हो गई, जिस प्रकार उसकी उन्मत्त ध्वनि—"नहीं दूँगी! नहीं दूँगी! नहीं दूंगी!" शून्य आकाशमें विलुप्त हो गई थी, सौदामिनी अन्तर्हित हो गई।

उस समय रात्रिका अन्धकार प्रगाढ़ हो गया था, और कृष्ण गगन-मण्डलमें चारों ओर किसी उन्मत्त वियोगिनीकी हारावलीके टूटे हुए मोतियोंके समान, नक्षत्र-राशि बिखरी हुई थी, संसार निद्राके कृष्ण-चीरसे आवृत हो रहा था।

दो-तीन मिनटके उपरान्त पूरनको कुछ चेत हुआ। वह भी 'मां! मां' कहता हुआ सहसा प्रधावित हुआ। कालीशङ्कर उस शून्य कोठरीमें सिर पकड़ कर बैठ गया।

पूरनने उस काली यामिनीमें बहुत कुछ ढूढ़ा। परन्तु, सौदामिनी, मेघ-मण्डलमें सौदामिनीकी भांति अन्तर्हित हो गई। उस अन्धकारमयी यामिनी-ने मानों उसे अपने तिमिरावृत कक्षमें छिपा लिया!!

मातृत्वके उन्मत्त हाहाकारमें जिस व्यथित सङ्गीतकी धारा उच्छ्वसित होती है, उसे सुनकर कविकी लेखनी करुणामयी कविता अङ्कित करने लगती है, दार्शनिकका हृदय सन्तप्त संसारकी वेदनाका प्रत्यक्ष अनुभव करने लगता है और विश्वप्रेमी अपनी समस्त साधनाको विश्व-व्यापी दुःखके निवारणके लिए उत्सर्ग कर देता है!

दूसरे दिन प्रभात-श्रीके प्रकाशमें स्वच्छ सलिला गोमतीके तरङ्गमय वक्षस्थल पर प्रवाहित होते हुए सौदामिनीके शवको, और उस पर लेटे हुए शिशुके मृत शरीरको देखकर पूरनकी आंखें अश्रुमयी एवं हृदय आकुल हो उठा। मातृत्वके उस उज्ज्वल प्राणोत्सर्गका दर्शन करके पूरन, भक्ति और श्रद्धासे विभोर हो गया; और उसने उस प्रवाहित पुण्य-शवको उद्देश्य करके निमल दुकूल पर प्रणिपात किया!

उस समय सौदामिनीके सुन्दर मुखको प्रभात-सूर्य्यकी राशि-राशि किरणें चुम्बन कर रही थीं!!



## श्री सुदर्शन

जन्मकाल १८९५ ई०　　　　रचनाकाल १९२० ई०



श्री सुदर्शनजी

# कविकी स्त्री

## सत्यवान—

छात्रावस्थामें मैं और मणिराम साथ ही साथ पढ़ते थे। उस समय हम एक दूसरेपर प्राण देते थे। वे बचपनके दिन थे। जब तक एक दूसरेको देख न लेते, शान्ति न मिलती। उस समय हमें बुद्धि न थी। पीछेसे प्रेमका स्थान वैरने ले लिया था, दोनों एक दूसरेके लहूके प्यासे हो गये थे। तब हम शिक्षित हो चुके थे। एफ० ए० की परीक्षा पास करनेके पश्चात् हमारे रास्ते अलग-अलग हो गए। मणिराम मेडिकल कालिजमें भर्ती हो गये। मैंने साहित्य-संसारमें पांव रक्खा। मुझे रुपये-पैसेकी परवा न थी, पूर्वजोंकी सम्पत्तिने इस ओरसे निश्चिन्त कर दिया था। दिन-रात कविताके रसमें लवलीन रहता। कई-कई दिन घरसे बाहर न निकलता। इन दिनों मेरे हि-

पर यही धुन सवार रहती थी। एक-एक पदपर घन्टों रत्न हो जाते थे। अपनी रचनाको देखकर मैं गर्वसे झूमने लग जाता था। कभी-कभी मुझे अपनी कवितामें तुलसीदासकी उपमा और सूरदासके रूपकोंका स्वाद आता था। जब मेरी कवितायें पत्रोंमें निकलने लगीं तब मेरा कवित्वका मद उतरने लगा। मद उतर गया, परन्तु उसका नशा न गया। वह नशा प्रख्याति, कीर्ति और यशका नशा था। थोड़े ही वर्षोंमें मेरा नाम हिन्दी-संसारमें प्रसिद्ध हो गया। मैं अब कुछ काम न करता था। केवल बड़े-बड़े लोगोंको पार्टियां दिया करता था। अब इसके बिना मुझे चैन न मिलती थी। कवितामें इतना मन न लगता था। पहले मेरा सारा समय इसीकी भेंट होता था, पर अब वह जी-बहलावेकी चीज़ हो गई थी। परन्तु जब कभी कुछ लिखता तब रङ्ग बांध देता था। तुच्छसे तुच्छ विषयको भी लेता तो उसमें जान डाल देता था।

उधर मणिराम चिकित्साके ग्रन्थोंके साथ सिर फोड़ता रहा। पांच वर्ष बाद एसिस्टेंट सर्जनीकी परीक्षा पास करके उसने अपनी दूकान खोल ली। परीक्षाका परिणाम निकलनेके समय उसका नाम एक बार समाचार-पत्रमें निकला था। इसके पश्चात् फिर कभी उसका नाम पत्रोंमें नहीं छपा। इधर मेरी प्रशंसामें प्रति दिन समाचार-पत्रोंके पृष्ठ भरे रहते। वह दूकानपर सारा दिन बैठा रोगियोंकी बाट देखता रहता था। परन्तु उसका नाम कौन जानता था? लोग उधर जाते हुए झिझकते थे। मैं उसकी ओर देखता तो घृणासे मुंह फेर लेता, जिस प्रकार मोटरमें चढ़ा हुआ मनुष्य पैदल जाने वालोंको घृणासे देखता है।

२

एक दिन एक पत्र आया। उसमें मेरी कवित्व-कलाकी बहुत ही प्रशंसा की गई थी। मेरा अस्तित्व देश और जातिके लिए सम्मान और गौरवका हेतु बताया गया था। मेरे पास ऐसे पत्र प्रायः आया करते थे, यह कोई नई बात न थी। कभी-कभी तो ऐसे पत्रोंको देख कर झुंझला उठता था। इस

पुरुषोंकी ओरसे उपेक्षा कर सकते हैं, परन्तु किसी कोमलाङ्गीके साथ यह व्यवहार करनेका जी नहीं चाहता। और यह भी किसी साधारण स्त्रीकी ओरसे नहीं था। इसकी लेखिका देहरादूनके प्रसिद्ध रईस ठाकुर हृदयनारायण-की शिक्षिता लड़की सावित्री थी जिसने इसी वर्ष बी० ए० की परीक्षा पास की थी। जिसके सम्बन्धमें समाचार-पत्रोंमें कई लेख निकले थे, परन्तु मैंने उन्हें पढ़नेकी आवश्यकता न समझी थी। इस पत्रने सब कुछ याद करा दिया। मैंने उसी समय लेखनी पकड़ी, और जवाब लिखने बैठ गया। परन्तु हाथ जवाब दे रहे थे। ऐसी लगनसे कोई विद्यार्थी अपनी परीक्षाके पर्चे भी न लिखता होगा। एक-एक शब्दपर रुकता था, और नये-नये शब्द ढूंढ़ कर नये-नये विचार लेखनीके अर्पण करता जाता था। मैंने सावित्री और उसकी विद्वत्ताकी प्रशंसामें कोषके सम्पूर्ण सुन्दर शब्द समाप्त कर दिए। अपनी तुच्छताको भी अङ्गीकार किया—'आप मेरी प्रशंसा करती हैं, यह आपका बड़प्पन है, अन्यथा मेरी कवितामें धरा ही क्या है। न कल्पनामें सौन्दर्य्य है, न शब्दोंमें मिठास। रसिकता कविताका प्रधान अङ्ग है, वह मेरी कविता-से कोसों दूर है। हम कवि बन बैठते हैं, परन्तु कवि बनना आसान नहीं। इसके लिए देखनेवाली आंखें और सुननेवाले कान दोनोंकी आवश्यकता है,' इत्यादि। कहनेकी आवश्यकता न होगी कि अपनी प्रशंसा करनेका यह एक सभ्य ढङ्ग है।

कुछ दिनके पश्चात इस पत्रका उत्तर आया—'यह जो कुछ आपने लिखा है आप जैसे महा-पुरुषोंके योग्य ही है, अन्यथा मैं तो आपको टेनिसन और वर्डस्वर्थसे बढ़कर समझती हूं। आप कहते हैं कि आपकी कविता रस-हीन है; होगी। परन्तु, मुझपर तो वह जादूका काम करती है। घन्टों रस-सागरमें डुबकियां लगाती हूं। खाना-पीना भूल जाता है। जी चाहता है, आपकी लेखनी चूम लूं।

यह पत्र शराबकी दूसरी बोतल थी। अन्तिम वाक्यने हृदयमें आग लगा दी। मैंने फिर उत्तर दिया, और पत्रमें हृदय खोल कर रख दिया। कवि अपने

चाहने वालोंको आकाशमें चढ़ा देते हैं। मैंने भी सावित्रीकी प्रशंसामें आकाश-पाताल एक कर दिया। लिखा—कारलाइलका कथन है कि कवि केवल वही नहीं जो कविता कर सकता है, प्रत्युत प्रत्येक व्यक्ति जो कविता समझ सकता है और उसके मर्म तक पहुंच सकता है कवि है। इस रूपमें तुम भी कवि हो। मैंने अच्छों-अच्छोंको देखा है, कविताके महत्वको नहीं समझ सकते। परन्तु तुम तो बालकी खाल निकालती हो। तुम्हारी योग्यता पर मुझे आश्चर्य होता है। धन्य है भारत-भूमि, जिसमें तुम जैसी देवियां खेलती हैं।

मैंने सैकड़ों उपन्यास पढ़े थे, अच्छी-सी-अच्छी कवितायें देखी थीं, परन्तु जो रस, जो स्वाद सावित्रीके पत्रोंमें था वह किसीमें न पाया। यही जी चाहता था कि उन्हींको पढ़ता रहूं।

३

## सावित्री—

निस्सन्देह वे मुझे चाहते हैं, अन्यथा इस प्रकार तुरन्त ही उत्तर-प्रत्युत्तर न देते। आज पत्र लिखती हूं, तीसरे दिन उत्तर आ जाता है। ऐसा प्रतीत होता है मानों मेरे पत्रकी राह देख रहे थे। उनके पत्र उनके कवित्वसे अधिक सरस हैं। पढ़ कर चित्त प्रसन्न हो जाता है। और कभी-कभी तो ऐसी चुटकी लेते हैं कि मन अधीर हो उठता है। मैंने चित्र मांग भेजा था। उत्तर देते हैं—तुमने लिखा है कि चित्र भेज रही हूं, परन्तु मुझे तो आज तक नहीं मिला। रजिस्ट्रीकी रसीद हो तो भेज दो, डाकखाने पर नालिश कर दूं। परवश मुझे अपना चित्र भेजना पड़ा, उत्तरमें उनका चित्र आ गया। मेरा विचार सच्चा निकला। कैसे रंगीले हैं। मुख पर राजकुमारों जैसा लावण्य झलकता है। मेरे हृदयको पहले ही चैन न थी, चित्रने रहा-सहा भी छीन लिया। रातको नींद नहीं आती। उनकी अन्तिम कविताने उनका हृदय

मुझपर खोल दिया है। 'प्रियतमसे' कैसा प्यारा शीर्षक है, अक्षर-अक्षरसे प्रेम टपकता है। इससे पहली कविता 'पाती निहार कर' भी मुझपर ही लिखी गई थी। लिखती हूं, तुम मुझे कलङ्कित करके छोड़ोगे। यह तो कहो, तुम मेरे पीछे पल्ले झाड़ कर क्यों पड़ गए हो। एक और कविता 'एकान्तमें' प्रकाशित हुई है। इससे जान पड़ता है, अभी तक कुंवारे हैं। तो मेरी......परन्तु वे इतना परिश्रम क्यों करते हैं। बहुत पढ़ना-लिखना मनुष्यको घाँसकी तरह खोखला कर देता है। लिखती हूं, कविता करना बन्द कर दो और अपने शरीरकी ओर ध्यान दो। मुझे बड़ी चिन्ता रहती है। इसके बाद मैंने उनके सम्बन्धमें सब कुछ मालूम कर लिया। वे हमारी ही बिराद
हैं और कुवारे हैं।

मैंने पत्र लिखा। पहले पत्रों और इस पत्रमें बहुत भेद
'सङ्कोच', कोई 'बनावट' न थी—"तुम्हारे पत्रोंमें सन्तो
चाहता है, प्रत्यक्ष दर्शन हों तो गिर कर आपके पैरोंको चू
न तरसाओ। प्रतिक्षण सामने देखना चाहती हूं। प्राय
पड़ती हूं। सोचती हूं, तुम्हारे खाने-पीनेका क्या प्रबन्ध होत
अधिक समय तक जागते तो नहीं रहते। स्वास्थ्य बिगड़ जा।"
पूरा ध्यान रक्खो। मुझे पत्र लिखना न भूलो। जी डर जाता
चरणोंकी दासी समझो।" नी दूसरी ओर

चौथे दिन उत्तर आया तब मैं ज़मीनसे उछल पड़ी। वे मेरे स बदल गया, करनेसे सहमत ही नहीं, प्रत्युत अधीर हो रहे थे। मैंने आंखे बन्द कीं? और आने वाले काल्पनिक सहवासका चिन्तन करके आनन्दके झूलेमें झूलने लगी। इतनेमें किसीके पैरोंकी चाप सुनाई दी, मेरी आंखे खुल गई। देखा, छोटा भाई प्रभाशङ्कर चित्रोंका एक बण्डल लिये खड़ा है। मैंने आश्चर्यसे पूछा, प्रभा! यह क्या है?

"बाबूजी कहते हैं, ये चित्र देखकर इनमेंसे एक छांट दो। प्रत्येक चित्रके साथ साथ एक पत्र है, उसे भी पढ़ जाना।"

हूं, मेरे जीवनका सर्वस्व लुट रहा है। चुप कैसे रहूं। आप देर करके मेरे भविष्यको अन्धकार-मय बना रहे हैं।

बाबूजीने आतुर होकर कहा, "परन्तु सावित्री, देख कर मक्खी निगलना आसान नहीं। क्या तुझे विश्वास है कि वह तेरी सेवा-सुश्रूषासे अच्छा हो जायगा।

"हाँ मुझे विश्वास है कि मै उन्हे बचा लूगी। कवि बेपरवा होते हैं, प्रायः पढ़ने लिखनेमें लगे रहते हैं। मैं उन्हे जीवनके समस्त झंझटोंसे निश्चिन्त कर दूंगी। कहूंगी, पहले अपने स्वास्थ्यकी ओर तो देखो, पीछे कविता भी हो लेगी। नौकरोंके हाथकी रोटियां खाते हैं, खाया-पीया क्या तन लगेगा। स्तुति करनेको सभी हैं, सहानुभूति किसीमें नामको नहीं।'

बाबूजीपर मेरी इन बातोंका बहुत ही प्रभाव हुआ। कुछ समयके लिए उनका मुह बन्द हो गया। फिर बोले, "यह सब ठीक है, परन्तु कहने और करनेमें बहुत भेद है। मुझे सन्देह है कि जो कुछ तुम कह रही हो उसे कर भी सकोगी या नही।"

मेरा मुख लाल हो गया, जैसे भरे बाजार सिरसे दुपट्टा उतर गया हो, फिर भी सँभल कर बोली—मैं अपने वचनोंके उत्तरदायित्वसे अपरिचित नहीं। जो कुछ कहा है, करके दिखा दूंगी।

"यह सब भावनाकी बातें है, समय पर धुएँकी नाई उड़ जाती है।"

"मेरे विचारमें ससार भावनाओं ही पर जीता है।"

बाबूजी चुप हो गए, कोई उत्तर न सूझा। थोड़ी देर सिर झुका कर सोचते रहे, तब एकाएक उठे और मुझसे कुछ कहे सुने बिना बाहर चले गये।

५

विवाह हो गया। पहे बात झूठ निकली। उन्हे कोई रोग न था। यह सब किसीकी दुष्टता थी। उनका स्वास्थ्य देखकर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। मुख पर लाली है, नेत्रोंमें ज्योति। मुझे देखते हैं तो कलीकी नाईं खिल जाते

हैं। मैंने कई कवियोंके चरित्र पढ़े हैं, और एक दोष प्रायः सबमें पाया है। वह यह कि उनका आचरण कुछ इतना पवित्र नहीं होता। परन्तु उनके विषयमें यह कल्पना करना भी पाप है।

यह बहुत ही शरमीले हैं, किसी पराई स्त्रीके सामने आंख नहीं उठाते। वह इसे भी सदाचारसे गिरा हुआ समझते हैं। मेरी कोई सहेली आ जाती तो उठ कर अन्दर चले जाते थे। मैं बहुतेरा समझाती हूं, कहती हूं, तुम मर्द हो, यदि स्त्री पर्दा नहीं करती तो पुरुष क्यों करे। परन्तु वो हंस कर टाल देते हैं। मुझे उन पर पूरा पूरा विश्वास है। मैं समझती हूं, सब कुछ हो सकता है, परन्तु उनके मनमें मैल नहीं आ सकता। ऐसा पुरुष मिल जाना मेरा सौभाग्य है। उन्होंने अपने आपको मुझ पर छोड़ दिया है। घर-बाहरका स्याह-सफेद सब मेरे ही हाथमें है। कपड़े तक स्वयं नहीं बदलते। यदि मैं न कहूं तो पूरा अठवाड़ा निकल जाता है और उन्हें ध्यान भी नहीं आता कि कपड़े मैले हो गये हैं। उनके दूधका, फलोंका, कमरेकी सफ़ाईका मुझे ही प्रबन्ध करना पड़ता है। सोचती हूं, यदि मेरे स्थान पर कोई दूसरी बेपरवा मनमानी करने वाली स्त्री आ जाती तो क्या होता। घरमें धूल उड़ने लगती। थोड़े ही दिनोंमें बीमार हो जाते। उन्हें अपने दफ्तरकी सफ़ाईका भी ध्यान नहीं। उसका भी मुझे ध्यान रखना पड़ता है। नौकर सिर चढ़ा रक्खे थे, अब ये संभल गये हैं। ये निगोड़े आपसे आप तो कोई काम करते ही नहीं। जब तक सिर पर न खड़े रहो तब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं। कभी कभी मुझे उन पर क्रोध भी आ जाता है। वे क्यों दबदबेसे काम नहीं लेते। मैं चार दिनके लिए बाहर चली जाऊं तो घरमें कीड़े रेंगने लगें।

एक दिन मैंने कहा—सारे भारतवर्षमें तुम्हारी कविताकी धाक बंधी हुई है, परन्तु क्या यह भी किसीको पता है कि तुम इतने बेपरवा, ऐसे आलसी हो?

उन्होंने हंस कर उत्तर दिया—तुम एक लेख न लिख दो।

"बदनाम हो जाओगे।"

"उसमें कुछ भाग तुम्हें भी मिल जायगा।"

"मैं क्यों लेने लगू। तुम हँस कर टाल देते हो। तनिक सोचो तो सही, ऐसी बेपरवाही भी किस काम की ?

"मैंने तुम्हें घरकी रानी बना दिया।

मैंने धीरेसे कहा—घरकी रानी तो मैं बनी, परन्तु तुम अपने दफ्तरकी ओर तो ध्यान करो।

"मैं तुम्हे अपना सुपरिन्टेन्डेन्ट समझता हूं।"

मैं रूठ कर चली गई। परन्तु हृदय आनन्दके हिलोरे ले रहा था, जिस प्रकार चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जल पर तैरता है। दूसरे दिन प्रात काल मैं उनके दफ्तरकी ओर गई तो दरवाजेके साथ एक छोटा-सा बोर्ड लटकता देखा। उस पर लिखा था—

सावित्री देवी, बी० ए० सुपरिन्टेन्डेन्ट।

मैंने उसे जल्दीसे उतार कर उनके सामने जा फेंका और कहा, ये शरारतें देख लोग क्या कहेंगे।

उन्होंने मेरी ओर देखा तो मुसकरा कर भुजायें फैला दी।

६

सन्ध्याका समय था। मैंने अपनी सबसे बढ़िया पोशाक पहनी औ पास जाकर कहा—बाहर चलोगे, थोड़ा घूम आयें।

वे इस समय कवितामें मग्न थे, धीरेसे बोले, इस समय बात न करो बड़ा विचित्र भाव सूझा है, उसको प्रगट करनेके लिए शब्द ढूंढ़ रहा हूँ

मुझे विष-सा चढ़ गया। कैसे पुरुष हैं, सदा अपनी ही धुनमें मग्न रह है। इतना भी नहीं होता मेरी किसी समय तो मान लिया करें। पहले मु देख कर प्रसन्न हो जाते थे, परन्तु अब तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इन हृदय प्रेमसे शून्य हो गया है। हां, कवितामें हृदय निकाल कर रख देते

मेरी आंखोंसे आग बरसने लगी, मुहसे बोली—सदा कविता ही सूझती रहती है या किसी समय ससारका भी ध्यान आता है ?

"इस कवितासे कवि-ससारमें शोर मच जायगा।"

"तुम्हें मेरा भी ध्यान है या नहीं।"

"यह अपने हृदयसे पूछो।"

"मैं हृदयसे नहीं पूछती, स्वयं तुमसे पूछती हूं। तनिक आंखें उठा कर उत्तर दो न।"

"यह कविता देख कर फड़क उठोगी। ऐसी कविता मैंने आज तक नहीं लिखी।"

मैंने हताश-सी होकर कहा—मेरी बड़ी इच्छा थी कि आज थोड़ा घूम आती, इस कविताने काम विगाड़ दिया। जी चाहता है, काग़ज़ छीनकर दवात तोड़ दूं।

"दावात काग़ज़की हानि साधारण बात है, परन्तु ये विचार फिर न मिलेंगे। आज अकेली चली जाओ।"

"मेरा मन नहीं मानता।"

उन्होंने हाथसे इशारा किया और फिर कागज़ पर झुक गये। मेरे हृदयमें बर्छी-सी लगी। उन्हे कविताका ध्यान है, मेरा नहीं। ससारमें नाम चाहते हैं, परन्तु घरमें प्रेम नहीं चाहते। यहांसे चली तो हृदय पर बोझ-सा प्रतीत हुआ। अकेली सैरको निकल गई, परन्तु चित्त उदास था, सैरमें जी न लगा। हार कर एक पुल पर बैठ गई, और अपनी दशा पर रोने लगी। इन आंसूओं-को देख कर पहले बाबूजी व्याकुल हो जाते थे। विवाह हुआ तो मेरे सुख-दुखका भार एक कविको सौंपा गया। परन्तु अब इन आंसुओंको देखने वाला, इन पर कलेजा मलने वाला कोई न था। मुझे ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरी नाव नदीके धारमें वेगसे बही जाती है और उस पर कोई मल्लाह नहीं। मैं अपनी बेबसी पर कुढ़ती थी। कभी-कभी आंख उठाकर देख भी लेती थी कि कदाचित आ रहे हों। प्रेम आशा नहीं छोड़ता।

मेरी आंखें जलकी ओर थीं। सोचती थी, यदि कोई शक्ति मन्त्र-बलसे मुझे जलकी तरङ्ग बना दे तो गङ्गाकी तरङ्गोंमें खेलती फिरूं। एकाएक आंखें झपक गईं, निद्रादेवीने इच्छा पूरी कर दी। मैं गङ्गामें गिर गई। बहुतेरे हाथ-पाँव मारे, पर निकल न सकी। प्रवाहमें बहने लगी।

सुधि आई, तो मैं घर पर थी। वे सामने खड़े थे, कुर्सी पर एक डाक्टर बैठा था।

उन्होंने कहा—अच्छी बच्ची, इनका धन्यवाद करो। ये मेरे मित्र डाक्टर मणिराम हैं। आजकल काशीमें इनके नामकी पूजा होती है। नदीमें न कूद पड़ते तो तुम्हारा बचना असम्भव था।

मैं धीरे-धीरे उठकर बैठ गई। साड़ीको सिर पर कर लिया और डाक्टर साहबकी ओर देखा, मगर आँखें मिल न सकीं। मैंने—"परमात्मा आपका भला करे" कहा और आँखें झुका लीं। परन्तु हृदयमें हलचल मची हुई थी। चाहती थी, ये उठकर चले जायँ। मेरा विचार था, इससे मेरा धीरज वापस आ जायगा। परन्तु जब वे चले गये तब जान पड़ा, मैं भूल पर थी। व्याकुलता बढ़ गई। पानीकी सैरको गई थी, आग खरीद लाई।

७

## मणिराम—

रात हुई, परन्तु मेरी आंखोंमें नींद न थी। उसे सावित्रीकी आँखोंने चुरा लिया था। उनमें कैसा आकर्षण था, कैसी बेबसी थी, जैसे कोई कैदी लोहेके जङ्गलेके अन्दरसे स्वतन्त्र सृष्टिको देखता है और आह मार कर पृथ्वी पर बैठ जाता है। उसकी आंखें बार-बार मेरी ओर उठतीं थीं, परन्तु वह उन्हें उठने न देती थी, जिस प्रकार माँ अपने अबोध बालकको पराये खिलौने पकड़ते देखकर गोदमें उठा लेती है। उस समय बालक किस प्रकार मचलता है कैसा अधीर होता है, चाहता है, कि माँ छोड़ दे तो खिलौना

लेकर भाग जायं। यही दशा सावित्रीकी थी। सत्यवान वहीं डटा रहा। यदि दो मिनटके लिए भी टल जाता तो जी भर कर देख लेता। कैसी सुन्दर है, जैसे चम्पाका फूल।

दूसरे दिन दूकानको जा रहा था तो उसे दरवाज़ेपर खड़ा पाया। उसने मेरी ओर प्यासे नयनोंसे देखा और मुस्करा दिया। इस मुस्कराहटमें बिजली थी, मेरा धैर्य्य छूट गया। दूकानपर जी न लगा, सारा दिन सांझकी प्रतीक्षा करता रहा। पल-पल गिनते दिन समाप्त हुआ और मैं घरको वापस लौटा। पैर भूमिपर न पड़ते थे। इस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे किसीको कुछ मिलने वाला हो। सत्यवानके मकानके पास पहुंचा तो पैर आपसे आप रुक गये, आंखे दरवाज़ेपर जम गईं। सहसा वह अन्दरसे निकली और दरवाज़ेके साथ लग कर खड़ी हो गई। उसने मुहसे कुछ न कहा, परन्तु आंखोंने हृदयके पर्दे खोल दिये। इन आँखोंमें कैसा प्रेम था, कैसा चाव और उसके साथ स्त्रियोंकी स्वाभाविक लज्जा। चटनीमें खटाईके साथ शक्कर मिली हुई थी। मैं मतवाला-सा हो गया और झूमता झामता घर पहुंचा, जैसे किसीने शत्रुका दुर्ग विजय कर लिया हो।

कई दिन बीत गये। नयनोंका प्रेम-पाश दृढ़ होता गया। अब उसे देख कर जी न भरता था। ओसकी बूंदोंसे किसीकी प्यास कब बुझी है। तृष्णा अपने पैर आगे बढ़ा रही थी। अन्तःकरण सावधान करता था, जैसे भयके समय कोई लाल झंडी दिखादे। परन्तु कामदेव उस ड्राइवरके समान परवा न करता था जिसने शराब पी ली हो। यह शराब साधारण शराब न थी। यह वह शराब थी जो धर्म्म-कर्म्म सब चूल्हेमें झोंक देती है और मनुष्यको बलात् भयके मुंहमें डाल देती है। यह काम-वासनाकी शराब थी।

एक दिन बहुत रात गये घर लौटा। चित्त दुखी हो रहा था, जैसे कोई भारी हानि हो गई हो। परन्तु सावित्री दरवाज़ेपर ही खड़ी थी। मैं गद्गद्, प्रसन्न हो गया। घाटा पूरा हो गया था। सारा क्रोध और दुखः दूर हो गया। सावित्रीने कहा, "आज आपको बड़ी देर हो गई।"

परन्तु आवाज़ थरथरा रही थी।

मेरा कलेजा धड़कने लगा। शरीर पसीना-पसीना हो गया। छात्रावस्थामें हमने सैकड़ों मुर्दे चीरे थे। उस समय भी यह अवस्था न हुई थी। एक-एक अङ्ग कांपने लगा। मैंने बड़ी कठिनतासे अपने आपको सभाला और उत्तर दिया—जी हां, कुछ मरीज़ देखने चला गया था, आप दरवाज़े पर खड़ी हैं, क्या किसीकी प्रतीक्षा है ?

"हाँ, उनकी राह देख रही हूं।"

"क्या आज कोई कविसम्मेलन है ?

"कवि-सम्मेलन तो नहीं। एक जलसेमें गये हैं, वहां उन्हें अपनी नवीन कविता पढ़नी है।"

"तो बारह बजेके पहले न लौटेंगे।"

सावित्रीने तृषित नयनोंसे मेरी ओर देखा, और एक मधुर कटाक्षसे ठण्डी साँस भर कर कहा—घरमें जी नहीं लगता।

"अभी तो आठ ही बजे हैं।"

"जी चाहता है कि घड़ीकी सुइयाँ घुमा दूं।"

मेरे पैर न उठते थे। ऐसा प्रतीत होता था, मानों कोई विचित्र नाटक हो रहा है। परन्तु कोई देख न ले, इस विचारसे पैर उठाने पड़े। हमें धर्मका विचार हो या न हो, परन्तु निन्दाका विचार अवश्य होता है। सावित्रीने मेरी ओर ऐसी आंखोंसे देखा, मानों कह रही हैं, क्या तुम अब भी नहीं समझे।

मैं आगे बढ़ा, परन्तु हृदय पीछे छूटा जाता था। वह मेरे वशमें न था घर जाकर चित्त उदास हो गया। सावित्रीकी मूर्ति आंखोंमें फिरने लगी। उसकी मधुर वाणी कानोंमें गूंजने लगी। मैं उसे भूल जाना चाहता था। मुझे डर था कि इस कूचेमें पैर रखनेसे निन्दा होगी। मुझ पर उँगलियां उठने लगेंगी। लोग मुझे भलामानस समझते हैं। यह करतूत मेरा सर्वनाश करदेगी। लोग चौंक उठेंगे। कहेंगे, कैसा भलामानस प्रतीत होता था, परन्तु

पूरा गुरुघण्टाल निकला। प्रैक्टिस भी कम हो जायगी। वह विवाहिता स्त्री है। उसकी ओर मेरा हाथ बढ़ाना बहुत ही अनुचित है। परन्तु ये सब युक्तियां, सब विचार जलकी तरङ्गें थीं। जितनी जल्दी उठती हैं उससे जल्दी टूट जाती हैं। वायुका हलका-सा थपेड़ा उनका चिन्ह तक मिटा देता है। मनुष्य कितना दुर्बल, कितना बेबस है।

दूसरे दिन मैं सत्यवानके घर पहुंचा। परन्तु पैर लड़खड़ा रहे थे, जैसे नया-नया चोर चोरी करने जा रहा हो। उस समय उसका हृदय किस प्रकार धड़कता है। कहीं कोई देख न ले। मुंहका रङ्ग भेद न खोल दे। कभी कभी भलमनसीका विचार भी आ जाता था। पैर आगे रखता था, परन्तु पीछे हट जाता था। परन्तु मैंने एक छलाँग भरी और अन्दर चला गया। इस समय मेरे होंठ सूख रहे थे।

सत्यवानने मुझे देखा तो कुर्सीसे उछल पड़ा और बड़े आदरसे मिला। देर तक बातें होती रहीं। सावित्री भी पास बैठी थी। मेरी आंखें बराबर उसके मुखपर अटकी रहीं। पहले चोर था, अब डाकू बना। सावित्रीकी झिझक भी दूर हो गई। बात-बातपर हंसती थी। अब उसे मेरी ओर देखनेमें सङ्कोच न था। लज्जाके स्थान पर चपलता आ गई थी। यहांसे चला तो ऐसा प्रसन्न था, जैसे इन्द्रका सिंहासन मिल गया हो। तत्पश्चात् रास्ता खुल गया। दिनमें कई बार सावित्रीके दर्शन होने लगे। रातको दो-दो घण्टे उसके पास बैठा रहता। मेरा और सावित्रीका आंखों-आंखों ही में मन मिल गया। पर सत्यवानको कुछ पता न था। कल्पना सागरसे विचारोंके मोती निकालनेवाला कवि, बहुत दूर तक दृष्टि दौड़ानेवाले क्रान्तदर्शी विद्वान् अपने सामनेकी घटनाको नहीं समझता था। उसकी कविता दूसरोंको जगाती थी, परन्तु वह स्वय सोया हुआ था। उस अनजान यात्रीके समान जो नौकामें बैठा दूरके हरे-हरे खेतों और ऊंची-ऊंची पहाड़ियोंको देख-देखकर झूमता है, परन्तु नहीं जानता कि उसकी नाव भयानक चट्टानके निकट पहुंच रही है। सत्यवान विनाशकी ओर बढ़ रहा था।



# सावित्री

कितना अन्तर है। मणिरामकी आंखें हृदयमें आग लगा देती थीं। निकट आते तो मैं इस प्रकार खिंची जाती, जैसे चुम्बक लोहेकी सूईको खींच लेता है। कैसे भोले-भाले लगते थे, जैसे मुखमें जीभ ही न हो। परन्तु मेरे पास आकर इस प्रकार चहचहाते हैं, जैसे बुलबुल फूलकी टहनी पर चह-चहाती है। उनके बिना अब जी नहीं लगता था। मकान काटनेको दौड़ता था। चाहती थी, मेरे पास ही बैठे रहें। किसीने मुझसे तो नहीं कहा, परन्तु आंखोंसे पता चला कि महल्लेकी स्त्रियां सब कुछ समझ गई हैं। मेरी ओर देखतीं तो मुस्कराने लगतीं। इतना ही नहीं, अब वह भी अपने विचारोंसे चौंक उठे। कवि थे कुछ मूर्ख नहीं। बेपरवा थे, पर बेसमझ न थे। अब हाथ मल-मलकर पछताने लगे। संसार जीतते थे, परन्तु घर-बानां बैठे। सदैव उदासीन रहते थे। रातको सो नहीं सकते थे। बात करती तो काटनेको दौड़ते। आंखोंमें लहू उतर आता था। न खानेकी ओर ध्यान था, न पीनेकी ओर, कई-कई दिन स्नान न करते थे। अब मुझे उनके कपड़े बदलवानेका शौक न था, न उनके खाने-पीनेका प्रबन्ध करती थी। कभी इन बातोंमें आनन्द आता था, अब इतनेसे जी घबराता था। कुछ दिन पश्चात् प्रयागके एक प्रसिद्ध मासिक-पत्रमें इनकी एक कविता प्रकाशित हुई। जिसका पहला पद था—

भयो क्यों अनचाहत को सङ्ग।

कविता क्या थी, अपनी अवस्थाका चित्र था। मेरी आंखोंसे आग बरसने लगी। शेरनीकी नाईं बिफरी हुई उनके सामने चली गई, और बोली—यह क्या कविता लिखने लगे हो अब।

उन्होंने मेरी ओर ऐसी आंखोंसे देखा, जो पत्थरको भी मोम कर देतीं, शोक और निराशाका पूरा नमूना थीं। धीरसे बोले—क्या है ?

"यह कविता पढ़कर लोग क्या कहेंगे ?"

"कवि जो कुछ देखता है, लिख देता है। इसमें मेरा दोष क्या है।"

मैंने तनिक पीछे हट कर कहा—"तुमने क्या देखा है ?"

"सावित्री। मेरा मुख न खुलवाओ। अपने अंचलमें मुह डालकर देख लो, मुझसे कुछ छिपा नहीं।"

मैंने क्रोधसे कहा, "गालियां क्यों देते हो ?"

"गालियां इससे लाख गुना अच्छी होतीं।"

"तो तुम्हे मुझ पर सन्देह है।"

"सन्देह होता तो रोना काहेको था अब तो विश्वास हो चुका। कान धोखा खा सकते हैं, परन्तु आंखें भूल नहीं करतीं। मुझे यह पता न था कि मेरा घर इस प्रकार चौपट हो जायगा।"

मुझपर घड़ों पानी पड़ गया। पर प्रकृति, जहां दुराचारको जाना होता है वहां, निर्लज्जताको पहले भेज देती है। ढिठाईसे बोली—तुम कविता लिखो, तुम्हे किसीसे क्या ?

"घावों पर नमक छिड़कने आई हो।"

"मेरी ओर देखते ही न थे। उस समय बुद्धि कहां चली गई थी।"

"मैंने तुम्हें पहचाना नहीं था। नहीं तो आज हाथ न मलता।"

"परन्तु लोग तो तुम्हें वाहवा कह रहे हैं। जिस पत्रमें देखो, तुम्हारी ही चर्चा है, पढ़कर प्रसन्न हो जाते होगे।"

यह सुनकर वे खड़े हो गये। नेत्रोंमें पागलोंकी सी लाली चमक रही थी, चिल्ला कर बोले, "अपनी मौतको न बुलाओ, मैं इस समय पागल हो रहा हूं।"

"तो क्या मार डालोगे। बहुत अच्छा यह भी कर डालो। अपने जीकी इच्छा पूरी कर लो।"

उन्होंने एक बार मेरी ओर देखा, जिस प्रकार सिंह अपने आखेटको मारनेसे पहले देखता है, और झपट कर आलमारीकी ओर बढ़े। मेरा कलेजा धड़कने लगा। दौड़कर बाहर निकल गई। मेरा विचार था, वे मेरे पीछे दौड़ेंगे, इसलिए घरके बाहर मैदानमें आ खड़ी हुई। परन्तु सांस फूली हुई

थी। मृत्युको सामने देख चुकी थी। परन्तु वे बाहर न आये। थोड़ी देर पीछे दनका शब्द सुनाई दिया। मैं दौड़ती हुई अन्दर चली गई। देखा वे फर्श पर पड़े तड़फ रहे थे। मृत्युका दृश्य देख कर मैं डर गई। परन्तु मुझे दुःख नहीं हुआ। कहीं मुकदमेकी लपेटमें न आ जाऊ, यह चिन्ता अवश्य हुई।

दो मास बीत गये थे। मैं अपने आंगनमें बैठी मणिरामके लिए नेकटाई बुन रही थी। मैंने लोकव्यवहारकी परवा न करके उनसे विवाहका निश्चय कर लिया था। लोग इस समाचारसे चौंक उठे थे। परन्तु मैं उनके मरनेसे प्रसन्न हो रही थी। समझती थी, जीवनका आनन्द अब आयेगा, अचानक नौकरने आकर डाक मेरे सामने रख दी। इसमें एक पैकेट भी था। मैंने पहले उसे खोला। यह मेरे मृतक पतिकी कविताओंका सग्रह था। मैंने एक दो कविताएं पढ़ीं। हृदयमें हलचल मच गई। कैसे ऊंचे विचार थे, कैसे पवित्र भाव, ससारकी मलिनतासे रहित। इनमें छल न था, कपट न था। इनमें आध्यात्मिक सुख था, शान्ति थी। मेरी आंखोंसे आंसू बहने लगे। एकाएक तीसरे पृष्ठ पर दृष्टि गई। यह समर्पणका पृष्ठ था। मेरा लहू जम गया। पुस्तक मेरे नाम समर्पित की गई थी। एक-एक शब्दसे प्रेमकी लपट आ रही थी। परन्तु इस प्रेम और मणिरामके प्रेममें कितना अन्तर था। एक चन्द्रमाकी चाँदनीके समान शीतल था, दूसरा अग्निके समान दग्ध-करनेवाला। एक समुद्रकी नाई गहन-गम्भीर, दूसरा पहाड़ी नालेके समान वेगवान। एक सचाई था परन्तु नि:शब्द, दूसरा झूठ था पर बड़-बोला। मेरी आंखोंके सामनेसे पर्दा उठ गया। सतीत्वके उच्च शिखरसे कहां गिरनेको थी, यह मैंने आज अनुभव किया। उठते हुए पैर रुक गये। मैंने पुस्तकको आंखोंसे लगा लिया और रोने लगी।

इतनेमें मणिराम अन्दर आये। मुख आनेवाले आनन्दकी कल्पनासे लाल हो रहा था। उनके हाथमें एक बहुमूल्य माला थी, जो उन्होंने मेरे लिए बम्बईसे मगवाई थी। वह दिखाने आये थे। मुझे रोते देखकर ठिठक गये और बोले—"क्यों रो रही हो?"

"मेरी आंखे खुल गई हैं।"

"यह अपनी माला देख लो। कल विवाह है।"

"अब विवाह न होगा।"

"सावित्री, पागल हो गई हो ?"

"परमात्मा मुझे इसी प्रकार पागल बनाये रक्खे।"

मणिराम आगे बढ़े। परन्तु मैं उठ कर पीछे हट गई, और दरवाजेकी ओर संकेत करके बोली—"उधर।"

उस रात मुझे ऐसी नींद आई, जैसी इससे पहले कभी न आई थी। मैंने पतिको ठुकरा दिया था, परन्तु उनके प्रेमको न ठुकरा सकी। मनुष्य मर जाता है, उसका प्रेम जीता रहता है।



# अमरीकन स्वामी

१

मैं उन सौभाग्यवती स्त्रियोंमेंसे थी, जो अपने आपपर ईर्षा करती हैं। स्वास्थ्य, सौन्दर्य्य और सम्पत्ति ऐसी तीन वस्तुएँ हैं, जो संसारकी बहुमूल्य वस्तुएं समझी जाती हैं। परमेश्वरने मुझे यह तीनों वस्तुएं दी थी, और इतना ही नहीं, मेरे नामके डंके अमरीकाके एक सिरेसे लेकर दूसरे सिरेतक बज रहे थे। मैं अमरीकाकी सर्वोत्कृष्ट ऐक्ट्रेस थी। समाचार-पत्रोंमें मेरी प्रशंसाके पुल बांधे जाते थे। लोग मेरा नाम सुनकर आनन्दमें मतवाले हो जाते थे। यूनिवर्सल थियेट्रिकल कम्पनीके डाइरेक्टर मेरे पार्टपर लट्टू थे। मैं जब स्टेजपर जाती, तो लोग गुलदस्तों और फूलोंके हारोंसे मुझे लाद देते थे, और उसके पश्चात् चित्रवत् मौन हो जाते थे। मैं जब बोलती, तो लोग अपने

आपको भूल जाते थे। मेरा एक-एक कटाक्ष, मेरे पावोंकी एक-एक चलन्त, मेरी वक्तृताका एक-एक शब्द उपस्थित जनताके हृदयोंमें हलचल मचा देता था। वे मेरी ओर इस प्रकार तृषित नेत्रोंसे देखते थे, जिस प्रकार चकोरका बच्चा चन्द्रमाको देखता है। लोगोंके इस भावको देखकर मेरा हृदय आनन्दसे इस प्रकार हिलोरे लेने लगता जैसे वायुमें कमलपत्र हिलता है।

जब पहले पहल मैंने युनिवर्सल कम्पनीमें नौकरी की, उस समय उसका कोई विशेष नाम न था, परन्तु मेरे साथ मिलनेसे उसके अन्दर नया जीवन आ गया और वह देशकी बड़ी-बड़ी कम्पनियोंमें गिनी जाने लगी। इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये, मेरी कीर्ति और लोकप्रियता बढ़ती गई। यहाँ तक कि अमरीकाके प्रसिद्ध दैनिक समाचारपत्र 'अबज़रवर' ने एक लम्बा लेख लिखा और मुझे नाटकके संसारका एक "नया सितारा" लिखा। इतना ही नहीं, उसने मेरे कई फोटो छापे, और मेरे आर्टपर अत्यन्त साहसवर्द्धक रिमार्क दिये।

इस लेखका निकलना था कि मेरी कीर्तिको चार पर लग गये। यूनिवर्सल कम्पनी अब अमरीकाकी सबसे बड़ी कम्पनी थी। उसमें दर्शकोंकी भीड़ रहती थी। उसमें प्रायः लोगोंको टिकट न मिलनेके कारण निराश होकर वापस लौटना पड़ता था। उस समय उनके मुखपर नैराश्य टपकता था। डाइ-रेक्टरका दिल बढ़ा हुआ था, उसने टिकट बढ़ा दिया, परन्तु तमाशाइयोंमें फिर भी कमी न हुई। हमारी आय दिनपर दिन बढ़ने लगी, यहां तक कि कम्पनीकी ख्यातिके लिये अमरीका अपर्य्याप्त सिद्ध हुआ। एक दिन मैंने हसते-हँसते कम्पनीके प्रोप्राइटरसे कहा,—"क्यों न यूरोपमें हो आयें। वहां भी नाटकोंके शौकीन थोड़े नहीं हैं।"

प्रोप्राइटरने मेरी ओर ऐसी भावपूर्ण दृष्टिसे देखा, मानों मैंने अन्जीलकी कोई पंक्ति पढ़ दी हो, और कहा,—"अवश्य चलना चाहिये।"

इसके एक सप्ताह पश्चात् हमारी कम्पनी यूरोपको रवाना हुई।

## २

इंग्लिस्तानके तटपर पाँव रखते ही मुझे अभिमान होने लगा। अमरीका-से बाहर निकलनेका यह पहला अवसर था। इससे पहले मैं कभी यूरोप न आयी थी। परन्तु इंग्लिस्तान पहुंचकर मालूम हुआ कि मेरी कीर्ति मुझसे पहले वहाँ पहुंच चुकी है। तटपर कई समाचारपत्रोंके रिपोर्टर विद्यमान थे, जो मुझसे ( Interview ) इण्टरव्यूके लिये समय नियत करने आये थे। उनमें कुछ अपने साथ कैमरे भी लेते आये थे। इससे उनका प्रयोजन अपने पत्रोंमें मेरा फोटो देना था। वे पारस्परिक प्रतिद्वन्द्वितामें एक साथ मुझपर टूट पड़े इससे मैं घबरा गई। परन्तु इस घबराहटमें मानसिक सुख व मस्तीका आनन्द-मय सन्मिश्रण था। जिस प्रकार मनुष्य कभी-कभी अत्यन्त आनन्दकी अवस्थामें रोने लगता है, उसी प्रकार मैं इस अभ्यर्थनाके जोशको न सम्भाल सकी। मै घबराकर दूर हट गयी, और ऐक्ट्रेसोंकेसे कटाक्षसे बोली—"मैं इस समय किसीको फोटो न दूंगी। मेरा मन अभी ठिकाने नहीं। कल प्रातःकाल ग्रांड होटलमें आओ। वहां मै तुम्हें समय दे सकूगी।"

दूसरे दिन समाचारपत्र मेरी प्रशंसासे भरे हुए थे। किसीने मुझे काफ़की परी लिखा, किसीने स्वर्गकी अप्सरा। किसीने मेरे गोरे रङ्गकी प्रशंसा की; किसीने रूप लावण्यकी। एकने तो यहांतक लिख दिया कि मिस मेरीन पार्थिव जगतकी मालूम नहीं होती। उसे देखकर मनुष्य चकित रह जाता है। एक और समाचारपत्रने लिखा था, मिस मेरीन अपने व्यावहारिक जीवनमें भी अभिनय करती है। उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों अभिनय करना उसकी प्रकृतिमें समा गया है। उसकी आंखें [illegible]खकर यह भविष्यवाणी कही जा सकती है कि प्रकृतिने उसे रङ्गमंच पर [illegible] करनेके लिये जन्म दिया है। एक दूसरे समाचारपत्रने लिखा था, मिस [illegible]न संसार भरकी सर्वोत्कृष्ट ऐक्ट्रेस है जिसके खेल निस्सन्देह इंग्लिस्[illegible]के नाटक-

संसारमें कई नवीन आविष्कार करनेके कारण होंगे। मैं इन नोटोंको पढ़कर हंसती थी।

खेल आरम्भ हुआ मैं अत्युक्ति नहीं करती, लोगोंने हमारी आशाओंसे बढ़कर सम्मान किया रातको ऐसा प्रतीत होता था, मानों सारा नगर थियेटर हालमें उमड़ पड़ा है। जब मैं स्टेजपर आती तो लोग अन्धाधुन्ध तालियां पीटकर मेरा स्वागत करते, साथ ही स्टेज फूलों और गुलदस्तोंसे भर जाता। परन्तु स्वागत केवल फूलोंतक ही न था, उसके साथ नोट भी होते थे। नोटोंमें जादू है, यह मुझे उसी समय मालूम हुआ।

थोड़े ही दिन मेरे चाहनेवालोंकी संख्या बढ़ गयी। उनमें एक भारतीय नवयुवक मदनलाल विशेषतया उल्लेखनीय है। मैंने सुन्दरसे सुन्दर अमरीकन देखे हैं। परन्तु ऐसे मनोहर, ऐसी सुन्दर छवि एक ही बार देखी है। वह चेहरे-मोहरेसे कोई राजकुमार जान पड़ते थे। मैंने कई करोड़पति देखे हैं जो आनेकी आनमें हजारों खर्च कर डालते हैं। परन्तु उनकी बात-बातमें अभिमानकी गन्ध आती है, परन्तु मदनलालकी उदारतामें ओछापन न था। वे नाटकमें मेरी ओर कभी नोट न फेंकते थे, उन्हें एक गुलदस्ता व एक फूलतक फेंकना सौगन्ध थी। वे जब होटलमें मेरे पास आते, उस समय भी अपनी धनाढ्यताका दावा न करते। वे इसे भारतीय सभ्यतासे गिरा हुआ समझते थे। हां, जब बाजारमें मुझे कोई वस्तु खरीदनी होती तो वेपरवाहीसे रुपया दे देते और मेरे धन्यवाद करनेसे पहले ही मुस्कुराकर कहते 'इसकी आवश्यकता नहीं।'

मैंने वाहवाहीके लिए खजाने लुटानेवाले देखे हैं। मैंने नामके लिये जीवन देते हुए भी देखे हैं, परन्तु इस प्रकार एकान्तमें अपना रुपया लुटानेवाला यही भारतीय नवयुवक देखा है, जो उस समय आगे बढ़ता था जब उसे देखनेवाली कोई आँख निकट न होती थी।

## २

इस प्रकार कई मास बीत गये, मदनलालकी चाहनामें रत्ती भर भी अन्तर

न पड़ा। वे रातको नाटकमें आते, दिनको होटलमें। उनका दैनिक कृत्य था जिसमें कभी चूक न होती थी। उनकी आँखें अ॰थीं, मुख चिन्तित। प्रायः बैठे-बैठे ठाढी सांस भरकर चाक उठते। मैंने बार इसका कारण पूछनेकी चेष्टा की परन्तु वे मौन साधे रहे। जान पड़ता था, उनके हृदयमें कोई विशेष बात है, जिसे वे मुझपर प्रगट करना चाहते थे। परन्तु जब वे बोलने लगते, तो कोई शक्ति मुंह बन्द कर देती, वे हिचकिचाकर चुप हो जाते। वे इतने लज्जालु और सादे थे कि एक स्त्रीके सामने भी अपना जी न खोल सकते थे, यद्यपि यह कुछ भी कठिन न था। मैं उनकी दशाको समझ गयी और प्रत्येक स्त्री जो थोड़ीसी भी बुद्धि रखती है, इस बातको तुरन्त भांप सकती। परन्तु मेरे कान उनके प्रेमके दो शब्दोंके भूखे थे! अमरीकन स्त्री इतना प्रेमको नहीं चाहती जितना प्रेमके शब्दोंको चाहती है। 'मैं तुम्हे चाहता हूं' कैसा मधुर वचन है, कैसा मनोहारी विचार, स्त्रीके हृदयको मुग्ध करदेनेवाला जादू, उसकी आत्मामें हलचल मचा देनेवाला ख्याल। शनैः शनैः मेरे हृदयमें एक नये विचारने सिर निकाला। मदनलालके आनेमें तनिक देर हो जाती तो चित्त व्याकुल हो जाता। रातको नाटकमें वे दिखाई न देते तो कण्ठस्थ किये हुए शब्द होंठों पर जम जाते। वे दिखाई दे जाते तो कलेजा धड़कने लगता, आँखें नृत्य करने लगतीं। मुझे ऐसा मालूम होने लगा, मानों मदनलालने मुझपर जादू कर दिया है। मैं उनके बिना प्रसन्न न होती थी। उनकी बातचीत मेरे नीरस जीवनमें रसका सञ्चार कर देती थी। मैंने सैकड़ों नवयुवक देखे थे, परन्तु जो बात मदनलालमें थी वह किसीमें न थी। वे मुझपर मुग्ध थे। मुझे देखे बिना एक दिन बिताना भी उनके लिए दुष्कर था। उनके नेत्रोंमें प्रेमकी पिपासा थी और हृदयमें व्याकुलता। परन्तु ऐसा होते हुए भी उन्होंने आत्माभिमानको हाथसे जाने नहीं दिया। उन्होंने कभी भावुकतासे भरे हुए वचन नहीं कहे। एकान्तके अवसर कर आये और चले गये, परन्तु मदनलालने कभी उनसे लाभ उठानेकी चेष्टा नहीं की। उनके इन गुणोंने मेरे हृदयमें अपना घर बना लिया। एक भारतके नवयुवक

प्रेमकी जलनको किस शान्ति और धीरजके साथ सहन कर सकता है यह मुझे पहला अनुभव हुआ। विचार आया, जहांके पुरुष इतने साहसवाले हैं, वहांकी स्त्रियोंकी क्या दशा होगी। मेरा मन वशमें न रहा। प्रेमके प्रगट करनेमें सदैव स्त्रियां पुरुषोंपर विजय पाती रही हैं। मैं एक भारतीयसे परास्त हुई और एक दिन टूटे-फूटे वचनोंमें अपना हृदय मदनलालके सामने रख दिया।

मदनलालका मुखमण्डल अनारके फूलके समान लाल हो उठा, मानों कोई अनहोनी बात हो गयी हो। जिस प्रकार किसी कन्याके मुखपर विवाह-की बातको सुनकर लज्जाकी लाली दौड़ जाती है, वही अवस्था मदनलालकी हुई। मेरे आश्चर्यकी कोई सीमा न थी, परन्तु मेरा हृदय विवश था। मैंने अपना वाक्य फिर दोहराया—"मदनलाल ! जानते हो तुम्हारे बिना मेरी क्या अवस्था होती है ?"

मदनलालको सहसा बोलनेकी शक्ति मिल गई, सिर झुकाकर बोले—"मेरीन, मैंने सुना था कि भारतीय पुरुष स्त्रियां हैं और अमरीकाकी स्त्रियां पुरुष, आज इसका प्रमाण मिल गया।"

क्या रसीला वचन था, हृदयकी अवस्थाका सच्चा चित्र। मेरे रोम-रोममें आनन्दकी लहर उठने लगी। जिस प्रकार फूलोंमें शहद छिपा रहता है इसी प्रकार इस वाक्यमें प्रेमकी स्वीकृति छिपी हुई थी। कौन कहता है, भारतीय असभ्य हैं। जो अपने प्रेमकी अवस्थाको ऐसे सभ्य शब्दोंमें प्रगट कर सकते हैं, जो अपने हियेकी लगीको कई मास गुप्त रख सकते हैं; उनको असभ्य कहना घोर अन्याय नहीं तो क्या है ?

मैं सोफापर बैठी थी, मेरा हृदय अपने आपेमें न रहा, और जोरसे कानमें पड़े हुए मोतीकी नाईं कांपती हुई बोली "तो तुम मुझे चाहते हो, प्यार करते हो ?"

मदनलालके नेत्रोंमें आनन्दकी झलक थी, परन्तु वे पागल नहीं हो गये। उनके मुखमण्डलसे ऐसा प्रतीत होता था, मानों उनके हृदयमें विचारों-

की उथल-पुथल हो रही है, परन्तु उन्होंने अपने आपको वशमें रखा, और धीरेसे उत्तर दिया—"इसका उत्तर मेरी आंखोंसे पूछो।"

मैंने हँसते हुए आगे बढ़कर उनकी आंखोंमें झांककर देखा और कहा,—"वहां तो मैं बैठी हूं।"

"कहां?"

"तुम्हारी आंखोंमें।"

मदनलालने मेरे हाथ पकड़ लिये। इस समय उनका अङ्ग-अङ्ग थरा रहा था। वह बोले, "मेरीन डीयर! तुम मुझपर दोष दे रही हो, जो कहती हो कि तुम केवल मेरी आंखोंमें ही बस रही हो। यदि अच्छी तरह देखो तो मेरे शरीरके एक-एक परमाणुमें, मेरे रक्तके एक-एक बिन्दुमें, मेरे विचारकी एक-एक तरङ्गमें तुम विद्यमान हो। मेरा हृदयतक तुम्हारी भेंट हो चुका है। मेरे स्वप्न तुम्हारी स्मृतिके अर्पण हो चुके हैं। मेरा सुख तुम्हारी यादमें लीन हो गया है!"

जिस प्रकार नदीका बांध खुल जानेसे जल पूर्ण वेगसे बहने लगता है, उसी प्रकार मदनलाल प्रेमके प्रवाहमें बह गये।

इस समयका यह प्रेमपर वक्तृता करनेवाला नवयुवक उस पहले 'लज्जालु' 'चुपचाप' 'सीधे सादे' मदनलालसे कितनी दूर, कितना परे था।

मदनलाल बैठ गये। इस समय उनका मुखमण्डल प्रशान्त था, जैसे तूफानके पश्चात् समुद्र शान्त हो जाता है। मैंने उनकी ओर देखा, उन्होंने मेरी ओर देखा। इन दृष्टियोंमें प्रेमके दफ्तर छिपे थे। मैं प्रेमके रङ्गमें रँगी गयी। मैं अपने आपपर ईर्षा करती थी और समझती थी कि ऐसे नवयुवकके प्रेमको जीत लेना एक भारी सफलता है। इन दिनों मेरे ऐक्टिङ्गकी धूम मच गयी। मैं जोशमें भरी हुई रङ्गमञ्चपर जाती थी, और दर्शकोंके हृदयोंमें हलचल मचा देती थी। यह दिन मेरे जीवनके सुनहरे दिन थे जिनपर संसार-भरके सारे ऐश्वर्य्य निछावर किये जा सकते हैं।

मैं जिस जिस नगरमें गयी, मदनलाल मेरे साथ गये। कभी उन्होंने

मुझपर जादू किया था, अब उनपर मेरा जादू चल रहा था। वे मेरे रूपपर मुग्ध हो गये, और अपना देश, उद्देश्य, काम सब कुछ भूल बैठे, जिस प्रकार बालक स्कूलमें जाते समय कोई तमाशा देखकर स्कूलका ख्याल भूल जाता है। उनके पास रुपयेका टोटा न था। वे इस प्रकार खुले हाथों खर्च करते थे मानों करोड़पति हों और जो घटनायें पीछे हुईं उनसे जान पड़ा कि वे वास्तवमें करोड़पति थे।

इसी प्रकार कुछ वर्ष बीत गये, मेरा हृदय मदनलालसे उचाट हो गया। उन्हीं दिनों एक बड़े धनाढ्य बूढ़े सौदागरसे मेरा परिचय हुआ। वह वस्तुतः अमरीकाका रहनेवाला था, इंग्लिस्तानमें कारोबारके लिये आया हुआ था। अब वह बहुतसा रुपया कमाकर वापस जानेवाला था। मुझे देखकर वह लट्टू हो गया। मेरी दृष्टि उसके रुपयेपर पड़ी। मदनलालके पास अब रुपयेका टोटा होने लगा था। मैंने इस धनाढ्य बूढ़ेकी ओर मन दिया, और अमरीका पहुंचते ही उससे विवाह कर लिया।

## ४

इसके पश्चात् मैंने स्टेज छोड़ दिया और न्यूयार्कमें बड़ी आन-बानसे जीवन बिताने लगी। परन्तु मदनलालका जीवन दुःखमय हो गया। उन्हें आशा नहीं थी कि मैं इस तरह आंखें चुरा जाऊंगी, एक दिन मेरे पास आकर बोले "मै नहीं समझता था कि तुम इतनी कोरी हो जाओगी।"

मेरे लिये यह शब्द असह्य थे। मैंने गर्म होकर कहा "तो क्या तुम्हारा यह अभिप्राय है कि तुम मेरी अपनी छतके नीचे मेरा अपमान करने आये हो।"

मदनलाल बैठे थे, यह सुनकर खम्भेकी नाईं तनकर खड़े हो गये, और धीरे-धीरे कहने लगे "तुम्हारे अपमानके लिये, नहीं मेरीन! तुम भूलती हो, संसारमें कोई बुरासे बुरा शब्द ऐसा नहीं, जो तुम्हारे अपमानके लिये कहा जा सकता हो। तुमने मेरे साथ धोखा नहीं किया, कर्त्तव्य, प्रेम,

मनुष्यत्व, देशप्रेम और स्त्री-जातिके स्त्रीत्वके साथ धोखा किया है। मेरे हृदयमें अमरीकाका गौरव बैठा हुआ था, तुमने उसपर हड़ताल फेर दी है। मेरे हृदयमें स्त्री-जातिके लिये सम्मान था, तुमने उसे छील दिया है। मैं समझता था, स्त्री कुछ नहीं चाहती, केवल प्रेम चाहती है। तुमने अपने उदाहरणसे सिद्ध कर दिया कि स्त्री सब कुछ चाहती है, केवल प्रेम ही नहीं चाहती। उसके हाथमें वह साधन है जिससे पुरुषोंको वह मूख बनाती है और समयपर इस प्रकार बदल जाती है, मानों उसका कोई सम्बन्ध ही न था। यह विचार, और नहीं तो तुमने अमरीकन स्त्रियोंके सम्बन्धमें तो सच्चा सिद्ध कर दिया है। भारतवर्षके लिये तुम्हारा सन्देश अमरीकन मान प्रतिष्ठाको लोगोंकी दृष्टिमें बहुत घटा देगा।"

मुझपर इनमेंसे किसी बातका असर न हुआ। परन्तु अन्तिम शब्दों-पर लज्जासे पानी-पानी हो गयी। अमरीकन स्त्री सब कुछ सह सकती है, परन्तु यह नहीं सह सकती कि देशघातक है। उसने देशकी प्रतिष्ठाको नीचे गिरा दिया है। इन शब्दोंसे मेरे कलेजेपर छुरियां चल गयी। मुझको उस समय इतना क्रोध था कि यदि हाथमें पिस्तौल होती तो मदनलालको वहीं ढेर कर देती। मदनलालने जब यह शब्द कहा तब उनके चेहरे पर क्रोध न था, परन्तु मैं सुनकर पागल हो गयी और चिल्लाकर बोली—"मेरे मकानसे निकल जाओ।"

मदनलालने आश्चर्य्यसे मेरी ओर देखा। कदाचित् उनको यह ख्याल न था कि मनुष्य इतना नीच भी हो सकता है। उस समय मेरे शरीरपर उन्हींके रुपयेसे खरीदे हुए आभूषण थे। यदि वे चाहते तो उनकी ओर अंगुली करके ही मेरा सिर नवा सकते थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया और चुपचाप मेरे मकानसे निकल गये।

आठ दस मास व्यतीत हो गये, मैं मदनलालको भूल गयी। मुझे इतना भी स्मरण नहीं रहा कि मैंने उनको कोई चोट पहुंचायी है। मेरे भारतीय पाठक आश्चर्य्य न करें, अमरीकन स्त्रीकी प्रकृति ही ऐसी है। वे पुरुषोंका

मन डोलती है और भूल जाती है। एक दिन बाजारमें और [illegible] में घूम गयी। वहां एक योगी बैठा था। उसके वस्त्र गेरुए थे। [illegible] जटायें, परन्तु मुखमण्डल इस प्रकार [illegible] था, [illegible] दोनोंमें सात्विक आनन्द की लहरें। वह योगीने [illegible] और गीताका पाठ अध्याय खुला रखा था जिसमें मनुष्योंको [illegible] करनेकी शिक्षा दी गयी है। उसके मनमें आनन्द था, [illegible] मोहिनी-शक्ति। योगासीन [illegible]

एकाएक उसके नेत्र मेरी ओर उठे। [illegible] महाप्राण थे। [illegible] उसका उपदेश [illegible] मेरी ओर [illegible] उसके प्राणोंमें [illegible] आँखें खुला न रखा।

न थी। परन्तु उसका गाना सुनकर मैं मुग्ध हो गई। उसमें ऐक्टिङ्ग न था। वह जब गाती थी तो आंखें न मटकाती थी, न किसी अङ्गको हिलाती थी। उसमें एक विशेष गौरव पाया जाता था जो भारतीय स्त्रियोंमें ही पाया जा सकता है। मुझे अपना स्टेज फीका प्रतीत होने लगा।

दूसरे दिन मैं उसके निवासस्थानपर पहुंची। उसने पूर्वीय ढङ्गसे मेरा स्वागत किया और एक कुर्सीपर मुझे बैठाकर दूसरीपर आप बैठ गई। मेरे आश्चर्यकी थाह न रही। इससे पहली रात उसे दूरसे देखा था, अब पास आकर देखा तो चकित रह गई। वह इतनी सुन्दर थी कि मेरी आंखें झपक गईं। उसके शरीरपर कोई भूषण न था, कोई पदक न था, परन्तु फिर भी रूप आंखोंमें चुभा जाता था। मैंने सादर कहा—"आपने रातको खूब गाया।"

सावित्रीने अत्यन्त सरस और सरल अंग्रेज़ीमें पूछा—"आप भी जलसेमें थीं? आपको मेरा गाना पसन्द आया?"

"बहुत अच्छी तरहसे, आप इस कलामें निपुण हैं।"

"यह न कहिये। रागविद्या समुद्र है। इसका पार किसने पाया है?"

"आपने।"

सावित्रीने मुस्कराकर कहा—"मै तो पहली ही सीढ़ी पर हूं।

"यह आपकी भारतीय विनय है। अन्यथा मेरी सम्मति तो आपके विषयमें बहुत ऊंची है।"

"क्योंकि मे आपके यहां, अतिथि हूं।"

"नहीं प्रत्युत इसलिये कि आपमें वह वस्तु है जो सोते हुए आत्माओंको जागृत कर देती है।"

सावित्री चुप हो गई, प्रत्यक्षत: वह इससे अप्रसन्नसी हुई। मैंने समझा, यह सब दिखावा है, परन्तु बादको घटनाओंने इसे झूठा सिद्ध कर दिया। मैं ज्यों-ज्यों उससे मिलती गई, उसकी प्रतिष्ठा मेरी आंखोंमें बढ़ती गई। यहां तक कि मेरा हृदय उसकी पूजा करने लगा। उसका हृदय मानसिक तत्त्वका

खजाना था। मस्तिष्क आत्मज्ञानका समुद्र। रुपयेकी उसको तनिक भी लालसा न थी। Performance से जो आय होती थी, उसमेंसे अधिकांश वह दान कर देती थी। उसके साथ जो सेवक थे, उनसे उसका बर्ताव सगे भाइयोंकासा था। उसकी प्रकृति छिछोरी न थी। जो कुछ कहना होता, थोड़ेमें कह देती। उसके इन गुणोंपर मैं मुग्ध हो गई। वह मुझे इस पार्थिव जगत्‌की सुन्दरी मालूम न होती थी। वह फूलके समान सुन्दर और ओसके बिन्दुके समान पवित्र देख पड़ती थी, संसारके जालसे रहित। एक दिन मैंने उससे पूछा—"तुम्हारे यहां आनेका कारण क्या है, यह तो मालूम न हुआ।"

सावित्रीका चेहरा बदल गया। उसने कोई उत्तर न दिया।

मैंने पूछा—"रुपया कमाना ?"

"भारतीय स्त्री रुपयेको तुच्छ समझती है।"

"अपनी सङ्गीत-कलाकी प्रसिद्धि ?"

"इसमें भी उसको कोई प्रसन्नता नहीं।"

"दुनियाकी सैर ?"

"यह भी नहीं।"

मैं विस्मित सी होकर बोली—"फिर आपका वास्तविक प्रयोजन क्या है।"

सावित्रीके नेत्रोंमें आंसू आ गये। उसकी सुन्दर पलकोंपर जलके बिन्दु लहराने लगे। ऐसा प्रतीत होता था कि मेरे इस प्रश्नसे उसके हृदयका पुराना घाव हरा हो गया है। मुझे अत्यन्त दुख हुआ। सावित्री बोली—"बहन ! मैं एक विशेष प्रयोजनसे यहां आई हूं, कभी अवसर मिला तो तुमसे अपनी कहानी कहूंगी।"

मैंने उत्तर दिया—"अभी न कह दो, मेरा हृदय इसके लिये अत्यन्त व्याकुल हो रहा है।"

सावित्री ऐसी स्त्री न थी जो सहज ही में अपनी आप बीती किसीके सामने रखनेको उद्यत हो जाती। परन्तु मेरे मेल मिलापने उसे विवश कर

दिया। ठंढी सांस भरकर बोली—"अभी सुन लो।"

मै दत्तचित्त हो गई। सावित्रीने अपनी आत्मकथा आरम्भ की।

## ६

"बहन! मैं पजाव देशके विख्यात नगर अमृतसरकी रहनेवाली हूं। यह सिक्खोंका एक ऐतिहासिक नगर है। मेरे माता-पिताके पास जागीरें नहीं थीं, परन्तु उनकी अवस्था ऐसी अवश्य थी कि लोग उनकी धनाढ्योंमें गिनती करते थे। मुझे उन्होंने बड़े लाड़ प्यारसे पाला और जब मैं युवावस्थाको पहुंची, तो व्याहकी तैयारियां आरम्भ कर दीं। परन्तु इससे मुझे प्रसन्नता न हुई। कारण यह कि मेरे हृदय-पटपर एक मूर्त्ति अङ्कित हो चुकी थी और मैंने निश्चय कर लिया था कि विवाह करूंगी तो उन्हींसे करूंगी अन्यथा सारी आयु कुवारी रहकर व्यतीत कर दूंगी। वे इतने सुन्दर, इतने बुद्धिमान्, इतने सज्जन थे कि मै उनकी पूजा करती थी। जहांतक मैं समझती हूं, ऐसा पुरुष सारे नगरमें न था। वे उसी मुहल्लेके रहनेवाले थे, जिसमें मैं रहती थी। बाल्यावस्थामें हम दोनों एक साथ खेला करते थे। हमने कभी मुखसे एक-दूसरेपर प्रेम प्रगट नहीं किया था, कभी विवाहकी प्रतिज्ञा नहीं की थी। परन्तु दोनों हृदयोंमे यह प्रेम इस प्रकार रच गया था जैसे दूधमें मिश्री। हमको एक-दूसरेपर पूर्ण विश्वास था और निश्चय था, कि कोई एक दूसरेको धोखा नहीं दे सकता।

"जब मेरे विवाहकी बात चली, तो मुझे चिन्ता हुई। सुतरां मैंने एक सहेलीके मुहसे अपनी मांको अपना सन्देशा भेजा। इस बातका सुनना था कि मेरी मां आग बबूला हो गई और मुझे धिक्कार-फटकार करने लगी। मैंने उन्हे स्पष्ट शब्दोंमें सारी बात कह दी। भारतीय कन्याके लिये यह बात असाधारण है। वहां यह निर्लज्जता समझी जाती है। तो भी मैने यहां तक जाना स्वीकार किया। परन्तु इसका कुछ फल न हुआ। मेरे माता पिता उनके साथ विवाह करने पर सम्मत न हुए, क्योंकि वे कोई इतने धनवान

न थे! कदाचित् भारतवर्ष ही एक ऐसा अभागा देश है जहाँ कन्याओंके लिये अपने विवाहमें भी सम्मति देना एक भारी अपराध है। मेरे नेत्रोंमें संसार अन्धकारमय हो गया। अन्तमें जब सब ओरसे निराशा दिखाई दी तो एक दिन हम दोनों घरसे निकल भागे।

"बहन! भारतवर्षमें यह प्रेम अत्यन्त घृणित समझा जाता है। वहां इस प्रकारकी बातको लोग सहन नहीं कर सकते। जो कन्या घरसे निकल आये, उसके लिये भारतवर्षमें कोई आदर नहीं। सैकड़ों माता पिता इस लज्जासे बचनेके लिये विष खा लेते हैं, सहस्रों नदियोंमें कूद पड़ते हैं, सहस्रों पेटमें छुरियां भोंक लेते हैं। मैं यह सब कुछ जानती थी, परन्तु प्रेमने मुझे बावली बना दिया था। मैं यह समझ नहीं सकती थी कि मैं अपना मन और मस्तिष्क एक मनुष्यको देकर अपना शरीर दूसरे मनुष्यको किस प्रकार सौंप सकूंगी? इसका उपाय यह हो सकता था कि मैं अपने आपको बलिदान कर दूं। परन्तु जब उनका ध्यान आता था तो हृदय कांप उठता था। इस कारण मैंने भागना स्वीकार किया, परन्तु कई मास पर्य्यन्त मन स्वस्थ न हुआ। वे स्वय कई मासतक सोते-सोते चौंक उठा करते थे। हमने वेदमन्त्रोंके साथ अग्निके सम्मुख शास्त्रोक्त विधिसे विवाह कर लिया और हिमालयकी तराईमें एक कुटिया बनाकर रहने लगे।

"हमारी आवश्यकताएं सामान्य थीं, उस झोपड़ीमें रहते दो वर्ष निकल गये। वे दिन मेरे जीवनके सुखमय दिन थे। हम फल-फूल खाते थे। प्राकृतिक दृश्य देखते थे, और प्रेमके पांसे खेलते थे। हमारे जीवनके यह वर्ष भोगविलासके दिन थे, जिनको स्मरण करके अब भी हृदय रो उठता है। बहन! तुम्हारा यह नगर बहुत रमणीय है। परन्तु हिमालयकी तराईको उस कुटियासे इसकी कोई तुलना नहीं, जो सन्तोषकी मूर्त्ति बना हुआ अपने अतीत कालके ऐश्वर्य्य और विभूतिका स्मरण कर रहा है। वहां दिनको धूप खेलती थी, रात्रिको चांदनी। पर्वतकी चोटियां दूरतक इस प्रकार एक दूसरीके पश्चात् ऊंची होती गई हैं, मानों उसकी शृङ्खला कभी समाप्त ही नहीं

होती। वह दृश्य स्मरण होते ही मैं उड़कर वहां पहुंच जाना चाहती हूं, जहां हमारा जीवन एक ऐसा वसन्त ऋतु था जिसने कभी शिशिर कालके झोंके न देखे थे।

"बहन! वे मुझपर तन-मनसे निछावर थे। हम दिन-रात प्रेमकी प्यासी आंखोंसे एक दूसरेको देखते थे, पर कभी जी न भरता था। हमारा प्रेम खुले आकाशके समान विशाल था, जिसका कोई अन्त दिखाई नहीं देता; पत्थरके समान दृढ़ था, जिसमें कोई छिद्र नहीं होता। मैं प्रायः सोचा करती थी कि यदि मैं भाग न निकलती, तो यह प्रेमका अमृत, जिसमें दुखका किंचित्मात्र भी अंश नहीं, मुझे कैसे प्राप्त होता। हमारी कुटियाके निकट ही थोड़ी दूर पर कुछ सन्यासी रहते थे, जो संसारके सम्बन्धोंको तोड़कर, परलोक सुधारनेकी चिन्तामें भक्ति करते थे। वे हमें देखकर इस प्रकार प्रसन्न होते थे, जिस प्रकार पिता पुत्रोंको देखकर। हम उनके आशीर्वादकी छायातले सुखसे जीवनके दिन व्यतीत करते रहे।

"दो वर्ष बीत गये। हमारी कुटियाकी छत और दीवारे जीर्ण हो गईं, जिस प्रकार मनुष्यकी देह वृद्धावस्थामें ढल जाती है। एक दिन उन्होंने भूमि खोदनी आरम्भ की, जिससे छत और दीवारें सँवारी जाय। यह काम उन्होंने पहले न किया था, हाथोंमें छाले पड़ गये। परन्तु इसके सिवा और कोई उपाय न था। मैं उनकी सहायता करती थी, परन्तु मेरे बनाये कुछ न बनता था। पसीना-पसीना होकर वे भूमिको खोद रहे थे, कि सहसा उछल पड़े। मैं दौड़ती हुई गई, और आनन्दसे पागल होकर झूमने लगी। वहां एक देग थी जो स्वर्णकी मोहरोंसे मुंह तक भरी हुई थी। उन्होंने सावधानीसे चारों ओर देखा, और मुझको कहा 'चुप।'

७

"बहन! यदि यह घटना नगरमें होती, तो दुहाई मच जाती, और लोगोंके ठट्के ठट्ट इकठे हो जाते। परन्तु वहां हमारे सिवा दूसरा कौन था।

हमने देगको खींच कर बाहर निकाला, और सोचने लगे कि इस रुपयेसे क्या किया जाय। अन्तमें यह निश्चय हुआ कि इसे परोपकारके काममें लगाया जाय। हम सावधानीसे नीचे मैदानमें आये, और इमारतें बनवानी आरम्भ कर दीं। एक वर्षके अन्दर उजाड़ भूमि एक रमणीक बस्ती बन गई। कहीं अनाथालय बन गये, कहीं अस्पताल, कहीं धर्मशाला, कहीं तालाब। हमारा महल उस नगरके मध्यमें था, और इतना सुन्दर, कि देखकर चित्त प्रसन्न हो जाता था। हम घरसे भिखारी बनकर निकले थे, यहाँ राज भोगने लगे। मुझे कोई विशेष कार्य्य न था, परन्तु वे दिन रात काममें लीन रहते थे। कहीं अनाथालय और गौशालाका हिसाब आता था, कही लोगोंके झगड़े। उनको कई बार तो भोजन करनेका भी अवसर नहीं मिलता था। मेरे आनन्दका ठिकाना न था। मुझे इन पवित्र दृश्योंसे आध्यात्मिक सुख मिलता था, यद्यपि इस आध्यात्मिक आनन्दने मुझसे मेरे पतिका अधिकांश समय दूसरोंके लिये छीन लिया था।

"एक दिन वे बहुत रात्रि गये महलमें आये! द्वारपाल और दास-दासियां सब सो गये थे। मैंने दौड़कर प्रेम और क्रोधकी मिली-जुली आवाज़में पूछा 'आज देर क्यों कर दी?'

"उन्होंने मुझे प्रेमभरी दृष्टिसे देखकर उत्तर दिया 'कन्याओंके लिये पाठशाला खोलनेका विचार है। उसके लिये स्कीम बना रहे थे।'

'कल बना लेते।'

'नही मैं उसे जल्दी समाप्त करना चाहता हूं।'

'इतनी जल्दी काहेकी है?'

"उन्होंने फिर उसी दृष्टिसे मेरी ओर देखा और कहा 'तुम्हे यह भी मालूम है, देशमें क्या हो रहा है?'

"यह १९०७ ई० की बात है।

"मैंने सादगीसे उत्तर दिया 'क्या हो रहा है, मैं नहीं जानती, तुम्हीं जानो।'

'देश-भक्तिका समय है। लीडर कैद हो रहे हैं।'

'जानती हूं। जो समाचारपत्र आपने मगवा दिये हैं, उसमें बड़े-बड़े भयानक समाचार होते हैं।'

'तो तुम्हारा भी तो कुछ कर्त्तव्य है।'

"मैंने उत्तरमें पूछा—'मेरा क्या कर्त्तव्य है?'

'देशके लिये कुछ बलिदान करो। कहो करोगी?'

'करूंगी।'

'क्या करोगी?'

'अपना सारा रुपया जातीय कार्य्योंके लिये दे दो।'

'वह तुम्हारा था ही कब। क्या पता किसका दबा हुआ था, कोई अपनी वस्तु दो।'

'मेरे अपने पास तो कुछ भी नहीं है।'

'.........मुझे दे दो।'

"मैं चौंक पड़ी, और पीछे हटकर बोली 'यह क्या कहते हो?'

'जातिको रुपयेकी आवश्यकता है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु रुपयेसे भी बड़ी आवश्यकता देशको सच्चे मनुष्योंकी है। एक परिश्रमी पुरुष लाखों-रुपये पैदा कर सकता है, परन्तु लाखों रुपये एक पुरुषको नहीं बना सकते।'

"मेरे नेत्रोंमें आँसू आ गये। मैंने रोते हुए कहा 'मेरा हृदय कैसे मानेगा?'

"उन्होंने मेरा हाथ अपने हाथमें ले लिया, और पहलेसे अधिक मीठे व पहलेसे अधिक नम्र शब्दोंमें बोले—'मैं तुम्हें सदाके लिये थोड़े ही कहता हूं। केवल थोड़े वर्षोंके लिये आज्ञा दो, मैं विलायत जाकर कानून पढ़ना चाहता हूं।'

'क्या इसके बिना देश-सेवा नहीं हो सकती?'

'हो सकती है, परन्तु इससे इस समय कानून जाननेवालोंकी अधिक

आवश्यकता है। तनिक विचार करके देखो देश-सेवाके क्षेत्रमें जितने लोग निकले हुए हैं, सबके सब कानून जाननेवाले हैं।'

"मैंने उत्तर दिया 'फिर मुझे भी साथ ले चलो।'

'पागल कहींकी। कभी ऐसा भी हो सकता है।'

'हो क्यों नहीं सकता, मैं तुम्हे वहाँ पढ़नेसे रोक थोड़े ही लूगी।'

"इसपर उन्होंने लम्बी चौड़ी वक्तृता दी और देशकी करुणावस्थाका मेरे सामने फोटो खींच दिया। परन्तु मैं सहमत न हुई। मेरे हृदयमें देशका दुख न था, यह बात न थी। यदि मुझे कोई कहता कि तुम्हारे सिर देनेसे भारतका कल्याण हो सकता है, तो मैं निस्सन्देह अपना सिर अपने हाथसे काटकर फेंक देती। परन्तु उनका वियोग मुझसे सहा न जाता था। मैं अपनी बातपर बराबर जमी रही। परन्तु उन्होंने भी वह हठ पकड़ा कि चुप न हुए, यहांतक कि मुझे सहमत होना पड़ा। जल-बिन्दुओंके निरन्तर प्रपातने पत्थर-में छेद कर दिया। अब जब सोचती हूं तो आश्चर्य होता है कि उस समय कैसे मान गई थी।"

८

"बहन जब वे चले गये, तो मैं बावली-सी हो गई। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों जगत्का प्रत्येक पदार्थ बदल रहा है। सूरज अब भी चढ़ता था, चन्द्रमाकी किरणें मेरे महलपर अब भी खेलती थीं, आकाशपर घटाएँ अब भी उठती थीं। परन्तु उनमें वह सुन्दरता, वह आकर्षण, वह मोहिनी न थी। मैं पछताने लगी कि उस समय क्यों मान लिया। बम्बईसे पत्र आया, तुम्हारी स्मृति साथ लिये जा रहा हूं। यह सुनकर मेरा हृदय रोने लगा। विलायतसे पत्र आया धीरज रखना, मैं शीघ्र आ जाऊंगा परन्तु मुझे धीरज न था। दिन रोनेमें कट जाता, रात्रि जागनेमें। मेरा स्वास्थ्य बिगड़ने लगा, घबराकर लिखा, मुझे वहीं बुला लो, मेरा मन सदैव उदास रहता है। उत्तर आया कुछ समय और हृदयपर पत्थर रख लो। इन पत्रोंमें, सहानुभूति,

वियोग, और प्रेमके भाव सदैव छिपे रहते थे, उनका आना-जाना जीवनका आधार बन गया। वे इतने सुन्दर हैं कि स्त्रियां उनको देखकर मुग्ध हो जाती हैं। ऐसे पतियोंकी स्त्रियोंको सन्देह करनेके अवसर प्रायः मिलते रहते हैं। परन्तु मुझे उनपर कभी सन्देह नहीं हुआ, क्योंकि मैं जानती थी कि वे इतने भलेमानस और सज्जन पुरुष हैं कि किसी स्त्रीकी ओर आंख उठाकर भी नहीं देखते। वे इसे भी मेरे साथ विश्वासघात समझते हैं। जब वे जाने लगे तो मेरी एक सखीने कहा था कि, उनपर कोई मेम जादू न कर दे। मैंने क्रोध-से उसका मुह दबा दिया था। मेरा विचार था कि ससारमें सब कुछ हो सकता है, परन्तु यह नहीं हो सकता। मुझे क्या पता था कि मेरे भाग्य भी फूट जायगे।

"दो वर्ष उनके पत्र बराबर आते रहे। परन्तु इसके पश्चात् उनका आना बन्द हो गया। मैंने रो-रोकर लिखा, मुझे बिन आई मौत न मारो, तुम्हारे पत्र मेरे लिये रामबाण हैं, परन्तु कोई उत्तर न आया। मैं घबरा गई, मनमें करोड़ों प्रकारकी आशङ्कायें उठने लगी। तार दिये, आदमी भेजे, परन्तु कोई पता न लगा। इतना पता मिला कि जहाँ पढ़ते थे, अब वहाँ नहीं हैं। परन्तु कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं, इसका कोई पता न लगा। अन्तमें मैंने अपने दीवानको इंग्लैण्ड भेजा, कि जाकर पूरा पूरा हाल लिखे। वह दीवान अपने काममें अत्यन्त चतुर था। मुझे उसपर पूरा-पूरा भरोसा था। उसने जाकर कई मासतक खोज करनेके पश्चात् लिखा कि वे एक अमरीकन कम्पनीकी एक्ट्रेसके साथ अमरीका चले गये हैं। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानों सांपने काट खाया हो। कई दिनतक मूर्छा आती रही। मेरे पास रुपये पैसेकी त्रुटि न थी, दास दासियोंकी कमी न थी, मुझे किसी प्रकारका कष्ट न था, परन्तु हृदय सदैव रोता रहता था। मैंने अपने दीवानको लिखा, अमरीका चले जाओ, और उनकी खोज करो। दीवान अमरीका चला गया और कई मास-तक उनको ढूंढ़ता रहा। अन्तमें उसने मुझे सूचना दी, कि उस स्त्रीके विश्वासघातसे उनका मन खट्टा हो गया है। उसने सैकड़ों बार प्रार्थना की,

सैकड़ों प्रकारसे समझाया, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। बराबर अपने हठपर अड़े रहे, और यही कहते रहे कि मैंने वह पाप किया है कि अब अपनी स्त्रीको मुह नहीं दिखा सकता। अन्तमें मैंने अपने हितचितकोंकी सम्मतिसे यह निश्चय किया, कि स्वय अमरीका चलूं। जब हम हिमालयकी उपत्यकामें अपनी कुटियामें रहते थे उस समय मैं गानेका अभ्यास किया करती थी, जिसे सुनकर वे अपने आपको भूल जाया करते थे। मैंने अमरीकामें आकर इस कलासे पतिकी खोजका निश्चय किया, कि कदाचित् इसी उपायसे उनका कुछ पता लग जाय। परन्तु मैं अगरेजी न जानती थी। मैं रामायण, महाभारत पढ़नेवाली, भजन गानेवाली साधारण हिन्दू स्त्री, मेरा हृदय डोल गया, जिस प्रकार वायुके झकोरोंसे कभी-कभी नौका डोलने लगती है। तथापि मैंने अंगरेजी पढ़ना आरम्भ कर दिया। हृदयमें उत्कण्ठा थी, मस्तिष्कमें लगन। कुछ मासमें ही बोलने लगी और मुझे इसमें अच्छा अभ्यास हो गया। कुछ हिचकिचाहट थी वह जहाजमें पूरी हो गई।

"बहन! यहाँ आनेसे मेरा और कोई उद्देश्य नही, केवल उनकी खोज करना है। परमात्मा जाने सफलता होगी या नही।'

यह कहते-कहते सावित्रीके विशाल नेत्रोंसे आंसू बहने लगे।

## ६

मैं समझ गई कि उसके सुन्दर मुखपर उदासीनताका रङ्ग क्यों लहराता रहता था। भारतीय रमणीके लिये उसका पति ही सब कुछ है, यह मैं कहानियोंमें सुनती थी, पुस्तकोंमें पढ़ती थी, परन्तु विश्वास न था, आज वह प्रत्यक्ष देख लिया। उसे उदास देखकर मैं कुढ़ती थी, परन्तु यह ज्ञान न था कि उसके दुखका कारण मैं ही निकलूगी। मेरे हृदयपर किसीने जलते हुए अङ्गारे रख दिये। मैं रोती हुई उठी और उसके चरणोंसे लिपट गई। शिकार और शिकारी दोनों रोने लगे। मैंने रोते-रोते अपने अपराधको स्वीकार किया। सावित्रीके नेत्रोंसे अग्निके अङ्गारे निकलने लगे। उसने क्रोधमें

आकर मुझे धक्का दिया और कहा, फिर दोबारा मेरे सामने न आना। यह अपमान मेरे लिये असह्य था। परन्तु सावित्रीकी प्रेमकथा और सद्व्यवहारने मुझपर जादू कर दिया था। मुझे उसपर नहीं, अपने आपपर क्रोध आ रहा था। सावित्रीके महान् आत्माने अमरीकन प्रकृति-पूजाकी भयानक मूर्त्ति मेरे सम्मुख रख दी। मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया कि मदनलालका पता ढूंढ़ निकालूगी।

कई मास बीत गये। सावित्री बहुतसे नगरोंमेंसे घूमकर फिर न्यूयार्कमें आ गई। उसके रूप, आकार व पहिनावसे समाचारपत्र भरे होते थे, परन्तु उसके पतिका पता न लगा। मैंने भी अपनी ओरसे पूरा प्रयत्न किया, परन्तु सब व्यर्थ हुआ। यहांतक कि मैं इस ओरसे निराश हो गई।

रात्रिका समय था। मैं सुखसे सोई हुई थी। एकाएक कोलाहलसे आंखें खुल गईं। देखा मकानमें आग लग रही थी। मैं अधाधुंध नीचे उतर आई। वहां सहस्रों मनुष्योंकी भीड़ थी। पानीका इन्जन अग्नि बुझानेके लिये नदियां बहा रहा था परन्तु अग्नि किसी प्रकार ठण्ढी न होती थी। वह जलके प्रवाहसे निकल-निकलकर ऊंची उठती थी। मेरा कलेजा धड़कने लगा।

एकाएक ख्याल आया, मेरा पति ऊपर है। वह रात्रिके समय एक तीक्ष्णसी मदिरा पिया करता था, जिसके मदसे सारी रात उसपर बेसुधि सी छायी रहती थी। इस समय भी उसके मदसे बेसुध पड़ा होगा। मैंने चिल्लाकर कहा, मेरा पति।

यदि यह घटना पहले होती, तो मुझे पतिकी पर्वा न होती। परन्तु सावित्रीके प्रेमने मेरे विचारको बदल दिया था। अब मै समझ गई थी, कि पति-पत्नीका सम्बन्ध शारीरिक नहीं प्रत्युत आत्मिक होता है। मैं अब उसे आत्माकी पूर्ण शक्तिसे चाहने लगी थी। वह आयुमें मुझसे बहुत बड़ा था, और मैंने विवाह करते समय केवल उसके रुपयेपर दृष्टि दी थी। परन्तु सावित्रीने मुझे सिखा दिया कि पतिका प्रेम क्या वस्तु होता है। अब मैं उसके रुपयेको नहीं परन्तु उसीको चाहती थी। इसलिये अनुमान किया जा सकता

है कि उसे मृत्युके मुखमें देखकर मेरे हृदयपर क्या बीती होगी। मैंने भय व त्राससे चिल्लाकर कहा "मेरा पति"। लोग अवाक् हो गये। उनको यह ख्याल न था कि वह अभीतक ऊपर रह सकता है। वहां इस समय भयकर निराशा उपस्थित थी, अग्नि महल्लेके कोने-कोनेमें जा चुकी थी, और जहां न गयी थी, वहां वेगसे जा रही थी, और उसकी मृत्युको क्षण-क्षणमें निश्चित बना रही थी। यह दृश्य सहस्रों मनुष्य खड़े देख रहे थे, परन्तु किसीके पांव न हिलते थे। मैंने फिर चिल्लाकर कहा "मेरा पति! जो उसे बचायेगा मैं उसे दस हजार डालर दूंगी।"

जो काम सहानुभूति न कर सकती थी, उसे लालचने किया। बीसों मनुष्य आगे बढ़े, परन्तु पहली छतसे लौट आये। भयानक अग्निकी ज्वालाने रास्ता रोक रखा था। मेरे नेत्रोंसे आंसू बहने लगे। क्या वह नहीं बच सकता। मैंने मनही मन परमेश्वरके आगे हाथ बांधे और जलते हुए महलकी ओर आंख उठाई। आग अपने पूरे जोबनपर थी। मैंने फिर चिल्लाकर कहा "मेरा पति!"

भीड़में हलचलसी हुई। एक मनुष्य आगे निकला और अधाधुध सीढ़ियोंपर चढ़ गया। रास्तेमें आग पहरा दे रही थी, परन्तु वह उसे चीरता हुआ निकल गया। अग्निने अपनी लपलपाती हुई जिह्वाओंसे उसका पीछा किया परन्तु वह पहुंचसे बाहर जा चुका था। लोगोंने तालियां बजाकर उसके साहसकी प्रशसा की। मेरा कलेजा होठोंतक आ गया।

इतनेमें देखा, वह मनुष्य ऊपरकी छतपर जा पहुंचा और दृष्टिसे ओझल हो गया। लोगोंमें फिर हर्षकी ध्वनि उठी। अब वह उस कमरेको ढूढ़ रहा था, परन्तु बहुत समय तक उसे पता न लगा। वह इधर-उधर फिर रहा था, सहस्रों आंखे उस ओर भय और सहानुभूतिके मिले-जुले भावसे देख रही थीं और प्रत्येक पल जो बीत रहा था उस वीरकी मृत्युको निकट ला रहा था।

इतनेमें महलकी पिछली ओरसे एक मनुष्य आता दिखाई दिया। मेरे

आनन्दकी थाह न थी, यह मेरा पति था। मैं दौड़कर उससे चिमट गई, और बोली "तुम कहां थे ?"

"पिछवाड़ेमें।"

मैंने आश्चर्यसे पूछा "कब उतरे ?"

"बहुत देर हुई।"

मैंने ऊपर आंख उठाई, वह मनुष्य इधर उधर घूम रहा था। मैंने चिल्लाकर कहा "नीचे उतर आओ, ऊपर कोई नहीं है। वह बच गया है।"

सहस्रों मनुष्योंने मेरे शब्दोंको दोहराया "वह बच गया है तुम नीचे उतर आओ।"

वह तेजीसे नीचे उतरने लगा। लेकिन घबराहटमें किसी वस्तुसे ठोकर खाकर गिर पड़ा। सहस्रों आंखोंने यह दृश्य देखा, और सहस्रों हृदयोंने ठंढी सांसें भरीं। क्या वह बचेगा ? क्या वह बच सकेगा ?

प्रत्यक्षतः उसकी कोई आशा न थी। आग बढ़ रही थी, परन्तु वह बेसुध पड़ा था, और समय हाथसे जा रहा था। मेरे स्वामीके मुख पर पसीनेके बिंदु टपकने लगे। हमारे नौकरोंने दो कुर्सियां बिछा दीं। हम बैठकर अधीरतासे इस सहानुभूतिका भयानक परिणाम देखने लगे। वह अभीतक चित लेटा हुआ था। लोग चित्रवत् खड़े थे। संसारके सबसे बड़े सभ्य देशमें एक सहानुभूति रखने वाला मनुष्य प्रचण्ड अग्निमें लेटा हुआ था, पर किसीको आगे बढ़नेका साहस न था।

## १०

अकस्मात् एक मनुष्य पीछेसे भीड़को चीरता हुआ आगे बढ़ा, और तेजीसे सीढ़ीपर चढ़ गया। उसकी टांगोंमें बिजलीकी-सी शक्ति थी, और छातीमें फौलादका हृदय। लोगोंके रोकते-रोकते वह आगे बढ़ गया, और मृत्युकी दाढ़ोंमें घुसकर, धूएंके बादलमें लोप हो गया। लोगोंकी सांस रुक गई। एकाएक हर्षकी ध्वनि उठी, वह फिर दिखाई दे रहा था और जलते

हुए तख़्तोंके ऊपरसे गुजर रहा था। यह समय बड़ा भयानक था। यदि कोई तख़्ता जलकर टूट जाता तो उसकी मृत्यु निश्चित थी। परन्तु वह बड़ी सावधानीसे बढ़ रहा था, और वह पहला मनुष्य—वह अभीतक अचेत पड़ा था।

जलते हुए तख़्तोंके ऊपरसे गुज़रकर वह आगे बढ़ा। लोगोंके आशीर्वाद उसके साथ थे। सहसा प्रकाश उसके मुखपर पड़ा, मेरा कलेजा हिल गया। यह मदनलाल थे, जो एक बेचारे निस्सहाय मनुष्यको बचानेके लिए अपने प्राणोंपर खेल रहे थे। उनके गुण मेरे सामने नाचने लगे। मैंने व्याकुल होकर कहा "परमेश्वर करे वह बच जाय।"

मेरे पतिने पूछा "क्या तुम उसे जानती हो?"

"बहुत अच्छी तरहसे।"

"कोन है?"

"मदनलाल।"

मेरा पति कुर्सीसे उछल पड़ा "वही इण्डियन?"

"हाँ वही इण्डियन।"

"तुम्हारी सहेली—उसी विचित्र भारतीय गानेवाली स्त्रीका पति। तुम्हारा अभिप्राय उसीसे है?"

"हां उसीसे।"

"बड़ा सूरमा है। उसने अमरीकनोंकी नाक काट डाली है।"

"वह रह नहीं सकता था। सहानुभूतिकी तो वह मूर्ति है।"

"खुदावन्द उसकी रक्षा करे।"

मैंने जोशसे उत्तर दिया "वह करेगा। मेरी सहेली सावित्रीका प्रयत्न निष्फल नहीं जा सकता।"

"परमेश्वर दया करे"

मैंने ऊपर आंख उठाई, तो आनन्दसे उछल पड़ी। मदनलाल झुककर उस मनुष्यको उठा रहे थे। यह काम कुछ क्षणोंमें ही पूरा हो गया और वह

उस मूर्छित शरीरको भुजाओंमें उठाये हुए, धुएँके बादलों, अग्निकी कराल काली और लाल शिखाओंमें घुस गये। इस समय चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। लोगोंकी सांसतक रुकी हुई थी। इतनेमें वे निचली छतपर पहुंच गये। लोगोंकी हर्ष ध्वनिसे आकाश गूंज उठा। मदनलाल तलेसे नीचे उतरने लगे। परन्तु रास्तेमें मृत्यु बैठी हुई थी। अग्निकी लपलपाती हुई जिह्वाएं दीवारों और सीढ़ियोंको सर्पोंकी नाईं चाट चाटकर उन दोनोंका रास्ता बन्द कर रही थी। परन्तु मदनलाल भयभीत नहीं हुए। उन्होंने लबादेको नलसे भिगोकर अपने शरीरसे कसकर बांध लिया, सिरको लपेटा और अग्निमें कूद पड़े। लोगोंने चिल्लाकर कहा—"परमात्मा दया कर। इस वीरको अपनी कृपासे बचा।" और यह शब्द लोगोंके मुंहहीमें थे कि वह खतरेसे बाहर थे। मैं पागलोंकी नाईं आगे बढ़ी, आनन्दसे विह्वल हो गई। उनकी गोदमें सावित्री थी। मैं अपने आपेमें न रही और अचेत हो गिर पड़ी।

## ११

जब मुझे सुधि आई तो मैंने अपने आपको एक होटलमें पाया। मुझसे कुछ दूर सावित्री आरामकुर्सीपर लेटी हुई थी और मदनलालके साथ बात कर रही थी। इस समय उसके मुखमण्डलपर आनन्दकी चमक थी। मैं बावलीसी उठकर आगे बढ़ी और बोली—"मैं आप दोनोंसे क्षमा मांगती हूं।"

सावित्रीने मुझे खींचकर गलेसे लगा लिया और मुस्कराकर बोली—"बहन अब इस बातको जाने दो।"

"परन्तु मुझे चैन नहीं आयेगा। जबतक तुम्हारे होठोंसे न सुन लूंगी कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया है।"

सावित्रीने उत्तर दिया—"मेरा हृदय तुम्हारी ओरसे निर्मल है।"

मेरे हृदयसे किसीने बोझ हटा दिया, परन्तु फिर भी मैंने आंखें ऊपर न उठाईं और कहा—"एक उपकार और करो तो बड़ी कृपा हो।"

सावित्रीने मातृ वात्सल्यके साथ अपना हाथ मेरे कन्धेपर रखा और पूछा—"क्या है ?"

"इनसे भी कहो मुझे क्षमा कर दें। मैंने इनको बहुत कष्ट दिया है।"

मदनलाल इस समयतक इस प्रकार चुप थे, जैसे गूंगे हों। मेरी प्रार्थना सुनकर भी वे कुछ न बोले, और चुपचाप अपनी घड़ीकी चेनके साथ खेलते रहे। सावित्रीने कहा—"सुनते हो, बहन मेरीन क्या कह रही है ?"

"हां।"

"फिर क्षमा कर दो न।"

"इनका कोई दोष भी हो।"

मैंने बात काटकर कहा—"यह बात मेरे सम्बन्धमें है और मैं इसे स्वयं स्वीकार करती हूं। मैं तुम्हारी अपराधिन हूं।"

मदनलाल फिर भी चुप थे।

सावित्रीने कहा—"चलो अब कह दो, बेचारी कितनी दुखित हो रही है।"

मदनलाल बोले—"जहांतक मैं समझता हूं, इसमें मेरा ही अपराध था। यह कुमारी थीं, अमरीकाकी सभ्यतामें पली थीं, नाटक कम्पनीमें काम करती थीं। इनमें ऐसी बात हो जाना कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो यह है, कि मेरी आंखोंपर कैसे पट्टी बंध गई, जो मैं अपने देश, अपने धर्म, अपनी जाति, अपनी सभ्यता और अपनी रीति-नीति और अपनी पत्नीके साथ धोखा करने पर उद्यत हो गया। मुझे जब-जब ही यह स्मरण होता है कलेजेमें भाले चुभते हैं और आंखे ऊपर नहीं उठती। इसी कारण मैंने प्रायश्चित्त करनेके लिये साधु बनना स्वीकार किया। इसीलिए लाखों रुपयेका स्वामी होते हुए भी मैंने एक आफिसमें क्लर्की करना आरम्भ कर दिया था। मैं जानता था कि तुमपर क्या बीत रही होगी। परन्तु तुम यहांतक पहुंच जाओगी, यह न समझता था। इस समयतक मुझे तुम्हारे प्रेम और सदाचार अभिमान था, अब तुम्हारी योग्यता और साहसका भी ज्ञान हो गया

परन्तु मेरी आंखोंमें जो लज्जा है, वह पता नहीं कभी दूर होगी या नहीं। शेष रही मेरीनकी बात, उसके विषयमें मैं सच्चे हृदयसे कह रहा हूं, कि मेरे मनमें किसी प्रकारका रोष नहीं। मैं इन्हे क्षमा करता हूं।

सावित्रीके नेत्रोंमें जल भर आया। उसने रुद्ध कण्ठसे कहा—"यह न कहो, तुम्हे लजानेकी कोई आवश्यकता नहीं। परमात्माने मेरा लूटा हुआ सुख लौटा दिया है, मेरे लिये यही सब कुछ है।"

परन्तु मदनलाल इसपर सन्तुष्ट न हुए। दृढ़तासे बोलेः—

"नहीं तुम्हे भी मुझे क्षमा करना होगा, इसके बिना मेरे चित्तकी चञ्चलता दूर न होगी।"

सावित्रीने उत्तर दिया—"यह आप क्या कह रहे है ? भारतीय स्त्रियोंके मुखसे कभी ऐसे शब्द नही निकल सकते।"

"परन्तु तुम्हें ऐसा कहना होगा।"

"मैं फिर यह तो कह सकती हूं कि मेरे मनमें कोई मैल नहीं है, परन्तु मै यह नहीं कह सकती, कि मैंने क्षमा किया। मैं अपने आपको इसके योग्य नही समझती।"

"परन्तु तुम्हें कहना होगा।"

सावित्रीका मुखमण्डल लज्जासे तमतमाने लगा। वह भागकर बगलके कमरेमें जा छिपी। इस समय मेरा मन आनन्दसे विह्वल हो गया था। वही सावित्री जिसकी यशोदुन्दुभि अमरीकाके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक बज रही थी, इस समय पतिके सम्मुख एक बच्चेके समान लजा रही है। मेरे हृदयमें भारतके गौरवने सिर ऊंचा किया।

## १२

थोड़े दिन पश्चात् वे भारतको वापस लौट गये, तो मेरा चित्त उदास हो गया, जिस प्रकार बालक मातासे बिछुड़कर उदास हो जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा मानों मेरी कोई वस्तु खो गई है। मेरा पति सर्वदा मेरा

लाड़-चाव पूरा करनेमें अपनी सारी शक्ति लगा देता था, परन्तु मेरा हृदय-कमल सदैव मुर्झाया रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरा पति भी रोगी रहने लगा और छः मास पश्चात् मर गया।

इस घटनाने मेरे हृदयको चूर-चूर कर दिया और मेरा सारा सुख नष्ट हो गया। सावित्रीने इसपर एक लम्बा-चौड़ा पत्र लिखा। वह पत्र क्या था। संसारकी असारतापर एक मनोहर उपदेश था। मेरे हृदयको खोई हुई शान्ति मिल गई। मैं उसे सभालकर रखने लगी, मानों कोई बहुमूल्य और दुष्प्राप्य हीरा हो। अब भी जब मनमें व्याकुलता होने लगती है, तो यह पत्र चमत्कारका काम दे जाता है।

अन्तमें मुझसे न रहा गया। सावित्री और मदनलालकी लगनने मुझे भारतवर्षमे खींच लिया। परन्तु यहाँ आकर मेरा हृदय बैठ गया। उन दोनोंका पता न था। मैं हिमालयके पर्वतोंपर फिरी। मैदानोंमें घूमी। तीर्थोंपर गई परन्तु उनका कोई पता नहीं लगा। मेरा विचार था कि अपना समग्र धन उनके अर्पण करदूं जिसे वे परोपकारके कामोंमें लगा दें। इस विचारसे समाचारपत्रोंमें विज्ञापन दिये परन्तु फिर भी कोई परिणाम न निकला।

मैं हिमालयकी तराइयोंमें घूमने लगी। दूसरे देशकी स्त्री होनेपर भी जहां-जहाँसे मैं गुजरी, लोगोंने उदारतासे मेरा आदर सत्कार किया। उनके आदर सत्कारको देखकर—जिनमें सर्वदा प्रेम, सरलता और आदरके भाव मिले हुए होते थे—मेरे हृदयमें प्रश्न उठता है कि क्या यह भारत वही भारत है, जिसके विषयमें बाहर सहस्रों प्रकारकी झूठी निर्मूल और अप्रासङ्गिक बातें प्रसिद्ध हैं और की जा रही हैं। यदि मेरे वशमें होता तो भारतकी आत्मपरायणतापर अमरीका और फ्रान्सकी ऐश्वर्य्यमय और दिखावेकी सभ्यताको निछावर कर देती।

मैंने अपना रुपया बैंकमें जमा करवा दिया और उसे लिख दिया कि मृत्युके पश्चात उसे भारतीय जाति सेवकोंके हाथ दे दिया जावे और स्वयं हिमालयकी उपत्यकामें घूमने लगी। घूमते-घूमते एक दिन एक कुटिया

दिखाई दी। उसे देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कोई मेरी अपनी बहुमूल्य वस्तु मिल गई है। मेरे पास कोई प्रमाण नहीं, परन्तु मेरा मन साक्षी देता है कि यह वही कुटिया है, जिसमें सावित्री और मदनलालने अपने प्रेमके दिवस व्यतीत किये थे। यहांके जलवायुमें मेरे मनको शान्ति मिलती है और आत्मा ब्रह्मानन्दमें हो जाता है। जब प्रातःकाल मैं परमेश्वरके चरणोंमें झुककर प्रार्थना करने लगती हूं, तो मुझे ऐसा अनुभव होता है कि वह यहांसे बहुत ही निकट है और मेरी प्रार्थनाके एक-एक शब्दको कान लगाकर सुन रहा है।

इस कुटियामे रहनेसे मुझे मानसिक शान्ति मिल गई। अब मुझे कोई इच्छा नही। केवल यही आकांक्षा है कि मेरे जीवनकी अन्तिम घड़ी इस पुण्यभूमिमें आये, जिसको प्रकृतिने अपने अनन्त भण्डारसे भरपूर कर रखा है और जिसको आध्यात्मिकताने अपना आश्रय बनाया है। मेरा शरीर और उसकी अस्थियां भारतकी पुण्यभूमिके अन्दर निहित हों, और अगले जन्ममें (क्योंकि मुझे पुनर्जन्मपर विश्वास है) मुझे भारतवर्ष हीमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त हो।



# देशभक्त

१

"स्वामिन्, आज कोई सुन्दर सृष्टि करो ! किसी ऐसे प्राणीका निर्माण करो जिसकी रचना पर हमें गौरव हो सके। क्यों ?"

"सचमुच ? प्रिये, आज तुम्हें क्या सूझा जो सारा धन्धा छोड़कर यहां आयी हो और मेरी सृष्टि-परीक्षा लेनेको तैयार हो ?"

"तुम्हारी परीक्षा और मैं लूंगी ? हरे, हरे ! मुझे व्यर्थ ही काँटोंमें क्यों घसीट रहे हो नाथ ? योंही बैठी-बैठी तुम्हारी अद्भुत रचना 'मृत्युलोक' का तमाशा देख रही थी। जब जी ऊब गया तब तुम्हारे पास चली आई हूं। अब संसारमें मौलिकता नहीं दिखाई पड़ती। वही पुरानी गाथा चारों ओर दिखाई-सुनाई पड़ रही है। कोई रोता है, कोई खिलखिलाता है; एक प्यार

करता है, दूसरा अत्याचार करता है ; राजा धीरे-धीरे भीख मांगने लगता है और भिक्षुक शासन करने ! इन बातोंमें मौलिकता कहां ? इसीलिये प्रार्थना करती हूं ; कोई मनोरंजक सृष्टि सँवारो। संसारके अधिकतर प्राणी तुमको शाप ही देते हैं, एकबार आशीर्वाद भी लो।"

"अच्छी बात है। इस समय चित्त भी प्रसन्न है। किसीसे मानव-सृष्टिकी आवश्यक सामग्रियां यहीं मँगवाओ। आज मैं तुम्हारे सामने ही, तुम्हारी सहायतासे सृष्टि करूंगा।"

"मै, और तुमको सहयता दूंगी! तब रहने दो। हो चुकी सृष्टि। सृष्टि करनेकी योग्यता यदि मुझमें होती तो मैं तुमको कष्ट देनेको लिये यहाँ आती ?"

"नाराज क्यों होती हो भाई, तुमसे पुतला तैयार करनेको कौन कहता है ? तुम यहाँ पर चुपचाप बैठी भर रहो। हाँ, कभी-कभी मेरी ओर कभी मेरी कृतिकी ओर अपने मधुर कटाक्षको फेर दिया करना ! तुम्हारी इतनी ही सहायतासे मेरी सृष्टिमें जान आ जायगी ? समझीं ?"

"समझी ? देखती हूं तुम्हारी आदत भी कलियुगिये बूढों-सी हुई जा रही है। अभीतक आखोंमें जवानीका नशा छाया हुआ है।"

"और तुम्हारी आदत तो बहुत ही अच्छी हुई जा रही है। बूढे मारवाड़ियोंकी युवती कामिनियोंकी तरह जब होता है तभी 'खाँव, खाँव' किया करती हो। चलो जल्दी करो, सब चीज मंगाओ।"

२

क्षिति, जल, अग्नि, आकाश और पवनके सम्मिश्रणसे विधाताने एक पुतला तैयार किया। इसके बाद उन्होंने सबसे पहले तेजको बुलाकर उस पुतलेमें प्रवेश करनेको कहा। तेजके बाद सौन्दर्य, दया, करुणा, प्रेम, विद्या, बुद्धि, बल, सन्तोष, साहस, उत्साह, धैर्य, गाम्भीर्य आदि समस्त सद्गुणोंसे उस पुतलेको सजा दिया। अन्तमें, आयु और भाग्यकी रेखाएं बनानेके लिए ज्योंही विधाताने लेखनी उठायी त्योंही महामायाने रोका—

"सुनिये भी, इसके भाग्यमें क्या लिखने जा रहे हैं? और, आयु कितनी दीजियेगा?"

"क्यों? तुमसे इन बातोंसे मतलब? तुम्हें तो तमाशा भर देखना है, वह देख लेना। भौंहें तनने लगीं न? अच्छा लो सुन लो। इसके भाग्यमें लिखी जा रही है भयङ्कर दरिद्रता, दुःख, चिन्ता और इसकी आयु होगी बीस वर्षोंकी।"

"अरे! यह आप क्या तमाशा कर रहे हैं? बल, साहस, दया, तेज, सौन्दर्य, विद्या, बुद्धि, आदि गुणोंके देनेके बाद दरिद्रता, दुख और चिन्ता आदिके देनेकी क्या आवश्यकता है? इस सृष्टिको देखकर लोग आपकी प्रशंसा करेंगे या गालियाँ देंगे? फिर, केवल बीस वर्षोंकी अवस्था! इन्हीं कारणोंसे तो मृत्युलोकके कवि आपकी शिकायत करते हैं। क्या फिर किसीसे 'नाम चतुरानन पै चूकतै चले गये!' लिखवानेका विचार है?"

विधाताने मुस्कराकर कहा—"अब तो रचना हो गयी। चुपचाप तमाशा भर देखो। इसकी आयु इसी लिये कम रक्खी है जिसमें हमें तमाशा जल्द दिखाई पड़े।"

ब्रह्माणीने पूछा—"इसे मृत्युलोकवाले किस नामसे पुकारेंगे?"

प्रजापतिने गर्वभरे स्वरमें उत्तर दिया—"देशभक्त।"

२

अमरावतीसे इन्द्रने, कैलाससे शिवने, वैकुण्ठसे कमलापतिने—संसार-रङ्गमञ्च पर देशभक्तका प्रवेश उस समय देखा जब उसकी अवस्था उन्नीस वर्षकी हो गयी। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। देवमण्डलीका एक-एक दिन हमारी अनेक शताब्दियोंसे भी बड़ा होता है। हमारे उन्नीस वर्ष तो उनके कुछ मिनटोंसे भी कम थे!

देशभक्तके दर्शनोंसे भगवान कामारि प्रसन्न होकर नाचने लगे। उन्होंने अपनी प्राणेश्वरी पार्वतीका ध्यान देशभक्तकी ओर आकर्षित करते हुए कहा—

"देखो यह स्रष्टाकी अभूत-पूर्व रचना है। कोई भी देवता देशभक्तके रूपमें नरलोकमें जाकर अपनेको धन्य समझ सकता है। प्रिये, इसे आशीर्वाद दो।" प्रसन्नवदना उमाने कहा—"देशभक्तकी जय हो!"

एक दिन देशभक्तके तेजपूर्ण मुखमण्डल पर अचानक कमलाकी दृष्टि पड़ गयी। उस समय वह (देशभक्त) हाथमें पिस्तौल लिये किसी देशद्रोहीका पीछा कर रहा था। इन्दिराने घबराकर विष्णुको उसकी ओर आकर्षित करते हुए कहा—"यह कौन हैं? मुखपर इतना तेज—ऐसी पवित्रता और करने जा रहे हैं राक्षसी कर्म—हत्या! यह कैसी लीला है लीलाधर!" विष्णुने कहा—"चुपचाप देखो। 'परित्राणाय साधुनां विनाशायच दुष्कृताम्, धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।' यदि यह—देशभक्त—राक्षसी कर्म करने जा रहा है तो राम, कृष्ण, प्रताप, शिवा, गोविन्द, नेपोलियन सबने राक्षसी कर्म किया है। देवि, इन्हें प्रणाम करो! यह कर्त्ताकी पवित्र कृति है।"

हाथकी पिस्तौल देशद्रोहीके मस्तकके सामने कर देशभक्तने कहा—

"मूर्ख! पश्चात्ताप कर, देशद्रोहसे हाथ खींचकर मातृ-सेवाकी प्रतिज्ञा कर। नहीं तो, मरनेके लिये तैयार हो जा।"

देशद्रोहीके मुख पर घृणा और अभिमानकी मुस्कराहट दौड़ गयी। उसने शासनके स्वरमें उत्तर दिया—

"अज्ञान, सावधान! हम शासकोंके लाड़ले हैं। हमारे माँ-बाप और ईश्वर, सर्वशक्तिमान् सम्राट हैं। सम्राटके सम्मुख देशकी बड़ाई!"

"अन्तिम बार पुनः कह रहा हूँ, 'माताकी जय!' बोल, अन्यथा इधर देख!" देशभक्तकी पिस्तौल गरजनेके लिये तैयार हो गयी।

सिरपर संकट देखकर देशद्रोहीने अपनी जेबसे सीटी निकालकर ज़ोरसे बजाई। जान पड़ता है देशद्रोहीके अनेक रक्षक गुप्त रूपसे उसके साथ थे। देखते देखते बीस देशद्रोहियोंका दल देशभक्तकी ओर लपका! फिर क्या था देशभक्तकी पिस्तौल गरज उठी!! क्षण भरमें देशद्रोहियोंका सरदार, क्रूर

सरकी तरह पृथ्वीपर लोटने लगा। गिरफ्तार होनेके पूर्व सफल-प्रयत्न देशभक्त आनन्द-विभोर होकर चिल्ला उठा—"माताकी जय हो!"

काँपते हुए इन्द्रासनने, पुष्पवृष्टि करते हुए नन्दन काननने, ताण्डवनृत्यमें लीन रुद्रने, कलकल करती हुई सुरसरिताने एक स्वरसे कहा—"देशभक्तकी जय हो!"

विधाता प्रेमगद्गद होकर ब्रह्माणीसे बोले—"देखती हो, देशभक्तके चरण-स्पर्शसे अभागा कारागार अपनेको स्वर्ग समझ रहा है, लोहेकी लड़कियों—हथकड़ी-बेड़ियों—ने मानो पारस पा लिया है, संसारके हृदयमें प्रसन्नताका समुद्र उमड़ रहा है, वसुन्धरा फूली नहीं समाती! यह है मेरी कृति, यह है मेरी विभूति—प्रिये गाओ, मङ्गल मनाओ, आज मेरी लेखनी धन्य हुई!!!"

२

जिस दिन देशभक्तकी जीवनीका अन्तिम पृष्ठ लिखा जानेवाला था उस दिन स्वर्गलोकमें आनन्दका अपार पारावार उमड़ रहा था। त्रयकोटि देवाङ्गनाओंकी थालियोंको उदार कल्पवृक्षने अपने पुष्पोंसे भर दिया था, अमरावतीने अपना अपूर्व श्रृङ्गार किया था, चारों ओर मङ्गल गान गाए जा रहे थे।

समयसे बहुत पहले ही देवतागण विमान पर आरूढ़ होकर आकाशमें विचरने और देशभक्तके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

सम्राटके समर्थक भीषण शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर एक बड़े मैदानमें खड़े थे। देशभक्त पर "सम्राटके प्रति विद्रोह" का अपराध लगाकर न्यायका नाटक खेला जा चुका था। न्यायाधीशकी यह आज्ञा सुनायी जा चुकी थी कि "या तो देशभक्त अपने कर्मोंके लिये पश्चात्ताप प्रकट कर 'सम्राटकी जय' घोषणा करे या तोपसे उड़ा दिया जाय।" देशभक्त पश्चात्ताप क्यों करता?

अतः उसे सम्राटके सैनिकोंने ज़न्जीरमें कसकर तोपके सम्मुख खड़ा कर दिया !

सम्राटके प्रतिनिधिने कहा—

"अपराधी ! न्यायकी रक्षाके लिये अन्तिम वार फिर कह रहा हूँ 'सम्राटकी जय' घोषणाकर पश्चात्ताप कर ले !"

मुस्कराते हुए देशभक्त बन्दीने कहा—

"तुम अपना काम करो, मुझसे पश्चात्तापकी आशा व्यर्थ है। तुम मुझसे 'सम्राटकी जय' कहलानेके लिये क्यों मरे जा रहे हो ? सच्चा सम्राट कहाँ है। तुम्हारे कहनेसे संसारके लुटेरेको मैं कैसे सम्राट मान लूं। सम्राट मनुष्यताका द्रोही हो सकता है ? सम्राट न्यायका गला घोंट सकता है ? सम्राट, किसीके सिरपर अपना दण्ड जबर्दस्ती लाद सकता है ? सम्राट रक्तका प्यासा हो सकता है ? भाई, तुम जिसे सम्राट कहते हो उसे मनुष्यता और मनुष्यताके उपासक 'राक्षस' कहते हैं। फिर सम्राटकी जय घोषणा कैसी ? तुम मुझे तोपसे उड़ा दो—इसीमें सम्राटका मङ्गल है, इसीसे उसके पापोंका घड़ा फूटेगा और उसे मुक्ति मिलेगी !"

देव-मण्डलीके बीचमें बैठी हुई माता, मनुष्यताकी गोदमें बैठकर देशभक्तने और साथ ही त्रिंशकोटि देवताओंने देखा, पञ्चतत्त्वके एक पुतलेको अत्याचारके उपासकोंने तोपसे उड़ा दिया !

उस पुतलेके एक-एक कणको देवताओंने मणिकी तरह लूट लिया। बहुत देर तक देवलोक "देशभक्तकी जय !" से मुखरित रहा !

—*—

# "चाँदनी"

९ बजे रात......

लड़कियां—ना भाई, लड़कियां नहीं ; वे तो युवतियां थीं और थीं एक-से-एक बढ़ी-चढ़ी सुन्दरियां। उनकी संख्या ठीक दो दर्जन और एक थी। वे मिस मिनीके कारीगरीसे सजे "ड्रेसिङ्ग-रूम"—या शृङ्गार-सदन—में, एक धारामें, खूबसूरतीसे खड़ी थीं।

पोशाक—हाँ भाई, थी तो ज़रूर कोई पोशाक उनके गुल-बदन पर, मगर, वह बीसवीं सदीका पहनावा था। और इस सदीके इस पहनावेकी कहानी तथा सनातनी परिधानकी कथामें उतना ही अन्तर है जितना कोट-पैण्ट और बल्कल वसनमें, "मेरे" होटलके "मटन' और "असन कन्द फल मूल" में "कलियुगे कलि प्रथम चरणे—श्वेत वाराह कल्पे—गौराङ्ग राज्ये" तथा "त्रेता युगे—राम राज्ये" में।

मगर, दुर्भाग्य या सौभाग्यसे, न तो आप राम-राज्यके पाठक हैं और न यह त्रेता युगकी कहानी। अतः उन पचीस पचदधियोंके बीसवीं सदीके परिधानकी जैसीकी तैसी तस्वीर ही आप देखें और ढूंढ़े इन पंक्तियों में। क्योंकि यह मिस मिनीके ड्रॉइङ्ग-रूमकी चर्चा है—और वह, 'आधुनिक' सभ्यताके केन्द्र, इस युगकी अमरावती, फ्रान्सकी राजधानी पेरिसकी चलती-फिरती, हसती-बोलती कुसुम-कुमारी हैं। साथ ही आजके ज्ञानकी ज्योतिसे चमक कर, कभी-कभी, वह त्रेता युग और रामराज्यकी निन्दा भी कर बैठती हैं। कहती हैं, अगर हमारे फ्रान्समें रामराज्य हो, तो, हम फ़रासी जरूर ही, ९३ की क्रान्तिको दोहरा दें। क्योंकि, पहले तो हम 'राजा' ही नहीं चाहते और फिर राम-सा राजा—जो महारानी सीता तकको, व्यर्थकी बातके लिये, अपने राजसे निकाल दे, अपने आधे सिंहासन परसे धकेल दे! छिः, ना; हमें रामराज्य और रामकी ज़रूरत नहीं।

यह मिस मिनी कौन हैं? ऐसा सवाल यदि रामराज्यके प्रेमी करना चाहें, तो, बड़ी खुशीसे कर सकते हैं। वह बड़ी-बड़ी भूरी आंखोंवाली, मंगोलियन-मुखी, रुखोंसे फूली नहीं, तो कसी, नाटी और छोटी-सी पेरिस-रङ्गमञ्चकी एक विख्यात नर्तकी हैं। हमारी प्रसिद्ध रियासतके परमेश्वर स्वरूप महाराजाधिराज गत वर्ष जब विदेश यात्राके लिये गये थे तब वहीं—पेरिसमें—मिनी-महाराज सम्मेलन हुआ था। एक ही दृष्टिमें तो मिस मिनीने महाराजके मोही मनको अपनी ओर मोड़ लिया था। फिर प्राइवेट सेक्रेटरी और दलके अन्य सरदारोंके लाख मना करने पर भी उन्होंने अपने मतमें तिल बराबर भी परिवर्त्तन नहीं किया। जवाहरातोंके भावमें, मिस महोदयाके उस मंगोली-मुखको खरीद कर, महाप्रभु, उन्हें सादर और सविनय अपने राज्यमें ले ही आये। इसी देशकी हवामें सांस लेकर, यहाँका नमक खाकर और पानी—पीकर—हमारे धर्मावतारकी "लिटिल् मिनी" ने रामराज्यसे नफ़रत करने और रामको कोसनेका अभ्यास किया है।

सब लोगोंको पता न होगा, पर, मिस महोदया गत चार वर्षोंसे हमारी

रियासतकी मुखश्री "शेरी" और "शेम्पेन" के बिल्लौरी गिलासमें ढाल-ढालकर उड़ाती जा रही हैं। पहले, जब वह गरमागरम थीं तब, महाराज उन्हींके यौवनकी आगमें अपना सर्वस्व डालकर, आठोयाम, आँख और छाती सेका करते थे। मगर, इधर कुछ दिनोंसे शायद मिस महोदयाकी यौवनाग्नि पर "अति परिचयात् अवज्ञा" की राखी छा गयी है। तभी तो, आजकल, महाराज उनसे अपनी अनन्त प्रेमिकाओंके—विविध वेश विन्यासमें—सजानेका काम लेते हैं। एक तरहसे, इन दिनों वह, महाराजके विलास-भवनकी निरीक्षिकाका पद सुशोभित कर रहीं हैं। इस बहुत ज़िम्मेदार और ज़रूरी और कठिन कार्यके लिये उन्हें रियासतसे एक हज़ार रुपये मासिक दक्षिणा मिलती है, और मिली है एक "फ़िएट कार"—टहलनेके लिये, दो जोड़ियां—ज़ायक़ा बदलनेके लिये, एक बढ़िया महल रहनेके लिये तथा दर्जन-के दजन दास-दासियाँ—"यू ब्लडी, ब्लैक, निगर" कहनेके लिये। पहले मिस महोदया भारतीय दासोंपर अपनी मातृभाषा—फ्रेंचमें गालियोंकी मधुर बौछार छोड़ा करती थीं, मगर; जबसे उन्हे यह मालूम हुआ कि, अंग्रेज़ी राजमें रहते-रहते "नेटिवों" को अंग्रेज़ी गालीका स्वाद अधिक अच्छा लगने लगा है, तबसे, वह भी उसी देव-भाषामें भारतीय भृत्योंकी मधुर भर्त्सना करती हैं।

ख़ैर; अब उनके शृङ्गार-भवनमें, एक धारामें खड़ी, उन पचीस पंचदशियोंके सामने एकबार पुनः आइये। क्योंकि, मिस महोदयाका साधारण परिचय तो आप पाही गये। उन रूपवती यौवनाओंके शरीरपर, दूरसे देखनेसे, कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। पर, आप नाक न सिकोड़ें, इस कथनका यह अर्थ नहीं है कि वे नग्न थीं। यदि उनके नखशिखका वर्णन किया जाय तो उनके पैरोंमें चम्पई-रंगके मुलायम मखमली जोड़े थे, जिनपर सोनेकी मोहक रेखाएं सवारी गयी थीं। जोड़ेके भीतर भी पैर नगे नहीं थे, उनमें उसी रगके रेशमी मोज़े मोहकताको उन्मादिनी बना रहे थे। इसके अलावा उनके सर्वाङ्ग पर पाश्चात्य पोशाककी वह पतली झिल्ली थी, जिसे उधरवाले

"अण्डर वियर" कहते हैं। उस छाया-परिधानका रंग भी वही था। उनके दोनों हाथीदाँती हाथ स्कंध-मूल तक और उनकी गर्दन वक्षस्थलके उस भागतक खुली हुई थी। जो इतना मोहक होता है कि, उसके स्मरण मात्रसे "विश्वामित्र पराशरः" प्रभृतिकी कठिन समाधि भी डाँवाडोल हो जाती है।

उस श्रृङ्गार-सदनमें बिजलीकी अनेक छोटी-बड़ी हरी बत्तियां चांदनी-सा मायामय जाल पसारे हुए थी। उस प्रकाशमें, उस क्षुद्र परिधानमें, वे नवनीत कोमलांगिनियाँ—अपने रूपसे आप ही जलती हुई—मोमबत्तियों-सी दिखाई पड़ती थीं। मोम उनका तन था, ज्योति उनका रूप था और विलायती ढङ्गसे साफ़ किये हुए उनके श्याम सवर्ण केश धूम्रकी धूमिल—किन्तु उस रूपके साथ कितनी उज्वल!—रेखाओं-से थे!

११ बजे रात......

जो अवस्था इस विख्यात बीसवीं सदीकी है, ठीक वही हमारे श्रीमान् महाराजाधिराजकी भी है। उनका जन्म, हमारे स्वर्गवासी महाराजके सिंहासन कालमें, सन् १६०१ ई० की, १ जनवरीको, रात्रि १२ बजकर १ मिनट पर, हुआ था। वह उत्साह और मङ्गल और तान-गानकी—जगमग—पिछली रात हमें खूब याद है—खूब मजेमें याद है। और यह भी याद है कि, उसी दिन उस भ्रान्तिमयी, अल्हड़; उन्मादिनी बीसवीं सदीने भी अपने अनोखे अस्तित्वका 'अ' देखा था। इसीसे तो, कभी-कभी हमारे मनमें ऐसा विश्वास बढ़ने लगता है, मानों, हमारे वर्त्तमान महाराज इस बीसवीं सदी हीके लिये पृथ्वीपर पधारे हों। और महारानी बीसवीं सदी प्रकटित हुई हों हमारे भानु-कुल-भूषणके लिये!

अ—ह !! फिर उस त्रेतायुगके भानुकुलकी याद आ गई! मिस मिनी [illegible] कहना यह है कि, कलियुगके लेखकों—खास कर गल्प-गढ़कों—में मर्ज़ यही चली पड़ी है कि वे बात-बातमें भानुकुलकी चर्चा चला-चला कर इस युगके शिक्षित पाठकोंकी खोपड़ी खाली कर डालते हैं। मगर हम

तो लाचार हैं उस कुलको स्मरण करनेके लिये। क्योंकि हमारे मालिक महाराज उसी वंशमें उत्पन्न हुए हैं जिसके एक प्रतापी राजकुमार रामचन्द्र थे—जो त्रेतायुगमें, नौमी तिथि मधुमास पुनीतामें—बाबा तुलसीके कथनानुसार—"गा, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर-हित लागि" प्रकट हुए थे।

रामचन्द्र पण्डित प्रवर रावणकी लङ्काकी ओर भी गये थे, ऐसा हमको कुछ-कुछ स्मरण है; और वह इस लिये स्मरण है कि हमारे महाप्रभु भी एक बार लङ्का यात्रा कर चुके हैं। अभी पिछले ही सालकी तो बात है। आ—हा! आपको मालूम नहीं!! हमारे प्रजापालकी सीलोन-यात्रामें गत वर्ष बड़े-बड़े गुल खिले थे। दस लाख रुपये, तीन महीनेके लङ्का-प्रवासमें, राज्यके खजानेसे उसी तरह उड़ गये जैसे चक्रवर्ती दशरथके पुत्रके अनन्त बाणोंसे ऋषिवर "पुलस्तके नाती" के अनन्त मस्तक उड़े थे—त्रेतायुगमें।

कहा जाता है, सीलोनसे चलते-चलते हमारे पृथ्वी-पतिने कुछ ऐसा कमाल कर दिखाया कि हमारे राज्यके इतिहासका मुहं चमाचम हो गया। जो काम आजतक किसी भी भानुवंशीसे न बन पड़ा था उसे हमारे क्षत्रिय पार्थिव परमेश्वरने चुटकियोंमें कर दिखाया। वह अभूतपूर्व वीरतासे किसी सिंहाली मुसलमानकी युवती दुहिताको "हर" लाये हैं।

मंद-बुद्धि रावणने मायामयी वैदेहीका हरण किया था,—मगर, खाक किया था। अरे जब भिखारी बन गये और रखवाले गृद्ध द्वारा गिरफ्तार किये जाकर जलील बनाये गये तभी उनकी बुद्धिका दीवालियापन इतिहासपर प्रकट हो गया। ब्राह्मण जो थे रावण, इसीसे वह महावीर और महापण्डित होकर भी, स्त्री-हरण कलाको न जान सके।

इधर हमारे प्रभुने एक दिन अपनी मोटर परसे उस सिंहलिनिको देखा और उस घटनाके ठीक छत्तीस घण्टेके भीतर वह परमरूपवती मुसलमान दुहिता उनके सामने थी। उन्हे रावणकी तरह अपनी लङ्का भी न छोड़नी पड़ी। वह अपने स्वर्णमण्डित होटलमें आनन्दसे बैठे ही रहे और उनके दलके दूसरे वीरोंने, दो "हाज ब्रदर्स" की सहायतासे, उस लड़कीके बापके

घरपर चढ़ाई कर उसका बरबस हरण कर लिया। जटायु—गृद्ध—सो भी वृद्ध ; ताड़ गया था पण्डित रावणकी बेवकूफ़ीको। मगर, उस सिफ़ाली मुसलमानके पास-पड़ोसी पुलीसवाले न ताक सके महाराजके "दाज भाइयों" की ओर। मोटर देखी उन्होंने, जैसे जटायुने रावणका रथ देखा था ; मगर देखनेके पूर्व उनके हाथ उनकी "वर्दी" की जेबोंमें थे। शायद, भक्तोंके हृदयकी तरह, उन जेबोंमें भी कोई "उज्वलता" थी—मगर, "हमारे" प्रभुकी। अस्तु, उज्वल-पत्रको अपनी मुट्ठीमें कर पुलीसवालोंने कामिनी, मोटर और राजाका त्याग उसी तरह "हाथ उठाकर" कर दिया जिस तरह महर्षि—या राजर्षि अथवा ब्रह्मर्षि—विश्वामित्रने अपनी ही लड़की शकुन्तलाका त्याग किया था।

लङ्काकी उस ललनाका नाम "चांदनी" है, ऐसा मिस मिनीके मगोली मुखसे एक दिन सुना था। साल भरसे वह चांदनी मिस महोदया ही के महलमें, अपने परिवारसे छिटकी हुई, ठाढे मनसे चमक रही है। वह ऐसी कुछ सुधामयी, मादक और मोहिनी है कि स्वयं मिस मिनी भी उसके मयङ्क मुखपर मोही-सी मालूम पड़ती हैं। तभी तो उन्होंने एक दिन महाराजको चांदनी-हरण पर बधाई दी थी। कहा था ; आपने दो युगों बाद ही सही, मगर, खूब बदला लिया लंकेश्वरकी उस त्रेताकी मूर्खताका। बेशक आप भानुवंशी हैं—धन्य हैं!

मगर, वह चांदनी अजीब पगली है। साल भरसे महाराजके प्रेम-प्रस्तावों पर नफ़रतसे नाक सिकोड़ रही है। वह मिस मिनीको बहुत मानती है, क्योंकि मिस भी उसे बहुत मानती हैं। उनके आज्ञा या आदेशानुसार वह देशी और विदेशी नृत्योंका अभ्यास कर चुकी, कुछ-कुछ गुनगुनाने भी लगी, मगर, मिस महाशयाके महलके बाहर महाराजके सामने जानेको वह कभी तैयार ही नहीं होती। उसने कहींसे एक छुरा पा लिया है। वैसा ही छुरा जैसे की चर्चा अक्सर कहानी कहने वाले किया करते हैं। यदि कभी महाराज स्वयं मिनीके महलमें मदहोशीमें, चांदनीसे खेलनेकी धुनमें, आ फटते हैं ; तो, वह उसी छुरेको अपनी उभरी हुई छाती पर तान कर खड़ी

हो जाती है। "एक क़दम भी और आगे बढ़े......" वह गरज पड़ती है—"तो इस चांदनीको छुरेके घाटके उस पार ही पाइयेगा। खबरदार जो मेरे तनको कभी हाथ लगाया! यह तन तो मेरे प्यारे 'वाहिद' का है; जो जावामें चीनीका वहुत वड़ा रोज़गार करते हैं। इसे वही छू सकते हैं आप नहीं; फिर आप चाहे राजा हों या वादशाह।"

जब-जब बात यहां तक बढ़ जाती है तब-तब मिस महोदया महाराजको सभालती हैं। जैसे मन्दोदरी रावणको सभाला करती थी। वह महाराजको चांदनीके आगे ही वचन देती है कि—प्रभो! इस बार इस पगलीका, अपनी वीरताकी ओर देखकर, क्षमा कर दो। यह शीघ्र ही आपकी महिमा पहचान लेगी और आपकी छातीकी छाहमें, छूमछननन कर, छिप जायगी। अभी इसका सिन ही क्या है; अक़्ल ही कितनी है।

मगर, अब, महाराज माननेवाले नहीं। परसों ही उन्होंने मिनीके कानोंमें फुसफुसा दिया है कि, चाहे जैसे भी हो, इस शारदी पूर्णिमाको वह अवश्य ही चांदनीकी छवा लूटेंगे। अस्तु, अपने पदकी प्रतिष्ठा रखनेके लिये, पूर्णिमाके पूर्व ही, विलास-भवनकी निरीक्षिका महोदयाको चांदनी पर कोई-न-कोई जादू डाल ही देना चाहिये।

आज शारदी पूर्णिमा ही तो है? या आप अपने देशकी इतनी-सी वात वात भी नहीं जानते! महाराजका सबसे सुन्दर उद्यान—वह सामने चांदनीमें देखिये—कैसा सजाया गया है। अभी हमारे नरेन्द्र अपनी "रोल्स राइस" पर घूमने गये हुये हैं। वह ठीक ग्यारह वजे रात इस उद्यानमें पधारेंगे। अपने दल-वलके साथ। आज यहां पर मिस मिनीके "मैनेज-मेण्ट" में अनोखे-अनोखे गुल खिलेंगे। और?—और "चाँदनी" आज ही लूटी जायगी।

१ वजे रात......

९ वजे रातको, उन पचीस पचदशियोंके साथ मिस मिनी जिस कमरेमें

थीं, यह कमरा उससे बिलकुल भिन्न है। वह ड्रेसिङ्ग-रूम था, यह ड्राइङ्ग-रूम है। उस समयके युवतियोंके परिधानमें और इस समयके शृङ्गारमें भी भारी अन्तर हो गया है। इस अमीरीसे आवृत कमरेमें ये नवेलियाँ छ-छ के गुच्छमें बैठकर, चार बड़ी-बड़ी, गोल, मारबली मेजोंकी चारों ओर बैठी खिलखिला रही हैं।

इन चौबीस चारु-मुखियोंसे थोड़ी दूर पर वह पचीसवीं भी, एक चौकोर और पीले मारबलकी मेज़के पास, मिस मिनीके साथ, बैठी है। उसका वेश-विन्यास अन्य चौबीसियोंसे कहीं भिन्न और मोहक हुआ है।

उन चौबीसियोंके शृङ्गारमें, उन चीजोंके अलावा जिन्हें आप जान चुके हैं, केवल दो चीज़ें अब और बढ़ा दी गयी हैं। आबरवांके, धानी रङ्गके, जरीदार, घुटनेतक लंबे, ज़रूरतसे ज्यादा चौड़े, आधी बाहके कुरते, जिनकी बाहोंपर चार-चार अंगुल चौड़ी अंगूरी लता लहरा रही है; और, उनके कमर तक झूलते हुए सुकेशों पर सुशोभित—मालती और अशोकके घने और सुगन्धिमय पुष्पोंके—मनोहर मुकुट। उन पारदर्शी-कुरतोंके बाहर—"अण्डर वियर" के भीतर कसी हुई उनकी सौन्दर्य-मयी जवानी मानों फटी पड़ती है। उन मालती और अशोकको गलबैयोंसे गुथे हुए, ज़रा पाश्चात्य कलाके आधारपर रचे गये, मोहक मुकुटोंने तो सुन्दरियोंके रूपका भाव कुछ-से कुछ कर दिया है। अब वे परियाँ मालूम पड़ती हैं, इन्द्रके अखाड़े की।

उस पचीसवींको हमारे नरपतिकी विलास-भवन-निरीक्षिकाने "परशियन" पोशाकसे सवारा है। बढ़िया सुफ़ेद रेशमका, उमरखैयामके युगका, कामदार पाजामा; गुलाबी रंगका, रेशम और जरीके कामका, कीमती कुरता; उसपर धानी रंगके मुलायम मखमलका चोलीनुमा जाकिट; और, सबके ऊपर जोगिया रंगका, उसी झीने आबरवाँका, हलके—पर सुन्दर—कामका दुपट्टा! यद्यपि उसके माथेपर वह मालती-अशोक मुकुट नहीं है, फिर भी; वह उन सब मुकुटिनियोंकी महारानी मालूम पड़ती है।

वह पचीसवीं ही तो हमारे भानुकुल भूषण द्वारा हरिता और यौवनसे भरिता सुन्दरी चाँदनी है। आज पहली बार, मिस मिनीके लाख-लाख मनानेसे, महाराजके सामने वह जायगी। उन चौबीस मुकुटिनियोंकी महारानीकी तरह। हाथमें बढ़िया बिल्लौरी सुराही, रंगीली मदिरा और "कटक" के कारीगरोंका बनाया हुआ अनमोल गंगाजमुनी गिलास लेकर। मिस मिनी द्वारा सिखायी और बार-बार "रिहर्सल" कराई गयी किसी खास अदासे। चाँदनीके पीछे—सौन्दर्य-भरी उज्ज्वल और मादक छायाकी तरह,—वैसे ही सुराही-गिलास लेकर, दो दलोंमें विभक्त होकर, वे चौबीस चाँदनियाँ भी हमारे अन्नदाताके सामने चलेंगी। आज शरदपूनों है न। बड़ा मज़ा रहेगा। ऊपर चाँद, नीचे चाँद—चारो ओर चाँदनी ही चाँदनी चमकती फिरेगी।

"हमें वहाँ जाकर क्या करना होगा ?" यह सवाल लङ्काकी ललनाने पेरिसकी मगोलमुखी मिस मिनीसे—उक्त साज-श्रृङ्गारके पहरों पूर्व—किया था। इसमें कोई सन्देह नहीं। उत्तरमें मिस महोदयाने मधुर स्वरमें, मुस्कराते मुखसे समझा दिया कि—"और क्या करना है; मैंने जो वर्ष भर तक तुम्हें—वह 'सात घूंघटवाला नाच' सिखाया है, बार-बार 'रिहर्सल' कराया है, उसीको महाराजके सामने नाचकर दिखा देना। यदि तुम सफल हुईं इस परीक्षामें, तो, बस पुरस्कार है और तुम्हारी मुक्तिका समाचार है। इसे झूठ न समझना बहन ! मैं महाराजके बादशाही मिज़ाजको खूब जानती हूं। वह जरूर तुम्हें तुम्हारे परिवारके पास—और प्यारेकी भुजाओंमें !—भेज देंगे। उन्होंने मुझे वचन दिया है।—

"और बहन ! तुम जानतीं नहीं; महाराज भानुवंशी हैं। और इस देशके उस वंशकी विरदावली बहुत विशद है। ये लोग वचन देकर—खास कर औरतोंको—कभी मुकरते ही नहीं, चाहे महाराज दशरथकी तरह जान भले ही दे दें।"

"उस नाचमें मदिरा और सुराहीका उपयोग भी होता है। तो क्या

महाराजको ढाल-ढालकर देना होगा? पी लेने पर वह होशमें न रहे तो—?" चाँदनीने शङ्कित भावसे, अपनी बड़ी-बड़ी सुरमयी आंखें झुकाकर, मिस मिनीसे पूछा।

"तो क्या डर है बहन! इसीलिये तो मैंने तुम्हें दूसरे वेशमें सजाया है। महाराजकी मदहोशीका शिकार बनेंगी वे चौबीस मुकुटिनियां, तुम नहीं। तुम तो मजलिसकी महारानीकी तरह घूम-घूमकर और नाच-नाचकर, केवल महाराजको ढालोगी। और फिर—ओ हो! मैं भूल ही गयी थी उसको!—तुम अपना छुरा तो ज़रूर ही कमरमें रखो। जबतक वह तुम्हारे पास रहेगा तबतक तो तुम्हारा तन सुरक्षित है हो। महाराज तुम्हारे मिज़ाजको खूब समझ गये हैं। मेरी बात मानो! वह तुम्हें भूलकर भी न छेड़ेंगे। बस, नाचो आज सखी! वह सात घूंघट वाला पुराना 'रोमन' नाच, ज़रा मस्तीसे चमक कर।"

इसी समय ड्राइङ्ग-रूमके द्वार पर किसीकी धीमी थपकी सुनायी पड़ी। मिनी महोदया दौड़ीं दरवाज़ेकी ओर। वह महाराजाधिराजके प्राइवेट सेक्रेटरी साहब थे। स्वयं यह सूचना देने आये थे कि, अब रात आधीसे ऊपर बीत चली, महाराज उतावले हो रहे हैं। व्यर्थके दरबारी विदा कर दिये गये। अब केवल चुने चन्द रह गये हैं। उद्यानमें चारों ओर शरद पूर्णिमाकी चाँदनी छा गयी है। महाराज व्यग्र हैं, वह अपनी चारों ओर सिंहलके उस मुसलमानके घरकी "चाँदनी" की छाया चाहते हैं।

मिस मिनीने मोहकतासे सेक्रेटरीके कानसे अपने रंगे ओठ सटाकर और उन्होंने उसके कपोल पर सिंदूरकी एक रेखा खींच कर कहा—आप चलें महोदय! हम सब हाज़िर ही होती हैं। ज़रा इन छोकरियोंको, शर्बतके बहाने, थोड़ा गाढ़ा नशा भी पिला दूँ। जिसमें ऐन मौके पर कोई पगली आपके उस [illegible] दरबारी वीरके चरित्रका पाठ न करने लगे, जिसका नाम मुझे इस समय भूल रहा है।

३ बजे रात......

त्रेता युगमें "मघवा महामलीन" माना जाता था, इसके हमारे पास पूरे प्रमाण हैं। वह विशेष व्यक्तियोंकी विशेषताओंकी वृद्धिसे विकल हो उठता था और उसके साथ ही साथ उसका इन्द्रासन भी, कायरके कोमल कलेजेकी तरह, कांपने लगता था। मालूम नहीं हमें; वह त्रेतावाला मघवा मर गया था या अभीतक अमरका-अमर ही है। मगर, मर ही गया होगा बेचारा। अनुमान तो यही अटकल लगाता है। क्योंकि, यदि वह अभी तक सहस्रलोचन होता, तो; हमारे शूर-शिर-मुकुटमणि, महिमामय महाराजको विलास-विभूतिकी विशेषताएं अवश्य ही देख लेता। इन्हें देख कर भला वह अपने आपेमें रह सकता था—असम्भव, कदापि नहीं। ये सुन्दरियां, ये छविधासे चुनी हुई राज्योद्यानकी पुष्प-परियां, ये गिलास और ये सुरा-हियां,—यह शराबोंकी रङ्ग बिरङ्गता। अरे, अरे—इन्हें यदि वह महामलीन मघवा देख पाता, तो, अपनी ही छाती पर वज्र मार कर रह जाता। यही मिस मिनीका भी मत है। पर, सुनिये तो; आप "मघवा" के माने जानते हैं? हमने तो सुना है कि, "मघवा" का अर्थ "बिड़ौजा" है।

शरदकी पूर्णिमाको जिसकी आंखोंके सामने चांदनीकी लूट हुई, बल्कि उस लूटको अधिक-से-अधिक मादक और आकर्षक बनानेका जो सबसे प्रधान उत्तरदायी है, वह उस पुराने मघवाका मशहूर मित्र है। उसका नाम चन्द्रमा है। वही तो ऋषि गौतमकी रूपमयी अहल्याके बलात्कारके समय मघवाके साथ था। वही तो द्विज-राज कहा जाता है। वही तो चन्द्रमौलिके माथेपर चढ़ा रहता है। मिस मिनीने अपने हिन्दू खानसामाको—आठ आनेवाली सचित्र—रामायणसे उसकी कहानी सुनी है। वह बहुत हंसती रहीं चन्द्रमाके ऊंचे पद और नीचे कर्मों पर। उनका कहना है, कि जब सीताके लिये रावण, द्रौपदीके लिये कौरव और किस-किसको अपमानित करनेके अपराधमें—अवतारों द्वारा—कौन-कौन मारे ही गये तब यह द्विज-राज तब क्यों जीता है? इसका छत्र और कलङ्कित शिर क्यों नहीं

आकाशके कन्धे परसे काट फेंका गया? तिस पर तो मिस महोदया यह नहीं जानतीं कि, वह बृहस्पतिकी पत्नी ताराका पति भी है—"गुरु-तिय-गामी" भी है। यदि उन्हें यह बात भी मालूम होती, तो, वह अवश्य ही, भावसे मुस्करा-मुस्करा कर, किसी हिन्दू सरदार या स्वयं श्रीमान्के सामने, चन्द्रमापर लाख-लाख फब्तियां कसतीं।

शारदी पूर्णिमाको, शराब, सुराही और गिलास लिये, चौबीस सुन्दरियों-के आगे तथा मिस मिनीके पीछे, जब चाँदनी महाराजाधिराजके सामने आयी, उस समय उस उद्यानमें चारों ओर सुफ़ेदी-ही-सुफ़ेदी छायी हुई थी। उद्यान और चौबीस चुने हुए हिन्दू-मुसलमान समवयस्क सरदारोंके बीचमें हमारे भानु-कुल-भूषण और उनके प्राइवेट सेक्रेटरी महोदय सुफ़ेद मारबलके चौकोर चबूतरे पर बैठे सुरा सुन्दरीका सेवन कर रहे थे। उसी समय तो मिस मिनीके आदेशानुसार वे पचीसों पञ्चदशियां—न जाने कौन-सा पीने और ढालनेका गान गा-गा कर—वह अद्भुत पश्चिमी नाच नाचने लगीं। उनमें सबसे आगे, जोगिया दुपट्टा ओढ़े, लङ्काकी वह मुसलमान लड़की "सात घूंघट वाला" परम मोहक और उन्मादक नाच नाच रही थी।

महाराजने देखा मिस मिनीके मगोली मुखकी ओर; और, मिसके मुखने मुस्कराकर कुछ इशारा किया उन चौबीस युवतियोंकी ओर जो मुकुट पहनकर चाँदनीके पीछे मदहोश-सी थिरक रही थीं। उनमेंसे दो, नाचती-नाचती, और सुराही-गिलास सँभालती हुई, हमारे प्रभुकी ओर बढ़ीं। पास पहुंचकर, ढाल कर, दोनों ओरसे उन्होंने महाराजको मदिराकी मस्तीसे महका दिया। उनके हाथके गिलास ख़ाली कर, महाराजने उन्हे अपनी दोनों ओर बैठा लिया। वह उनके इस या उस मोहक अङ्गसे खेलने लगे। उस समय उनके आगे लङ्काकी चाँदनी तो सात घूंघटका नाच नाच रही थी और ऊपरकी ज्योत्स्ना बिलकुल नङ्गी खड़ी मुस्करा रही थी।

थोड़ी देरतक महाराज उन युवतियोंसे खेलते रहे, बाजे बजते रहे और नाच होता रहा। इसके बाद उन्होंने पुकारा—"कल्याणसिंह, नाहरसिंह!" उस

नामके सरदार श्रीमान्‌के सामने करबद्ध, मगर नशेमें झूमते हुए, खड़े हो गये। हमारे उदार प्रभुने उन दोनों युवतियोंको उन सरदारोंके हवाले किया— "अब इनसे तुम खेलो !" उसी धवल चाँदनीमें, मदहोश सरदारोंने अपने-अपने हिस्सेकी सुन्दरीको गोदमें उठा लिया !

तीन बजे राततक यही सिलसिला जारी रहा। दो-दो कर वे सुन्दरियाँ पहले हमारे प्रभुके सामने आतीं; उनके आगे अपना यौवन और सुराही उँडेलतीं—और फिर, किसी "सिंह" या "ख़ाँ" की गोदमें ढालते-ढालते बेहोश हो जातीं। धीरे-धीरे चौबीसों सुन्दरियाँ एक-एक सरदारकी बग़लमें हो गयीं—और मिस मिनी महोदया प्राइवेट सेक्रेटरीके पास। अब महाराज अकेले रह गये झूमते, और चांदनी रह गयी अकेली नाचती; वह सात घूंघटवाला नाच। अब प्रभु उसे अपने पास देखनेके लिये व्यग्र हो उठे।

मिस मिनीने, सेक्रेटरीके कपोलसे अपना मंगोली-मुख सटाकर, चांदनीकी ओर कुछ इशारा किया। वह नाचती-नाचती ठिठकी एक बार—मगर फिर; तुरन्त ही अपनेको सँभालकर, अपनी कमरकी रत्नजटित पेटी और छुरेकी ओर निहार कर, बढ़ी महाराजकी ओर—ढालनेके लिये। उसे अपनी ओर आते देख महाराज उत्तेजित होकर खड़े हो गये। उनकी बड़ी-बड़ी आंखें नशेकी गर्मीसे लाल हो रही थीं।

चांदनीने ढालकर सुरा-पात्र, नीची आंखोंसे, महाराजकी ओर बढ़ाया—मगर, अब वह पागल थे। उन्होंने उसके हाथसे गिलास छीन कर, जोरसे, एक ओर फेंक मारा और लज्जाकी उस मुसलमानिनको बरबस खींच कर अपनी गोदमें ले लिया !!

मगर, महाराजकी बलिष्ट भुजाओंमें फंस जाने पर भी, चांदनी असावधान नहीं थी। उसने घटनाका रुख देखते ही हाथकी सुराही फेंक कर, छुरेको सँभाल लिया था। इसीसे तो—महाराजकी मदान्धताके पूर्व ही—उसने अपनी उभरी हुई छाती पर छुरेका एक भरपूर वार किया !

पर यह क्या !! वह टूट कर दो टुकड़े कैसे हो गया ? क्या वह चांदनीका

असली, फ़ौलादी, रक्षक नहीं था ? लड़के सब इस घटना पर खिलखिला कर हसने लगे। सबकी नजर एक साथ ही, मिस मिनीके भोली-मुख पर जाकर आश्चर्यसे ठिठक गयी। याने, यह तुम्हारी ही मायाकी महिमा है मिस महोदया !

अब भानुकुल भूषण अपना सारा बल लगाकर उसको वशमें करनेकी चेष्टा करने लगे, मगर वह पगली काबूमें आयी ही नही। बराबर उनके कठोर पजेसे छूटनेकी चेष्टा करती रही और रो-रो कर दोहाई देती रही।—महाराज, मुझे बेइज्जत न करो ! क्योंकि यह तन मेरे प्यारे वाहिद्का है। वह मेरे बच-पनके सखा और जवानीके मालिक हैं। जावामें चीनीका बहुत बड़ा रोज़गार करते हैं। मुझे छोड़ दो—बचा दो—गरीबपरवर!, मैं आपकी बेटी और बहन हूँ।

मगर, महाराज तो होशमें थे ही नही। वह बराबर उस सिंहलिनीसे हाथापाई करते रहे ; उत्तेजित हो-होकर। पर वह वशमें आती ही नही थी। इसी बीचमें प्रभुने एक बार उसके न जाने किस अङ्गको, धोकेसे, चूम लिया। बस, फिर क्या था। वह चाँदनी तो आग हो उठी। वह भूल गयी अपनी अबलता और हमारे प्रजापालकी प्रबलताको। "सुअरके बच्चे ! हत्यारे ! शैतान !!" कह कर उसने ताबड़तोड़ कई तमाचे महाराजके मदिरा-से लाल-लाल गालों पर जड़ दिये। ओह ! वह सिंहलिनी क्या थी पूरी सिंहिनी थी ! एक बार सारी मजलिस सन्न हो गयी !!

एक क्षण और—और धड़-धड़-धड़ ! पिस्टलकी आवाज़से सारा उद्यान गड़गड़ा उठा। उत्तेजित भानु-कुल-भूषणने, चाँदनीकी उभरी हुई छातीमें, गोली मार दी ! वह जहां-की-तहाँ बिखर कर धूमिल हो गयी।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

सात घूंघटोंके नाचके पुरस्कार रूपमें हमारे परमेश्वर-स्वरूप पृथ्वीपतिने चाँदनीको मुक्त कर दिया। मिस मिनीने ठीक ही कहा था। भानुवंशियोंकी विरदावली बहुत विशद है। वह वचन देकर कभी मुकरते नहीं।